॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR (SINCE 1923)

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

गद्दीपर बैठता है, तब उन फूलोंके दर्शन कराये जाते हैं।

श्रीमधुकरशाहजीकी सन्तवेषनिष्ठाका वर्णन करते हुए श्रीभक्तमालजीके टीकाकार श्रीप्रियादासजी एक प्रसंगका वर्णन करते हैं। एक बार मधुकरशाहके द्वेषी भाई-बन्धुओंने एक गधेको वैष्णव वेष धारण कराया और मधुकरशाहके सामने ले आये। वेशनिष्ठ राजाने उस गर्दभका वैष्णव वेशके कारण आदर-सत्कार किया और कहा—

अब लौं दुइ-दुइ पादके देखे संत अनन्त। चारि चरण के आजु ही देखे सन्त लसन्त॥
मेरे प्रभु समरत्थ हैं सकैं रूप सब धारि। खर नाहीं वैष्णव खरे प्रभु तुम लेहु उधारि॥
मच्छ कच्छ शूकर बने भक्तन हित भगवान। मधुकर हित गर्दभ बने धनि धनि कृपा निधान॥

श्रीमधुकरशाहजी गर्दभको वैष्णवरूप धारण किये हुए देखकर बड़े खुश हुए और बोले—'अहो! श्रीयुगलकिशोरजीकी हमारे ऊपर बड़ी कृपा है, जो कि मेरे राज्यमें गधे भी वैष्णव बनकर कण्ठी-माला और तिलक धारण करने लगे हैं। अब तो निश्चय ही कोई मनुष्य बिना कण्ठीमाला-तिलकके नहीं रह सकता है। अब यदि कोई कण्ठी-तिलकविहीन देखनेमें आये, तो उसे गधेसे भी निकृष्ट समझना चाहिये।' राजाकी इस वेषनिष्ठाको देख-सुनकर इनके विरोधी भी वैष्णव बन गये और इनके गुरुदेव श्रीहरिरामव्यासजीने यह पद गाया—

भगत बिन किन अपमान सह्यौ।
कहा कहा न असाधुन कीन्हों, रहि बल धरम रह्यौ॥
अधम राज पद माते लै शिविका जड़ भरत नह्यौ।
निगड़ बँधे वसुदेव देवकी, सुत पटकत दुख दुसह सह्यौ॥
हरि ममता प्रह्लाद विषाद न, जान्यौ दुख सहदेव दह्यौ।
पट लूटत द्रोपदी न मटकी, हरिकी शरन चह्यौ॥
मत्त सभा कौरवनि विदुर सों, कहा कहा न कह्यौ।
शरणागत आरत जगपति की, आपुन चक्र गह्यौ॥
हा हरि नाथ पुकारत आरत, कौन नहीं निबह्यौ।
व्यास वचन सुनि मधुकर साहै, भक्त भक्तिपन सदा लह्यौ॥

श्रीप्रियादासजीने राजा मधुकरशाहकी इस सन्तवेश-निष्ठाका वर्णन इस प्रकार किया है—

मधुकरसाह, नाम कियौ लै सफल जातें, भेष गुनसार गहै, तजत असार है।
'ओड़छे' कौ भूप, भक्त भूप, सुखरूप भयौ, लयौ पनभारी जाके और न विचार है॥
कंठी धरि आवै कोय, धोय पग, पीवै सदा, भाई दूखि, खर गर डार्‌यौ मालभार है।
पाँव परछाल, कही 'आज जू निहाल किये', हिये द्रये दुष्ट पाँव गहे दृगधार है॥ ४८८॥

श्रीखेमालरत्नजी राठौर

रैना पर गुन राम भजन भागवत उजागर।
प्रेमी प्रेम किसोर उदर राजा रतनाकर॥
हरिदासन के दास दसा ऊँची ध्वजधारी।
निर्भय अननि उदार रसिक जस रसना भारी॥

दसधा संपति संत बल सदा रहत प्रफुलित बदन।
खेमाल रतन राठौर के अटल भक्ति आई सदन॥ ११८॥

श्रीखेमालरत्नजी राठौरवंशीय क्षत्रिय थे, आपके घरमें भक्तिने अचल होकर निवास किया। आपके सुपुत्र श्रीरामरयनजी श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त थे और श्रीरामजीके भजनमें सदा तत्पर रहते थे। आप परम प्रसिद्ध भगवान्‌के भक्त थे। श्रीखेमालजीके पौत्र श्रीरामरयनजीके पुत्र श्रीकिशोरसिंहजी भगवत्प्रेमियोंसे प्रेम करनेवाले थे। समुद्रके समान गम्भीर हृदयवाले, सद्गुण-रत्नोंके निधान थे। ये सभी भगवद्दासोंके दास थे। प्रेमकी उच्चदशाको प्राप्त इन्होंने उसकी ध्वजाको सर्वदा ऊँचा रखा। ये निर्भय, अनन्य, परम उदार और रसिक थे। रसिक श्रीश्यामसुन्दरके विशाल सुयशको आप जिह्वासे सदा गाते रहते थे। दशधा भक्तिको ही आप अपनी परम सम्पत्ति मानते थे। सन्तोंका बल आपमें था। ये सदा प्रेमविभोर, अतः प्रसन्नमुख रहते थे॥ ११८॥

श्रीखेमालरत्नजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

ऐतिहासिक विशेषज्ञोंके अनुसार जोधपुरके शासक राव सूजाके पुत्र ऊदाने वि० संवत् १५३९ में जैतारणपर आक्रमण किया और सींधालोंको परास्तकर नया राज्य स्थापित किया। इनके वंशज 'ऊदावत राठौड़' कहलाये। परम प्रतापी राव ऊदाके पुत्र खीवकरण (खेमकरण) ही खेमाल नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म भाद्रशुक्ल ११ संवत् १५३७ वि० में हुआ। ये भगवद्भक्त होनेके साथ-साथ अपने कालके महत्त्वपूर्ण वीरोंमेंसे एक थे। धर्मरक्षार्थ इन्होंने कई संग्राम किये। जोधपुरके मालदेवके समयमें जैताजी, कूपाजी और पंचायणको साथ लेकर शेरशाहकी विशाल सेनासे श्रीखेमालजीने इतिहास-प्रसिद्ध संग्राम लड़ा। तभीसे वीरोंमें आपको बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ। पुनः शेरशाहसे मालदेवका प्रसिद्ध युद्ध गिरींमें हुआ, जिसमें धोखेके कारण मालदेव वापस लौट आये, पर श्रीखेमालजी प्रमुख सरदारोंको साथ लेकर संग्राममें डट गये। अपने दस हजार सैनिकोंके साथ शेरशाहकी अस्सी हजार सेनापर भीषण प्रहार किया। यह युद्ध वि० संवत् १६०० में हुआ। इनके प्रचण्ड आक्रमणसे शेरशाहकी फौजके छक्के छूट गये। विजय शेरशाहकी अवश्य हुई, पर उसके थोड़ेसे सैनिक ही बचे। प्रायः सभी क्षत्रिय वीरगतिको प्राप्त हुए। शेरशाहने इस विजयको धिक्कारा और कहा कि खुदाका शुक्र है जो जान बची, वर्ना मुट्ठीभर बाजरेके लोभमें दिल्लीकी सल्तनत खो देता।

श्रीनाभाजीने श्रीखेमाल (खींवकरण) और उनके पुत्र रावरतनसिंहजी दोनोंका चरित्र एक साथ एक छप्पयमें लिखा है, पर ये दो भक्त हैं। श्रीराव रतन राठौरका जन्म १५७७ वि० संवत् भादौं सुदी ५ को हुआ। ये जैतारणके तीसरे राजा थे। संवत् १६०० में २३ वर्षकी आयुमें आप जैतारणकी गद्दीपर बैठे। पिता-पितामहकी तरह ये भी महान् भक्त एवं वीर थे। इनमें स्वाधीनता, कर्तव्यपरायणता, अपार साहस, उज्ज्वल चरित्र और धर्मपरायणता आदि गुण कूट-कूटकर भरे थे। आपने रणस्थलमें कभी अधर्म युद्ध नहीं किया। वीर एवं भगवद्भक्तका चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो, उसका सर्वदा सम्मान किया। ये जैसे महान् वीर थे, वैसे ही उदार दाता भी थे। देहरिया, गेहावास, लाखावासणी (जैतारण परगनेके) गाँव चारण भक्तोंको दानमें दिया। आपकी वीरताके अनेक उदाहरण इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। वि० संवत् १६१० में राव मालदेवने मेरतेके राजा जयमलपर चढ़ाई की। राव रतनसिंहजी उस युद्धमें मालदेवकी ओरसे लड़ रहे थे। आपने अपने सामन्त देईदासके साथ जयमलजीकी सेनापर भयंकर प्रहार किया। देईदास जब जयमलजीपर बर्छी छोड़ने लगा, तब राव रतनसिंहने कहा—'राव ऊबरौ।' फिर देईदासने बर्छी नहीं चलायी। इस युद्धमें जयमलकी सेना हार गयी थी।

जैतारणमें ही इनका अन्तिम युद्ध अकबरकी सेनाके साथ हुआ। उसी युद्धमें महान् पराक्रम प्रदर्शितकर संवत् १६१४ चैत बदी १० को राव रतनसिंहजी प्रशंसित वीरगतिको प्राप्त हुए। इस युद्धका वर्णन कविवर दूदो विलासने 'राठौर रतनसिंह री बेली' नामक काव्यमें किया। इसमें ६३ छन्द हैं।

दल असंख्य दिल्ली तणौ, गिणाया ऊदा गोत।
रगतां सींची रतन-सी जैतारण रण जोत॥

धर्मविरोधी यवन सेनाका अपने खाँड़ोंसे संहार करनेवाले राव रतनसिंहने अपनी कीर्तिको अचल कर दिया। इस प्रकार स्वतन्त्रता-प्रेमी राव रतनसिंहजीने उज्ज्वल आदर्श प्रकट किया। इस क्षेत्रकी जनता इन्हें देवतुल्य मानकर समाधिपर श्रद्धा-सुमन चढ़ाती है। अब नया स्मारक भी बन गया है। जैतारणमें एक सिद्ध सन्त श्रीगूदड़बाबा थे। राव रतनसिंहजी उनसे प्रभावित थे। उनके परम भक्त थे। वहीं श्रीगोपालजीका मन्दिर है, इनके वंशज उसे अपना गुरुद्वारा मानते हैं। इन्हीं राव रतनसिंहजीके पुत्र श्रीरामरयनजी थे। आपने रामट ग्राममें अपनी गद्दी स्थापित की। इनके पुत्र श्रीकिशोरसिंहजी हुए।

राजा श्रीरामरयनजी

अजर धर्म आचर्‍यो लोक हित मनो नीलकँठ।
निंदक जग अनिराय कहा (महिमा) जानैगो भूसठ॥
बिदित गँधर्बी ब्याह कियो दुसवंत प्रमानै।
भरत पुत्र भागवत स्वमुख सुकदेव बखानै॥
और भूप कोउ छ्वै सकै दृष्टि जाय नाहिन धरी।
कलिजुग भक्ति कररी कमान रामरैन कैं रिजु करी॥ ११९॥

इस कलियुगमें भक्तिका और धर्मका पालन बहुत कठिन है, परंतु श्रीरामरयनजीने इस कठिन कार्यको बड़ी सरलताके साथ सम्पन्न किया। इन्होंने वैष्णवधर्मका इस विधिसे पालन किया कि उसमें कभी जीर्णता नहीं आयी, वह सदा नवीन बना रहा। श्रीशंकरजीके समान आप सभी लोगोंका कल्याण करनेवाले थे। परनिन्दक, दुष्ट वे भला आपकी महामहिमाको कैसे जान सकते हैं! जैसे राजा दुष्यन्तने शकुन्तलासे विवाह किया और उनसे महान् प्रतापी पुत्र श्रीभरतजी परम भागवत हुए, जिनका वर्णन श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने किया है, उसी प्रकार आपने गान्धर्व विधिसे अपनी कन्याका विवाह रासबिहारी श्रीकृष्णके साथ किया। आपने जैसी भक्तिका आचरण किया, दूसरे राजा लोग उसे मनमें ला भी नहीं सकते, आचरण करना तो बहुत दूर रहा। इस ओर दृष्टि करके वे लोग देख भी नहीं सकते॥ ११९॥

श्रीप्रियादासजी श्रीरामरयनजीके जीवनमें घटी एक घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

पूनौ मैं प्रकाश भयौ सरद समाज रास विविध विलास नृत्य राग रंग भारी है।
बैठे रस भीजे दोऊ, बोल्यो राम राजा रीझि, भेंट कहा कीजै विप्र कही जोई प्यारी है॥
प्यार को विचारै न निहारै कहूँ नैकु छटा, सुता रूपघटा अनुरूप सेवा ज्यारी है।
रही सभा सोचि, आय जायके लिवाय ल्यायै, वेष सों दिवाये फेरे सम्पत लै वारी है॥ ४८९॥

कवित्तमें बताया गया है कि एक बार शरत्पूर्णिमाकी रातको जिसमें चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकी हुई थी, उसमें रासलीलाका भव्य आयोजन हुआ। राजा श्रीरामरयनजी एवं उनकी रानी दोनों रासका दर्शन कर रहे

थे। नृत्य-गानको पूर्णकर प्रेमरसमें सराबोर युगलकिशोर सिंहासनपर विराजमान हुए। उस समय राजा रामरयनजीने प्रेम-विभोर होकर अपने मन्त्रियोंसे पूछा कि 'ठाकुरजीको क्या भेंट करना चाहिये?' भक्त ब्राह्मण मन्त्रीने कहा—'राजन्! जो वस्तु आपको सर्वाधिक प्रिय हो, वही प्रभुको अर्पण करना चाहिये।' यह सुनकर राजाने अपने मनमें सोचा—विचारा और निश्चय किया कि 'घनी घटाके समान जिसमें सौन्दर्य छाया है, वही अपनी प्रिय कन्या श्रीठाकुरजीको भेंटमें देनेयोग्य है।' तत्पश्चात् आप महलमें गये और वस्त्राभूषणोंसे विभूषित अपनी कन्याको लिवा लाये और उसे रासबिहारी श्रीकृष्णको अर्पण कर दिया। पश्चात् विधि-विधानके अनुसार भाँवरें पड़ीं, विवाह हुआ, बहुत-सी सम्पत्ति दहेजमें दी तथा न्यौछावर की।

श्रीरामरयनजीकी रानी

आरज को उपदेस सुतौ उर नीकें धार्‌यो।
नवधा दसधा प्रीति आन धर्म सबै बिसार्‌यो॥
अच्युत कुल अनुराग प्रगट पुरुषारथ जान्यो।
सारासार बिबेक बात तीनों मन मान्यो॥
दासत्व अनन्य उदारता संतन मुख राजा कही।
हरि गुरु हरिदासन्नि सों राम घरनि साँची रही॥ १२०॥

राजा रामरयनजीकी धर्मपत्नी श्रीहरि, गुरुदेव एवं सन्तोंके प्रति सदा सच्ची रही। इन्होंने इनसे कभी छल-कपट नहीं रखा। अपने पतिदेवके उपदेशोंको तो उन्होंने अच्छी प्रकारसे हृदयमें धारण किया। नवधा-दशधा भक्तिके आचरणमें ही इन्हें प्रीति थी। दूसरे लौकिक धर्मोंको बिलकुल भुला दिया। वैष्णवोंसे प्रेम करना ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ जाना। सत्‌को ग्रहण और असत्‌को त्याग कर देनेका विवेक आपमें था। दासत्व, अनन्यता और उदारता—ये तीनों बातें आपके मनमें बसी हुई थीं। इसकी प्रशंसा सन्तजन तथा स्वयं राजा रामरयनजी अपने मुखसे करते थे॥ १२०॥

श्रीप्रियादासजीने श्रीरामरयनजीकी रानीके सन्तप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

आये मधुपुरी राजाराम अभिराम दोऊ, दाम पै न राख्यौ, साधू विप्र भुगताये हैं।
ऐसे ये उदार राह खरच सँभार नाहिं, चलबो बिचार भयौ चूरा दीठ आये हैं॥
मुद्रा सत पाँच मोल खोलि तिया आगे धरे दीजै बेचि गये नाभा कर पहिराये हैं।
पति को बुलाइ कही नीके देखि रीझे भीजे काढ़ि कै करज पुर आये दै पठाये हैं॥ ४९०॥

कवित्तमें बताया गया है कि एक बार राजा रामरयनजी तथा उनकी रानी दोनों श्रीमथुराजी आये। साधु-ब्राह्मणोंकी सेवा करते हुए कुछ दिन वहीं रहे। जो धन आप साथमें लाये थे, वह सम्पूर्ण धन साधु-ब्राह्मणोंकी सेवामें समाप्त हो गया, घर वापस जानेके लिये मार्गव्यय भी नहीं बचा। जब वापस लौटनेका विचार हुआ तो उस समय राहखर्चका प्रश्न उपस्थित हुआ। रानीके हाथोंमें जड़ाऊँ कंकण थे, उन्हींपर राजाकी दृष्टि पड़ी। रानीने हाथोंके कंकण उतारकर राजाके आगे रख दिये और कहा कि 'इन्हें बेंच दीजिये।' श्रीरामरयनजी उन्हें बेंचने बाजारको गये। संयोगवश गोस्वामी श्रीनाभाजी इन्हें मार्गमें मिल गये। इन्होंने प्रसन्न होकर दण्डवत् करते हुए (भेंटस्वरूप या सखी भाव होनेसे) दोनों कंकण उनके हाथोंमें पहना दिये। रानीने महाराजको बुलाकर कहा—'आपने यह बहुत ही अच्छा किया।' रानीकी निष्ठा देखकर राजा उसपर प्रेमविभोर हो गये। इसके पश्चात् किसीसे कर्ज लेकर आप अपने नगरको वापस आये और उसको धन भेजकर कर्ज चुकता किया।

श्रीकिशोरसिंहजी

पायनि नूपुर बाँधि नृत्य नगधर हित नाच्यो।
राम कलस मन रली सीस तातें नहिं बाँच्यो॥
बानी बिमल उदार भक्ति महिमा बिस्तारी।
प्रेम पुंज सुठि सील बिनय संतनि रुचिकारी॥
सृष्टि सराहै राम सुव लघु बैस लछन आरज लिया।
अभिलाष उभै खेमाल का ते किसोर पूरा किया॥ १२१॥

श्रीखेमालरत्नजीके दो मनोरथोंको श्रीकिशोरसिंहजीने पूर्ण किया। पैरोंमें नूपुर बाँधकर आप श्रीगिरिधरलालजीके सामने नित्य नृत्य करते थे और दूसरे श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाके निमित्त अत्यन्त आनन्दपूर्वक घड़ा भरकर मधुर जल लाते थे। इस सेवासे आपका सिर कभी वंचित नहीं हुआ। आपकी वाणी निर्मल और उदार थी। उससे आपने भक्तिकी महिमाका विस्तार किया। आप श्रीरामकृष्णके प्रेमकी राशि, सुन्दर स्वभाव, विनयशील एवं भक्तोंको प्रिय लगनेवाले थे। सारा संसार बड़ाई करते हुए कहता था कि छोटी अवस्थामें ही श्रीरामरयनके पुत्र श्रीकिशोरसिंहजीने महत्पुरुषोंके लक्षणोंको धारण कर लिया॥ १२१॥

श्रीकिशोरसिंहजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकिशोरसिंहजी श्रीखेमालरत्नजीके पौत्र और श्रीरामरयनजीके पुत्र थे। शरीर त्यागते समय श्रीखेमाल-रत्नजीकी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा बह रही थी। कारण किसीकी समझमें नहीं आ रहा था। श्रीरामरयनजीने पूछा—'आपको क्या कष्ट है, आप स्पष्ट कह दीजिये।' श्रीखेमालरत्नजीने कहा—'मैंने अपने मनमें सेवाके दो मनोरथ किये थे, वे पूरे नहीं हुए। इसी बातका दुःख है।' वे कौनसे मनोरथ हैं, यह पूछनेपर आपने कहा कि दोमेंसे एक तो यह कि मैं भगवान् श्रीसीतारामजीके लिये अपने सिरपर रखकर जलभरा कलश नहीं लाया। दूसरा यह कि पैरोंमें घुँघरू बाँधकर कभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके आगे मैंने नृत्य नहीं किया।

श्रीखेमालरत्नजीकी इस बातको सुनकर उनके मन्त्री, परिवारी—पुत्र आदि राजापनेके अहंकार एवं लोकलाजके कारण चुप रह गये। परंतु उसी समय आपके पौत्र परम हरिभक्त श्रीकिशोरसिंहजी बोल उठे—'आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं इन दोनों सेवाओंको नित्य करूँगा। जबतक मेरे शरीरमें प्राण रहेंगे, तबतक नित्य-नियमको निभाऊँगा।' अपने पौत्रकी ऐसी प्रेममयी प्रतिज्ञा सुनकर श्रीखेमालरत्नजीके मनमें अपार सुख हुआ। उन्होंने उठकर श्रीकिशोरसिंहको छातीसे लगा लिया और फिर सुखपूर्वक अपने शरीरका त्याग किया। श्रीकिशोरसिंहने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका उन्होंने जीवनभर निर्वाह किया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

खेमाल तन त्याग समै अश्रु पात आँखिन ते बात सुत पूछैं अजू नीकें खोलि दीजिये।
कीजै पुण्य दान बहु, सम्पत्ति अमान भरी, धरीं हियें दोई सोई कहा सुनि लीजिये॥
बिबिध बड़ाई में समाई मति भई पै न नितही विचार अब मन पर खीजिये।
नीर भरि घट सीस धरिकै न ल्यायौ और नूपुर न बाँधि नृत्य कियौ नाहिं छीजियै॥ ४९१॥
रहे चुपचाप सबै जानी काम आप ही कौ, बोल्यौ यों किशोर नाती आज्ञा मोकों दीजियै।
यही नित करौं नहीं टरौं जोलौं जीवै तन मन में हुलास उठि, छाती लाय जीजियै॥

बहु सुख पाये, पाये वैसे ही निवाहे पन, गाये गुन लाल प्यारी अति मति भीजियै।
भक्ति बिसतार कियौ वैस लघु भीज्यौ, हियौ दियौ सनमान संत सभा सब रीझियै॥ ४९२॥

श्रीहरीदासजी

हरीदास हरिभक्त भक्ति मंदिर को कलसो।
भजन भाव परिपक्व हृदय भागीरथि जल सो॥
त्रिधा भाँति अति अननि राम की रीति निबाही।
हरि गुरु हरि बल भाँति तिनहि सेवा दृढ़ साही॥
पुरन इंदु प्रमुदित उदधि त्यों दास देखि बाढ़ै रली।
खेमाल रतन राठौर के सुफल बेलि मीठी फली॥ १२२॥

श्रीखेमालरत्न राठौरजीके वंशमें वैष्णव सुपुत्र उत्पन्न हुए। श्रीहरीदास भगवान्‌के एवं भगवद्भक्तोंके भक्त थे। भक्ति एवं भक्तरूपी मन्दिरके कलश थे। भजन-भावमें आप सुदृढ़ निष्ठावाले भक्त थे तथा आपका हृदय भागीरथी गंगाके समान पवित्र एवं निर्मल था। मन-वचन एवं कर्मसे आप अनन्य भक्त थे। श्रीरामरयनजीकी उपासना रीतिका ही आपने भी अनुसरण किया। इन्हें भगवत्तुल्य अपने श्रीगुरुदेवका बल भगवद्‌बलके समान ही था। इन दोनोंकी सेवा आपने राजोपचारोंसे की। जैसे शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाको देखकर समुद्र ऊँची लहरें लेकर बढ़ने लगता है, उसी प्रकार भगवद्भक्तोंको देखकर श्रीहरीदासजीके हृदयमें आनन्दसमुद्र उमड़ने लगता था॥ १२२॥

श्रीहरीदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीहरिदासजी बड़े सन्तसेवी थे, इनके यहाँ सन्त आते ही रहते थे। एक दिन ये घरपर नहीं थे। सन्तोंकी जमात आयी। सबका यथोचित सत्कार किया गया। जब सन्त विदा होकर चले गये, तब ये घरपर आये। सन्तोंका दर्शन न होनेसे इनके मनमें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और तुरंत व्याकुल होकर सन्तोंके दर्शनके लिये घरसे निकल पड़े। इतस्ततः सन्तोंको खोजते हुए, जिस किसीसे सन्तोंका पता पूछते जंगलकी ओर जा निकले। बावलेसे इधर-उधर घूम रहे थे, मानो इनका सर्वस्व लुट गया हो। इनकी यह निष्ठा देखकर स्वयं भगवान् सन्तवेष धारणकर इनके सम्मुख आ गये और बोले—'भक्तजी! क्या ढूँढ़ रहे हैं?' इन्होंने सन्तवेषधारी भगवान्‌के चरणोंमें पड़कर प्रणाम किया और बोले—'महाराज! सन्तोंको ढूँढ़ रहा हूँ। क्या आप बता सकते हैं—अन्य सन्त कहाँ गये? सन्तवेषधारी भगवान्‌ने हँसकर कहा—'सब मुझमें ही समझो। अतः मेरा ही दर्शन करके सबका दर्शन समझ लो।' श्रीहरिदासजीने कहा—'यह कैसे हो सकता है? क्या आप अकेले उन सभी सन्तोंके बराबर हरिगुणगान कर सकते हैं? क्या आप अकेले उन सबके बराबर प्रसाद पा सकते हैं?' सन्त भगवान्‌ने हँसकर कहा—'तुम चिन्ता मत करो, मैं अकेले ही सबके बराबर भगवद् गुणगान भी कर सकता हूँ और प्रसाद भी पा सकता हूँ।' इन्होंने कहा—अच्छा, आप पहले मुझे कुछ हरिगुणगान सुनाइये। सन्त भगवान्‌ने भावावेशमें ऐसा श्रीहरियश सुनाया, मानो हजार मुख और दो हजार जिह्वासे शेषजी ही हरिगुण गा रहे हैं। तब तो इन्हें विश्वास हो गया कि ये निश्चय ही कोई समर्थ सन्त हैं। फिर तो ये प्रेमवश उन सन्त भगवान्‌को अपने कन्धेपर बैठाकर ले आये और षोडशोपचार पूजा-स्तुति की। तदुपरान्त अनेक प्रकारका प्रचुर भोजन बनवाया। जब सन्तजी भोजन करने लगे तो ये पुनः प्रेमवश बोले—'महाराज! जैसे आपने हरिगुणगानमें अनेक सन्तोंकी सामर्थ्य अपनेमें दिखायी, वैसे ही प्रसाद पानेमें

भी आपको अपना ऐश्वर्य प्रकट करना होगा।' सन्त भगवान्ने कहा—'तुम तनिक भी चिन्ता मत करो, जो भी सामान बना हो सब मुझे परोसते जाओ, मैं अकेले ही अनन्त सन्तोंका भोजन करनेमें समर्थ हूँ।' फिर तो श्रीहरिदासजीने बड़े चाव-भावसे इन्हें भोजन कराया। सन्त भगवान् सब भोजन अकेले ही साफ कर गये। तब श्रीहरिदासजी जान गये कि यह तो भक्तवत्सल भगवान् ही मेरे मनोरथको पूर्ण करनेके लिये सन्तवेषमें पधारे हैं। फिर तो उन्होंने भगवान्की बड़ी स्तुति-प्रार्थना की। भगवान् इन्हें स्वस्वरूपका दर्शन कराकर अन्तर्धान हो गये।

श्रीचतुर्भुजजी कीर्तननिष्ठ

गायो भक्ति प्रताप सबहिं दासत्व दृढ़ायो।
राधा बल्लभ भजन अननिता गर्ब बढ़ायो॥
मुरलीधर की छाप कबित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अँघ्रि रेनु वहै धारी सिर भूषन॥
सतसंग महा आनंद मैं प्रेम रहत भीज्यो हियो।
(श्री) हरिबंस चरन बल चतुरभुज गोंड देस तीरथ कियो॥ १२३॥

गोस्वामी श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके श्रीचरणोंके प्रतापसे श्रीचतुर्भुजदासजीने गोंड़वाना प्रान्तको तीर्थके समान पवित्र बना दिया। आपने भक्ति-प्रतापका गान किया। उसके द्वारा सभी लोगोंमें दास्य-भाव दृढ़ किया। ठाकुर श्रीराधावल्लभजीके भजनकी शिक्षा देकर आपने अनन्य भक्तोंके परिवारको तथा अनन्यताके गौरवको बढ़ाया। आपकी कविता काव्य-दोषोंसे सर्वथा रहित है, उसमें आप 'मुरलीधर' की छाप लगाते थे। हरिभक्तोंके श्रीचरणोंकी रजको भूषणके समान मानकर उसे अपने सिरपर धारण करते थे। संत-संगमें तथा भगवत्प्रेमके परमानन्दमें सदा आपका हृदय सराबोर रहता था॥ १२३॥

श्रीचतुर्भुजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीचतुर्भुजजी गोंड़वानेके निवासी थे। इनका जन्म ब्राह्मण कुलमें हुआ था। ये श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके शिष्य श्रीवनचन्द्राचार्यजीके शिष्य थे, अतः इन्होंने श्रीहितहरिवंश महाप्रभुको परम गुरु माना है। गोंड़वाना देशमें उस समय भक्ति-भावका नाममात्र आचरण भी कहीं नहीं दिखलायी पड़ता था। वहाँके लोग ऐसे हिंसावादी थे कि मनुष्योंको मारकर अपने इष्टदेवको बलि चढ़ाते थे। श्रीचतुर्भुजजीने वहाँ जाकर देवताके कानमें श्रीकृष्ण-मन्त्र सुना दिया। देवताने वैष्णवी-दीक्षा स्वीकार कर ली और गाँवके लोगोंको स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग शीघ्र ही श्रीस्वामी चतुर्भुजदासजीके शिष्य बनकर भक्त-भगवान्की सेवा करो, उनके दास बनो। नहीं तो सबका अनिष्ट हो जायगा।' यह सुनकर प्रातःकाल होते ही गाँवके सभी लोग इनके पास दौड़कर आये। इन्होंने कण्ठी-तिलक देकर सबको दीक्षा प्रदान की।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

गोंड़वाने देश, भक्ति लेसहूँ न देखै, कहूँ, मानुस कों मारि इष्टदेव कों चढ़ायौ है।
तहाँ जाय देवता के मन्त्र लै सुनायौ कान लियौ उन मानि, गाँव सुपन सुनायौ है॥
'स्वामी चतुर्भुजजूके बेगि तुम दास होहु नातौ होय नास सब' गाँव भज्यौ आयौ है।
ऐसे शिष्य किये, माला कण्ठी पाय जिये, पाँव, लिये मन दिये, औ अनन्त सुख पायौ है॥ ४९३॥

श्रीचतुर्भुजजी अनेक प्रकारके व्यंजन-पक्वान्न भगवान्को भोग लगाते और बड़े प्रेमपूर्वक सन्तोंको पवाते,

सब प्रकारसे उन्हें प्रसन्न करते। श्रीमद्भागवतकी कथाओंका गान करते और लोगोंमें भक्ति-भावनाका प्रचार-प्रसार करते। एक बार एक चोर किसीका धन लेकर भागा। मालिक भी उसे पकड़नेके लिये उसके पीछे दौड़ा। उसे कहीं छिपनेका स्थान नहीं मिला। वह श्रीचतुर्भुजजीकी कथाके श्रोताओंमें घुस गया और वहीं छिपकर बैठ गया। भीड़में वह धनी उसे देख नहीं पाया। इसी बीच पुराणकी कथामें उस चोरने सुना कि 'मन्त्रकी दीक्षा लेनेसे जीवका दूसरा जन्म हो जाता है।' इस शिक्षाको सुनकर वह श्रीचतुर्भुजजीका शिष्य हो गया। भीड़ कम होनेपर धनीने उसे पकड़ लिया और शोर किया कि 'यह तो चोर है।' हाकिमके यहाँ उसे पकड़कर ले गया। पूछनेपर उसने कहा कि—'मैंने तो इस जन्ममें किसीका कुछ नहीं चुराया है।' परीक्षाके लिये उसके हाथमें कच्चे सूतका धागा लपेटकर एवं घी लगाकर पीपलका पत्ता रखकर लोहेका फार तपाकर रख दिया गया। उस समय उसने सभीके सामने उच्च स्वरसे कहा—यदि सचमुच गुरुदेव तथा गुरुग्रन्थके कथनानुसार दीक्षोपरान्त दूसरा जन्म हो जाता है तो यह तप्त लोहा मुझे नहीं जला सके। उसे दृढ़ विश्वास था, अतः भगवान्ने उसकी रक्षा की। उसके हाथ नहीं जले।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भोग लै लगावैं नाना, संतनि लड़ावै, कथा भागवत गावै, भाव भक्ति बिसतारियै।
भज्यौ धन लैके कोऊ, धनी पाछे पर्‌यौ सोऊ, आनिकै दबायौ, बैठि रह्यौ न निहारियै॥
निकसी पुरान बात करै नयौ गात दिक्षा शिक्षा सुनि शिष्य भयो, गह्यौ यों पुकारियै।
कहै 'या जनम मैं न लियौं कछू' दियौ फारो हाथ लै उबार्‌यौ प्रभु रीति लागी प्यारियै॥ ४९४॥

जब अग्नि-परीक्षामें वह सच्चा ईमानदार प्रमाणित हो गया, तब राजाने उस धनीको झूठा माना कि साधुओंको इसने झूठा कलंक लगाया—यह सोचकर उसने अपने सिपाहियोंसे कहा कि 'इसको अभी फाँसीपर चढ़ा दो।' आज्ञाको पाते ही वे लोग उसे पकड़कर ले चले। वह पहलेका चोर जो साधु बन गया था, इसकी फाँसीको कैसे सह सकता था? उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वह बोला कि 'मैंने इसका धन लिया है। यह झूठ नहीं बोलता है।' राजाने कहा—सन्तजी! आप सच्चे प्रमाणित होकर पुनः अब झूठे क्यों बन रहे हैं? उसने कहा—'श्रीस्वामी चतुर्भुजजी महाराजकी महिमा अनन्त है और उन्हींकी कृपासे मैं चोर होकर भी ईमानदार प्रमाणित हुआ।' ऐसा कहकर उसने शिक्षा-दीक्षा एवं पुनर्जन्मकी बात सुनायी। राजाने सब प्रसंग सुनकर उस धनीको भी छोड़ दिया और श्रीस्वामीजीके पास आकर उनसे उपदेश ग्रहण किया और उनका शिष्य बन गया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

राजा झूँठ मानि कह्यौ 'करो बिन प्रान याकौं, साधु ये विराजमान लै कलंक दियौ है'।
चले ठौर मारिबेकों, धारिबेकों सकै कैसे, नैन भरि आये नीर बोल्यौ धन लियौ है॥
कहै नृप साँचो ह्वैकै झूठो जिन हुजै संत, महिमा अनन्त कही 'स्वामी ऐसौ कियौ है'।
भूप सुनि आयौ उपदेश मन भायौ, शिष्य भयौ नयौ तन पायौ भीजि गयौ हियौ है॥ ४९५॥

एक बार सन्तोंकी एक मण्डली तीर्थाटन करती हुई जा रही थी। रास्तेमें उन्हें एक चनेका पका हुआ खेत मिल गया। सन्त लोग चने तोड़-तोड़कर खाने लगे। खेतके रखवालोंके मुख उदास हो गये। उन लोगोंने शोर मचाते हुए कहा—'आपलोग फसलको न उजाड़िये, यह श्रीस्वामी चतुर्भुजजीका खेत है।' यह सुनकर सन्तोंने कहा—'तब तो हमारा काम बन गया, यह तो हमारा ही खेत है।' किसीने जाकर स्वामीजीसे कह दिया कि 'सन्त लोग खेतको अपना मानकर तोड़-तोड़कर खा रहे हैं।' यह सुनते ही आप मिष्टान्न-प्रसाद लेकर खेतपर

आये और बड़े प्रसन्न होकर बोले—'सन्तोंने मुझे आज अपना मान लिया, इससे मुझे बहुत बड़ा सुख मिला।' इसके पश्चात् अनुनय-विनय करके सभी सन्तोंको आप अपने घर लिवा लाये और विविध प्रकारके व्यंजन-प्रसाद पवाकर उनकी सेवा की।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचतुर्भुजजीके इस सन्त-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

पकि रह्यौ खेत, सन्त आयकर तोरि लेत, जिते रखबारे मुख सेत सोर कियौ है।
कह्यौ स्वामी नाम, सुन्यौ कही 'बड़ौ काम भयौ, यह तौ हमारौ', सोई आप सुनि लियौ है॥
लै कै मिष्ठान्न आय, सुमुख बखान कीनौ, लीनौ, अपनाय आज भीज्यौ, मेरौ हियौ है।
लै गये लिवाय नाना भोजन कराय भक्ति चरचा चलाय, चाय हित रस पियौ है॥ ४९६॥

गोंड़वाने देशमें एक भूतोंका बाग था। वहाँ अनेकों भूत-प्रेत निवास करते थे। उनसे वहाँके लोग बहुत संत्रस्त थे। यदि कोई भूल-भटककर उधर चला आता, तो प्रेत उसे नचा-नचाकर मार डालते थे। प्रेतोंके डरसे लोग उधर खेती-बारी भी ठीकसे नहीं कर पाते थे। यदि कोई साहस करके कुछ खेती-बारी करना चाहता, तो प्रेत किसान और उसके बैलोंको मार डालते। उनकी खेती भी नष्ट कर डालते। ऐसे ही अनेक उपद्रव करते। जब लोग इन्हें बलि देते तब कुछ शान्त रहते। संयोगवश एक बार श्रीचतुर्भुजजी सन्तोंकी जमात लिये उधर ही जा पहुँचे। सन्तोंको किसी एकान्त उपयुक्त स्थानकी खोज थी। जहाँ जल-थल, फल-फूलका सुपास हो, जिससे कि वहाँ रुककर श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजा, भजन-साधन कर सकें। किसी दुष्टने उसी भूत बागका संकेत करते हुए कहा कि 'वह बहुत ही बढ़िया स्थल है। धूनी-पानीकी सुविधा है, सब प्रकारका सुख-सुपास है। आगन्तुक सन्त वहीं ठहरते हैं।' सन्तोंने उसकी बात सत्य मानकर, उसी बागमें जाकर झाड़ू-बुहारू लगाकर आसन लगाया। स्नान-ध्यान किया। श्रीठाकुरजीकी विधिपूर्वक पूजा-आरती की। शंख, घण्टा, घड़ियाल बजे। स्तुति, कीर्तन, दण्डवत्प्रणामके बाद चरणामृत-प्रसादका वितरण हुआ। संयोगकी बात, उस समय और सब प्रेत तो कहीं अन्यत्र गये हुए थे, केवल तीस प्रेत उपस्थित थे। उन सबने आरती-पूजाका दर्शन और नाम-संकीर्तनका श्रवण किया, जिससे उनके समस्त पाप नष्ट हो गये और उनका उद्धार हो गया। वे सब दिव्य रूप धारणकर भगवद्धामको चले गये। इसके बाद वे प्रेत आये, जो कहीं बाहर गये हुए थे। उनके साथ यमराजके दूत थे। जो उन्हें विविध प्रकारकी यातना दे रहे थे। अपने साथी प्रेतोंको पापमुक्त होकर भगवद्धाम गये जानकर ये प्रेत बड़े जोरोंसे हाहाकर करने लगे। तब श्रीचतुर्भुजजीने पूछा—'तुम लोग कौन हो और इतने दुखी होकर इतना शोर क्यों कर रहे हो? वे बोले—'हम सब प्रेत हैं, अपने कुकर्मोंके फलस्वरूप हमें प्रेतयोनि मिली है और हमें यमराजने रहनेके लिये यह बाग दिया है। आपने एक तो हमारी जगहपर दखल कर लिया और दूसरे हमारे बहुतसे साथियोंको पापमुक्त-कर उनका उद्धार कर दिया। हम बाहर गये थे, अतः रह गये। इसी शोकसे हम रो रहे हैं। हम भी आपके दरश-परशसे पापमुक्त होकर प्रेतयोनिसे उद्धार चाहते हैं। परंतु ये यमराजके दूत लोग हमें आपके पास आने नहीं देते हैं। अब आप ही हम लोगोंपर दया करके हमारा उद्धार करिये।'

श्रीचतुर्भुजजीने पूछा—'तुम लोगोंके उद्धारके लिये हम क्या करें? तुम्हारा जैसे भी उद्धार हो, हम वह करनेके लिये तैयार हैं।' तब प्रेतोंने कहा—'महाराज! एक गड्ढा खुदवाकर उसमें सभी सन्तोंका तथा अपना चरणामृत भरवा दीजिये। उसीका पान करनेसे हम सबका उद्धार हो जायगा।' श्रीचतुर्भुजदासजीने ऐसा ही किया। रातमें प्रेतोंने सन्त-चरणामृतका पान किया। सभी दिव्य देह धारणकर भगवद्धामको चले गये। प्रेतोंके मुक्त हो जानेपर यमदूत भागकर यमराजके पास पहुँचे और उन्होंने सब वृत्तान्त उनसे कह

सुनाया। यमराजने हँसकर कहा—'तुम लोग ऐसे अभागे हो कि प्रेत तो भक्तोंका दर्शनकर, चरणामृत पानकर तर गये, परंतु तुम लोग जैसेके तैसे रह गये।' जिस समय यमराज और यमदूतोंकी यह वार्ता हो रही थी, उसी समय यमराजके दूसरे दूत उसी गाँवके एक ब्राह्मणको बाँधकर ले गये थे। वह ब्राह्मण एक ओर खड़ा हुआ सभी बातें ध्यानपूर्वक सुन रहा था। साथ ही उसके मनमें ग्लानि हो रही थी कि मेरा सारा जीवन यों ही व्यर्थ चला गया। श्रीहरि और श्रीहरिदासोंकी कुछ सेवा भी मुझसे नहीं बनी। अब निश्चय ही नरकका कष्ट मुझे सहना पड़ेगा और प्रेत-पिशाचादि योनियोंमें भटकना पड़ेगा। इतनेमें यमराजने यमदूतोंको समझा-बुझाकर जब उस ब्राह्मणपर दृष्टि डाली तो एकदम जोरसे चिल्ला पड़े—'अरे! तुम लोग इस ब्राह्मणको क्यों बाँध लाये? अभी तो इसकी आयु शेष है। इसे वापस इसके शरीरमें पहुँचाओ और इसी नामवाले अमुक व्यक्तिको बाँधकर लाओ।' 'जल्दी करो, कहीं ऐसा न हो कि लोग इसके शरीरको जला दें। फिर मुश्किल पड़ जायगी।' यमदूत तत्काल उस ब्राह्मणको ले गये। लोग उस ब्राह्मणके शवको श्मशानमें ले जाकर चितापर रखकर आग लगाने ही वाले थे कि इतनेमें वह उठकर बैठ गया और बोला—'अरे भाई! अभी मैं मरा नहीं हूँ, मुझे मत जलाओ।' लोगोंने उसे चितासे उतारा और अत्यन्त कौतूहलपूर्वक उससे पूछने लगे—'पण्डितजी! आप तो मर गये थे, फिर जी कैसे गये?' ब्राह्मणने सब बात बतायी। उसके जीवित होनेका समाचार सुनकर भारी भीड़ एकत्र हो गयी। पुनः उसने यमपुरीका आँखों देखा हाल विस्तारपूर्वक सुनाया। भूत बागके सभी प्रेतोंका उद्धार, सन्त-चरणोदककी महिमा और यम-यमदूतोंका संवाद सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। लोगोंने कहा—'पण्डितजी! घर चलिये।' इन्होंने कहा कि 'अब मैं घर न जाकर पहले श्रीचतुर्भुजजी महाराजका सेवक बनूँगा और शेष जीवन भजन-साधनमें लगाऊँगा।' उस प्रसंगको सुनकर राजा-प्रजा सभी लोगोंने श्रीचतुर्भुजजीकी शिष्यता स्वीकार की, तिलक-कण्ठी धारणकर भजन-साधन और सन्त-सेवा करने लगे। इस प्रकार आपने गोंड़वानेको तीर्थ बना दिया।

श्रीचतुर्भुजजीके सम्बन्धमें 'रसिकअनन्य-भक्तमाल' में कथा आयी है कि ये गोंडवाने देशके अन्तर्गत गढ़ा ग्राममें निवास करते थे। इनके एक परम घनिष्ट मित्र थे, जिनका नाम था श्रीदामोदरदासजी, जो श्रीसेवकजीके नामसे प्रसिद्ध हुए। दोनों ही महानुभाव ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुए थे। दोनोंका सन्त-सेवामें बड़ा भाव था। भगवत्कृपासे दोनोंके मनमें संसारसे वैराग्य हो गया। दोनोंने निश्चय किया कि किसी सद्गुरुकी शरण ग्रहणकर एकान्तिक भावसे भगवान्‌का भजन करना चाहिये। इन्हीं दिनों गढ़ा ग्राममें श्रीवृन्दावनके कई रसिक सन्त पधारे। दोनोंने सन्तोंकी भावपूर्ण सेवा की। खूब सत्संग हुआ। सन्तोंने श्रीवृन्दावनकी निकुंज-लीलाका गान किया। उसे सुनकर ये दोनों बहुत प्रभावित हुए। इन दोनोंने सन्तोंसे किसी सिद्ध सद्गुरुका पता पूछा। तब उन्होंने श्रीहितहरिवंशजी महाप्रभुकी महिमाका गान किया। उसे सुनकर दोनों महानुभावोंने निश्चय किया कि हम श्रीहिताचार्य महाप्रभुसे ही दीक्षा लेंगे।' परंतु भगवान्‌की लीला बड़ी विलक्षण है। ये लोग अभी श्रीवृन्दावन जाकर दीक्षा लेनेका विचार कर ही रहे थे कि इधर श्रीमहाप्रभुजी नित्य-निकुंजमें प्रवेश कर गये। यह सुनकर इनके मनमें महान् वियोग व्याप्त हो गया। दोनों ही '**किं करोमि, क्व गच्छामि**' क्या करें! कहाँ जायँ!! की स्थितिमें पहुँच गये। फिर सन्तोंसे पता चला कि श्रीहिताचार्यकी गद्दीपर उनके पुत्र श्रीवनचन्द्रजी महाराज विराजमान होकर आश्रितजनोंको हितधर्मका उपदेश करते हैं। तब श्रीचतुर्भुजजीने श्रीसेवकजीसे कहा कि चलो, श्रीवनचन्द्राचार्यकी ही शरण ग्रहण करें; क्योंकि अपने शरीर नाशवान् हैं। श्रीसेवकजीने दृढ़तापूर्वक कहा कि—'हम तो श्रीहितहरिवंश महाप्रभुजीको ही गुरु बनायेंगे, नहीं तो इस शरीरको ही छोड़ देंगे।' श्रीचतुर्भुजजीने अपने निश्चयके अनुसार श्रीवृन्दावन आकर श्रीवनचन्द्राचार्यजीसे

मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की। इधर अन्नजलका परित्यागकर श्रीसेवकजी महाप्रभुके नामकी रट लगाने लगे। इनकी बलवती निष्ठा एवं दृढ़ लगनको देखकर श्रीमहाप्रभुजीने स्वप्नमें निजमन्त्रका उपदेश दिया एवं कृपा करके दिव्य वृन्दावन, श्रीयमुनाजी, निकुंज महल एवं सखी परिकरोंके सहित श्रीप्रिया-प्रियतमजीका दर्शन कराया। श्रीसेवकजी कृतार्थ हो गये। श्रीचतुर्भुजजी श्रीवृन्दावनसे लौटकर जब गढ़ा पहुँचे, तो दोनोंने अपने-अपने मन्त्रोंको मिलाया। मन्त्र एक ही हैं, यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीचतुर्भुजजीका श्रीहित महाप्रभुमें परमानुराग था, कारण कि वे परम गुरु थे। इसलिये मूल छप्पयमें श्रीनाभाजीने लिखा कि—**'श्रीहरिबंस चरन बल चतुर्भुज।'**

श्रीकृष्णदासजी चालक

सक्र कोप सुठि चरित प्रसिध पुनि पंचाध्याई।
कृष्न रुक्मिनी केलि रुचिर भोजन बिधि गाई॥
गिरिराज धरन की छाप गिरा जलधर ज्यों गाजै।
संत सिखंडी खंड हृदै आनँद के काजै॥
जाड़ा हरन जग जाड़ता कृष्नदास देही धरी।
चालक कि चरचरी चहूँ दिसि उदधि अंत लौं अनुसरी॥ १२४॥

श्रीकृष्णदासजी चालकके चर्चरी छन्द (गीत) समुद्रके उस पारतक फैले। समस्त पृथ्वीभरके निवासियोंने सप्रेम गाकर आनन्द प्राप्त किया। अपनी पूजा भंग हुई जानकर इन्द्रने जो व्रजपर कोप किया, उसके कारण जो श्रीकृष्णचन्द्रकी 'गोवर्धनधारणलीला' हुई, आपने इस 'गोवर्धनधारणलीला', प्रसिद्ध रासपंचाध्यायी, श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-प्रणय एवं श्रीभोजनविधि आदिपर अनेक सुन्दर काव्य लिखे। आप अपनी रचनाओंमें 'गिरिराजधरन' की छाप लगाते थे। मेघगर्जनके समान आपकी वाणी मधुर एवं गम्भीर थी। जगत्के अर्थात् सभी प्राणियोंके जड़तारूप जाड़ेको हरनेके लिये आपने सूर्यके समान भक्तितेजोमय शरीर धारण किया॥ १२४॥

श्रीकृष्णदासजी चालकके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकृष्णदासजी भगवान् श्रीकृष्णके भक्त थे। उन्होंने उनकी लीलाओंपर आधारित अनेक काव्योंकी रचना की थी। उनके द्वारा रचित चर्चरी (फाग) गीत बड़े ही सरस और मधुर होते थे। आप अपनी रचनाओंमें 'गिरिराजधरन' की छाप लगाते थे। एक भाटने श्रीकृष्णदासजी चालककी चर्चरियोंसे इनकी छाप हटाकर अपनी छाप लगा दी और एक राजाके दरबारमें आकर उन्हें सुनाया। लोगोंने खूब वाह-वाह की। इनामोंके ढेर लग गये। राजाने भी बहुत-सा इनाम दिया। परंतु इसने एक तो भक्तकी कविता चुराई, दूसरे उनकी छाप हटाकर अपनी छाप लगायी। यह भगवदपराध भगवान्‌ने सहा नहीं गया। उसी दिनसे उस भाटके सिरमें भयंकर पीड़ा होने लगी। पीड़ाके कारण वह छटपटाता रहता और उसे सारी रात नींद नहीं आ पाती थी। उधर राजाको भगवान्‌ने स्वप्न दिया कि मेरे भक्तकी वाणी जगत्के प्राणियोंका अज्ञानान्धकार दूर करनेवाली है, भाटने उसे चुराकर तुच्छ धन और वाह-वाहीके लिये तुम्हारे दरबारमें सुनाया। यह अच्छा नहीं किया। इस अपराधसे भाट तो मरेगा ही, तुम भी सुखी नहीं रहोगे। अगर कुशल चाहो तो उसे समझाओ और डाँटो-फटकारो, चालककी चर्चरियोंको गाकर जितना धन कमाया है, वह सब कृष्णदासजीको दिलवाओ।

प्रात:काल होते ही राजाने स्वप्नकी बातका स्मरणकर भाटको बुलवाया और फटकारते हुए कहा—'अरे मूर्ख! तूने छलपूर्वक भक्त कृष्णदासजी चालकको कविताओंको अपनी बताकर दरबारमें सुनाया और इनाम प्राप्त किया है।' 'अब तुम वह सम्पूर्ण धन उन्हें ही अर्पण करो और अपराध क्षमा कराओ, अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं है।' अब उस भाटको अपने सिरदर्द और रात-दिन की बेचैनीका रहस्य मालूम पड़ गया। उसने तुरंत जाकर श्रीकृष्णदासजीके चरण पकड़े, क्षमा-याचना की और सारा धन उन्हें भेंट कर दिया। तब वह शारीरिक एवं मानसिक वेदनाओंसे मुक्त हुआ तथा राजदण्ड और यमदण्डसे छुटकारा पाया। उसने पुन: ऐसा अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा की। साधु-सज्जनोंके प्रति दीन बनकर उनके सत्संगमें जाने लगा। यह भक्तवाणीका चमत्कार है।

श्रीसन्तदासजी

गोपीनाथ पद राग भोग छप्पन भुंजाए।
पृथु पद्धति अनुसार देव दंपति दुलराए॥
भगवत भक्त समान ठौर द्वै को बल गायो।
कबित सूर सों मिलत भेद कछु जात न पायो॥
जन्म कर्म लीला जुगति रहसि भक्ति भेदी मरम।
बिमलानंद प्रबोध बँस संतदास सीवाँ धरम॥१२५॥

श्रीविमलानन्दजी प्रबोधके कुलमें श्रीसंतदासजी वैष्णवधर्मकी सीमा हुए। भगवान् श्रीगोपीनाथजीके चरणोंमें आपका अत्यन्त अनुराग था। आप उन्हें नित्य छप्पन प्रकारके व्यंजन बनाकर भोग लगाते थे। श्रीपृथुजीकी पूजा-पद्धतिके अनुसार आप प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी सेवा करते थे, लाड़ लड़ाते थे। भक्त और भगवान् दोनोंको समान मानकर आपने उनका सुयश वर्णन किया और इन्हींका बल रखते थे। आपकी कविताएँ श्रीसूरदासजीसे मिलती-जुलती हैं, उनमें कुछ भी अन्तर नहीं प्रतीत होता है। भगवान्‌के जन्म, कर्म और उनकी लीलाओंका आपने बड़ी चतुरताके साथ वर्णन किया है। आप अनन्य भक्तिके गुप्त रहस्य एवं भेदोंको अच्छी प्रकारसे जानते थे॥१२५॥

श्रीसन्तदासजीके भक्तिका माहात्म्य बताते हुए श्रीप्रियादासजी कहते हैं—

बसत 'निवाई' ग्राम, स्याम सों लगाई मति, ऐसी मन आई, भोग छप्पन लगाये हैं।
बात की सचाई यह जग में दिखाई, सेवैं जगन्नाथ देव आप रुचि सौं जिमाये हैं॥
राजा कों सुपन दियौ नाम लै प्रगट कियौ, 'सन्त ही के गृह मैं तो जेवों यों रिझाये हैं'।
भक्तिके अधीन, सब जानत प्रवीण, जन ऐसे हैं, रंगीन, लाल ठौर ठौर गाये हैं॥४९७॥

कवित्तका भाव यह है—परमभक्त श्रीसन्तदासजी 'निवाई' ग्राममें निवास करते थे। इन्होंने भगवान् श्यामसुन्दरके चरणोंमें बुद्धि लगा रखी थी। एक दिन आपके मनमें ऐसा आया कि मैं अपने श्रीठाकुरजीको छप्पन भोग लगाऊँ तो आपने धनका अभाव होनेपर भी जैसे-तैसे (घरका सामान बेंचकर) व्यवस्था करके श्रीठाकुरजीको छप्पन भोग लगाया। श्रीठाकुरजीने भी आपकी सच्ची प्रीतिको संसारमें प्रकट करके दिखा दिया। आप ऐसी प्रेमपूर्वक श्रीठाकुरजीकी सेवा करते थे कि स्वयं श्रीजगन्नाथ भगवान्‌ने आपके यहाँ अत्यन्त रुचिपूर्वक भोग आरोगा और पुरीनरेशको स्वप्नमें बताया कि आजकल मैं सन्तजीके यहाँ ही भोग आरोगता

हूँ। इनके प्रेमने मुझे रिझा लिया है। इस प्रकार श्रीजगन्नाथभगवान्‌ने श्रीसन्तजीका नाम लेकर उन्हें संसारमें प्रकट कर दिया। ऐसा करके भगवान्‌ने दिखा दिया कि मैं भक्तोंकी भक्तिके अधीन हूँ।

श्रीसन्तदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसन्तदासजी निबाई ग्राममें निवास करते थे। यह ग्राम जयपुरसे टोंक मार्गमें पड़ता है। अब भी वहाँ ठाकुर श्रीगोपीनाथजी महाराज विराजमान हैं। समय-समयपर उत्सव होते हैं, अनेक भावुक भक्त दर्शनार्थ आते हैं। श्रीसन्तदासजीके वंशधर आज भी श्रीगोपीनाथजीकी सेवा करते हैं। वहाँ आपकी वाणी भी प्राप्त है। मूल छप्पयमें **'बिमलानंद प्रबोधवंश'** शब्द आया है। इन्हीं श्रीविमलानन्दजीका स्मरण छ० ९६ में किया गया है—**'बिमलानंद अमृत श्रए।'** इन्हींके वंशमें श्रीसन्तदासजी हुए।

एक बार सन्तजी श्रीजगन्नाथभगवान्‌का दर्शन करने गये। वहाँ इन्होंने श्रीजगन्नाथभगवान्‌के छप्पन-भोगका दर्शन किया तो इनके मनमें भी विचार आया कि मैं भी अपने श्रीठाकुर गोपीनाथजीको छप्पन-भोग लगाऊँ। फिर मनमें विचार आया कि अच्छा तो यह होता कि श्रीजगन्नाथजी भी उस दिन वहीं आरोगते। यह निश्चयकर इन्होंने श्रीजगन्नाथजीको भी निमन्त्रण दे दिया। फिर घर आकर भक्तराजने खूब धूम-धामसे छप्पन-भोगकी तैयारी की। निश्चित समयपर श्रीजगन्नाथजी भी पधारे और बड़े प्रेमपूर्वक भोग आरोगा। वैसे श्रीजगन्नाथजीको नित्य ही छप्पन-भोग लगता है, परंतु आज सन्तजीके यहाँ जो स्वाद आया, वह स्वाद उन्हें कभी नहीं मिला था। अतः आप भोग आरोगकर पुनः पुरी न जाकर सन्तजीके यहाँ ही रह गये। तब सन्तजीने दूसरे दिन भी जैसे-तैसे छप्पन-भोगकी तैयारी की। क्योंकि वे जानते थे कि श्रीजगन्नाथजी तो छप्पन-भोग ही आरोगते हैं। उस दिन भी श्रीजगन्नाथजी नहीं गये। भोग पाकर फिर वहीं रह गये। तब तीसरे दिन फिर सन्तजीने घरका सामान बेंच-बेंचकर छप्पन-भोगकी व्यवस्था की। उस दिन भी श्रीजगन्नाथभगवान्‌ने जानेका नाम नहीं लिया। तब तो सन्तजीने भगवान्‌से हाथ-जोड़कर कहा कि 'प्रभो! मैं तो गरीब हूँ। मेरे पास इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो मैं नित्य आपको छप्पन-भोग लगाऊँ। तीन दिन तो जैसे-तैसे भोग लगा, अब आगे गुंजाइश नहीं है।' तब भगवान्‌ने कहा—'भक्तराजजी! आपके प्रेमको देखकर मेरी जानेकी इच्छा ही नहीं करती है। आप घबड़ाइये नहीं, मैं सब इन्तजाम किये देता हूँ। इसके बाद भगवान्‌ने पुरीनरेशको स्वप्नमें निर्देश किया कि आजकल मैं निबाई ग्राममें सन्तजीके यहाँ हूँ। आप यहाँपर नित्य छप्पन-भोगकी व्यवस्था करिये। फिर तो राजाने वहाँ भी सदाके लिये छप्पन-भोगकी व्यवस्था कर दी। इस प्रकार श्रीसन्तजीकी सच्ची भावनापर रीझकर भगवान्‌ने हमेशाके लिये छप्पन-भोगका इन्तजाम कर दिया।'

श्रीसूरदास मदनमोहनजी

गान काव्य गुन रासि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधाकृष्न उपास्य रहसि सुख के अधिकारी॥
नवरस मुख्य सिंगार बिबिधि भाँतिनि करि गायो।
बदन उच्चरित बेर सहस पायनि ह्वै धायो॥
अँगीकार की अवधि यह ज्यों आख्या भ्राता जमल।
(श्री) मदनमोहन सुरदास की नाम सृंखला जुरि अटल॥ १२६॥

श्रीसूरदास मदनमोहनजी गानविद्याके और काव्य-शास्त्रके परम विशेषज्ञ थे। आपका हृदय अति ही

सरल एवं सरस था। सभीके प्रति हितकी भावना थी। ये श्रीराधाकृष्णजीकी सखीके अवतार थे। उनके एकान्त निकुंज-विहारके दर्शन एवं अनुभव-सुखके अधिकारी थे। नवरसोंमें मुख्य जो शृंगार रस है, उसे आपने अनेक प्रकारसे गाया। आपके लीला-पद मुखसे निकलते समय ही हजारों पैरवाले होकर इतस्ततः दौड़ने लग जाते थे अर्थात् सब ओर दूर-दूरतक फैल जाते थे। भगवान्ने सब प्रकारसे आपको अपना भक्त मानकर अंगीकार कर लिया। जिस प्रकार अश्विनीकुमारोंका परस्परका सम्बन्ध अच्छेद्य है, उसी प्रकार भक्त श्रीसूरदास और भगवान् श्रीमदनमोहनके नामका सम्बन्ध अकाट्य जुड़ गया। यह परस्पर अंगीकारकी सीमा है॥ १२६॥

श्रीसूरदास मदनमोहनजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसूरदास मदनमोहनजीका जन्म सं० १५६० वि० माना जाता है, आप जातिसे ब्राह्मण और गौड़ीय सम्प्रदायके नैष्ठिक ब्राह्मण थे। हिन्दी साहित्येतिहासकी भक्ति काव्यधारामें वल्लभ-सम्प्रदायान्तर्गत जो स्थान श्रीसूरदासजीका है, वही स्थान चैतन्य-सम्प्रदायमें श्रीसूरदास मदनमोहनजीका है। आप श्रीसनातन गोस्वामीजीके शिष्य थे और श्रीमदनमोहनजी आपके आराध्य थे। आपका वास्तविक नाम सूरध्वज और गुरुप्रदत्त नाम 'सूरदास' था। आप प्रारम्भमें अपनी काव्य रचनाओंमें 'सूरदास' नामकी ही छाप लगाया करते थे, परंतु एक घटना ऐसी घटी कि उसके कारण आप अपनी रचनाओंमें अपने आराध्यका भी नाम देने लगे। हुआ यूँ कि एक बार आप भगवान्की रहस्य-लीलाओंका चिन्तन कर रहे थे तथा उसे गीतपदमें प्रस्तुत करनेका प्रयास भी करते जा रहे थे। संयोगकी बात, पद पूरा नहीं बन पाया था और आपको निद्राने आ घेरा। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें जब आप पुनः उठकर पद-रचनामें तत्पर हुए तो देखा कि पद पूरा हो गया है और अन्तमें 'सूरदास मदनमोहन' की छाप लगी है। आपने इसे भगवत्प्रसाद माना और तबसे अपनी रचनाओंमें आप 'सूरदास मदनमोहन' की छाप लगाने लगे और उसी नामसे विख्यात हो गये। आपके पद संगीतकी विविध राग-रागिनियों तथा ताल-लयमें निबद्ध हैं, जिनमें मधुर रसकी काव्यात्मक व्यंजना हुई है। सम्प्रति आपके २२५ पद प्राप्त होते हैं, इनका रचनाकाल सं० १५९० से सं० १६०० वि० के मध्यका है। आपके पद ब्रज-वृन्दावनमें बड़े ही लोकप्रिय हैं और वहाँके मन्दिरोंमें गाये जाते हैं। यद्यपि आप गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें दीक्षित थे, परंतु आपके पदोंमें किसी भी प्रकारका साम्प्रदायिक पक्षपात नहीं अवलोकित होता, वस्तुतः आपके पद मानसी भावनामें लीन होकर गाये गये हैं, अतः उनमें दिव्य भावोल्लासकी अभिव्यंजना हुई है।

आपके जीवनका प्रारम्भिक समय हरदोई जिलेके संडीला नामक स्थानपर बीता, जहाँ आप तत्कालीन भारत-सम्राट् अकबर बादशाहद्वारा कर-वसूलीके लिये नियुक्त किये गये थे, परंतु गोलोकनाथके चाकरको भला किसी तुच्छ बादशाहकी गुलामी कितने दिन बर्दाश्त होती और आपने सब कुछ छोड़-छाड़कर ब्रज-वृन्दावनकी राह ली और शेष जीवन वृन्दावनमें ही बिताया। वृन्दावनमें पुराने मदनमोहनजीके मन्दिरके निकट श्रीसनातन गोस्वामीके समाधिस्थलके मार्गके एक कोनेमें आज भी आपकी समाधि विद्यमान है।

एक बार आपने संडीलेके बाजारमें बहुत अच्छा गुड़ देखकर दाम बढ़ाकर उसे खरीद लिया। आपने विचारा कि इस गुड़से बने मालपुवे श्रीमदनगोपाललालजी पावेंगे। इस प्रकार प्रेमके आवेशमें आकर आपने बैलगाड़ियों, छकड़ोंमें गुड़ भरवाकर श्रीवृन्दावनधामको भेज दिया। यहाँ आकर वह गुड़ बीस गुना अधिक दामोंका पड़ा। गुड़की गाड़ियाँ रात हो जानेपर पहुँचीं। श्रीठाकुरजी शयन कर रहे थे। गुड़ भण्डारमें रख दिया गया। श्रीमदनमोहनलालजीने पुजारी एवं भण्डारियोंको स्वप्न दिया कि 'इसी गुड़के मालपुवे बनाकर

अभी भोग लगाओ।' यह प्रेमोपहार भी इसी योग्य था। उसी समय मालपुवे बने। श्रीठाकुरजीने जागकर फिर मालपुवा भोग आरोगा।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

सूरदास नाम नैन कंज अभिराम फूले, झूले रंग पीके नीके जीके और ज्याये हैं।
भये सो अमीन यों सँडीलेके नवीन रीति प्रीति गुड़ देखि दाम बीस गुने लाये हैं॥
कही पूवा पावैं आप मदनगोपाल लाल परे प्रेम ख्याल लादि छकरा पठाये हैं।
आये निसि भये स्याम कियौ आज्ञा जोग लैके अबही लगावौ भोग जागे फिरि पाये हैं॥ ४९८॥

श्रीसूरदास मदनमोहनजीने एक पद बनाया, जिसमें अपनी भक्तिके गुह्यरूपको प्रकट करके दिखा दिया। उस पदका अन्तिम तुक है—*'सन्तन की पानही को रक्षक कहाऊँ मैं।'* आपको गाते सुनकर किसी सन्तने इनकी परीक्षा लेनी चाही। एक दिन श्रीमदनमोहनजीके द्वारपर उसे श्रीसूरदासजी मिल गये। उसने अपने जूते उतारकर इनसे कहा—'जरा, आप इन्हें देखना, मैं दर्शन करके अभी आ जाऊँगा।' यह कहकर वह मन्दिरमें जाकर संकीर्तनमें बैठ गया। इधर मन्दिरके भीतर विराजमान श्रीगोसाईंजी एवं पुजारीजीने सेवक भेजकर इन्हें कई बार बुलाया। तब आपने सूचना भेजी कि 'आज मेरे इष्टदेवने मुझे एक बहुत बड़ी प्यारी सेवा सौंपी है और मैं सन्त-चरण-कमलका ध्यान कर रहा हूँ।' यह सुनकर सभीने एवं परीक्षक सन्तने भी आकर देखा तो आपकी करनी कथनीके अनुसार थी, सभी इस निष्ठापर न्यौछावर हो गये।

श्रीप्रियादासजीने श्रीसूरदास मदनमोहनजीके इस सन्तप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

पद लै बनायौ, भक्तिरूप दरसायौ, दूर सन्तनि की पानही को रक्षक कहाऊँ मैं।
काहू सीखि लियो साधु लियौ चाहै परचैकों आये द्वार मन्दिरकै खोलि कही आऊँ मैं॥
रह्यौ बैठि जाय जूती हाथ में उठाय लीनी, कीनी, पूरी आस मेरी निसि दिन गाऊँ मैं।
भीतर बुलाये श्रीगुसाईं बार दोय चार, सेवा सौंपी सार कह्यौं जनपग ध्याऊँ मैं॥ ४९९॥

श्रीसूरदासजीने तहसील वसूलसे प्राप्त बादशाह अकबरकी सारी सम्पत्ति साधु-सन्तोंको खिला-पिलाकर बराबर कर दी। बादशाहकी आज्ञासे वित्त विभागके अधिकारीगण दिल्लीसे खजाना लेनेके लिये संडीलेको आये और बोले कि 'आप राजाज्ञाको मानिये, खजाना भेजिये।' आपने स्वीकारकर सन्दूकोंमें कंकड़-पत्थर भर दिये। साथ ही सन्दूकोंमें एक-एक पत्र रख दिया, जिसमें लिख दिया कि 'संडीलेकी कुल आय तेरह लाख हुई। उसे सब साधुओंने मिल-जुलकर गटक लिया। इसीसे अब हम चुपचाप श्रीवृन्दावन जा रहे हैं।' सन्दूकें दिल्ली पहुँचीं और बादशाहके सामने खोली गयीं तो उनमें रुपयोंके स्थानपर कंकड़-पत्थर भरे मिले, एक पर्चा मिला। जिसे पढ़कर बादशाह श्रीसूरदासजीकी भक्तिपर रीझ गया तथा वह भी प्रेममें डूब गया, परंतु वित्तमन्त्री टोडरमलने पुनः सिपाहियोंको आज्ञा देते हुए कहा कि 'सूरदासने सरकारी धनको नष्ट कर दिया है, इसलिये उसे जाकर पकड़ लाओ।' अभक्त मन्त्रीने इन्हें पकड़ मँगवाया। लोगोंने इन्हें बादशाहके सामने हाजिर करना चाहा तो उसने कहा कि 'इन्हें मुझसे दूर ही रखो।' किंतु टोडरमलने इन्हें दुष्ट दस्तमखाँ नामक जेलरके हवाले कर दिया। उसने इन्हें कारागारमें बन्दकर असह्य कष्ट देना शुरू कर दिया। कुछ दिन बाद आपने यह दोहा लिखकर अकबरके पास भेजा—

एक तम तो अँधियारो करै ये तो दसतम आह।
दस्तम से रक्षा करो दिनमणि अकबर शाह॥

इसे पढ़ते ही बादशाह प्रसन्न हो गया और कारागारसे उन्हें मुक्त कराकर कहा—आप जाकर

श्रीवृन्दावनवास करो। मैंने आपके ऊपर तेरह लाख रुपये न्यौछावर कर दिये। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि 'अकबर' शब्दका अर्थ है—'मायाके आवरणसे मुक्त—परमात्मा।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

पृथवीपति संपति लै साधुनि खवाइ दई, भई नहीं संक यों निसंक रंग पागे हैं।
आये सो खजानौ लैन मानौ यह बात अहो पाथर लै भरे आप आधी निसि भागे हैं॥
रुक्का लिखि डारे, दाम 'गटके ये संतनि नै, याते हम सटके हैं' चले जब जागे हैं।
पहुँचे हुजूर, भूप खोलिकै सन्दूक देखैं, पेखैं आंक कागद में रीझि अनुरागे हैं॥ ५००॥
लैनकों पठाये, कही निपट रिझायें हमें, मन में न ल्याये, लिखी 'वन तन डार्‌यौ है'।
'टोंडर' दिवान कह्यौ 'धनकों विरान कियौ ल्यावौ रे पकरि' मूढ़ फेरिकै संभार्‌यौ है॥
लै गये हुजूर, नृप बोल्यौ 'होंसों दूर राखौ,' ऐसो महाक्रूर सौंपि दुष्ट कष्ट धार्‌यौ है।
दोहा लिखि दीनौ 'अकबर' देखि रीझि लीनौ जावौ वाही ठौर तौपै दर्व सब बार्‌यौ है॥ ५०१॥

श्रीसूरदासजी मदनमोहन दिल्लीसे श्रीवृन्दावनको आ गये। उनका मन निकुंज-लीला-माधुरीमें मग्न हो गया। ऐसी प्रेमावस्थामें आपने जो भी पद बनाये, वे भगवत्स्वरूपके रसकी राशि हुए। आपके हृदयमें युगलकिशोर प्रिया-प्रियतमके नित्य-विहारका दिव्य-प्रकाश छाया रहता था। इस विषयमें श्रीप्रियादासजी कहते हैं—

आये वृन्दावन, मन माधुरी में भीजि रह्यौ कह्यौ जोई पद, सुन्यौ रूप रस रास है।
जा दिन प्रगट भयौ, गयौ शत जोजन पै, जन पै सुनत भेद बाढ़ी जग प्यास है॥
'सूरध्वज' द्विज निज महल टहल पाय चहल पहल हिये जुगल प्रकास है।
मदनमोहन जू हैं इष्ट इष्ट महाप्रभु अचरज कहा कृपा दृष्टि अनायास है॥ ५०२॥

श्रीकात्यायनीजी

मारग जात अकेल गान रसना जु उचारै।
ताल मृदंगी बृच्छ रीझि अंबर तहँ गारै॥
गोप नारि अनुसारि गिरा गदगद आबेसी।
जग प्रपंच ते दूरि अजा परसैं नहिं लेसी॥
भगवान रीति अनुराग की संत साखि मेली सही।
कात्यायनि के प्रेम की बात जात कापै कही॥ १२७॥

गौड़देशके राजाकी कन्या तथा व्रजगोपीकी अवताररूपा भक्तिमती श्रीकात्यायनीजीके श्रीकृष्णप्रेमका वर्णन यथार्थ रूपसे कोई कवि कैसे कर सकता है! प्रेमानन्दमें मग्न रहनेके कारण आपकी ऐसी विचित्र दशा हो गयी थी कि मार्गमें अकेले चलती हुई भी श्रीकृष्णके लीलापदोंका गान करती थीं। उस समय आप वृक्षोंको देखकर (पत्तोंकी खड़खड़ाहट सुनकर) अनुभव करतीं कि ये ताल-मृदंग आदि वाद्योंके बजानेवाले प्रेमी लोग हैं। उनके ऊपर रीझकर पुरस्काररूपमें उन्हें न्यौछावर देने लगतीं और अपने वस्त्राभूषण अपने शरीरसे उतारकर वृक्षोंको पहना देतीं। व्रजगोपियोंकी पद्धतिसे भगवान्‌का स्मरण-भजन करतीं। प्रेमावेशमें आपकी वाणी गद्‌गद रहती। जगत्‌के प्रपंचोंसे आप सर्वदा दूर ही रहतीं। माया आपको थोड़ा भी स्पर्श

नहीं कर पाती थी। आपकी श्रीकृष्णप्रेमकी रीतिको संतोंने सही माना, वे उसके साक्षी रहे और उसकी बारम्बार सराहना करते थे। भगवान् श्यामसुन्दर इनके प्रेमवश दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ करते थे तथा इनके साथ विविध विनोद करते थे॥ १२७॥

श्रीकात्यायनीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकात्यायनीजी गौड़देशके राजाकी कन्या और ब्रजगोपीका अवतार थीं। इनमें विलक्षण प्रेम था। प्रेमावेशमें आकर ये महलोंसे बाहर भाग जातीं और एकान्त वन, उपवनमें जाकर श्रीकृष्णके विरहमें लीलापदोंका गान करने लगतीं। उस समय वृक्षोंकी हलचलको, पत्तोंकी खड़खड़ाहटको देखकर अनुभव करतीं कि ये भक्तजन मेरे गायनके साथ ताल-मृदंग बजा रहे हैं। वस्तुतः ताल-मृदंग बजानेवाले आकाशचारी थे। उनकी ध्वनिसे आपको आनन्द विशेष आता, तब आपको वे-लता वृक्ष गोपीरूप दीखते और आप कहतीं कि वाह! आपने बहुत अच्छा मदृंग-ताल बजाया। कृपया यह पुरस्कार स्वीकार कीजिये। ऐसा कहकर शरीरके वस्त्र-आभूषणोंको उन्हें पहना देतीं थी। इन्हें यह सुधि नहीं रहती कि मैं वस्त्रहीन हो जाऊँगी। इनके ऐसा करते ही दिव्य सहचरियाँ इन्हें वस्त्रादि पहना देती थीं। राजाकी कन्या थीं, अतः इनके प्रेमको देखकर सज्जनोंकी सम्मतिसे राजा इन्हें रोकते नहीं थे। जब जहाँ भी भागकर जातीं, इन्हें जाने दिया जाता। साथमें सामग्री और शिविरोंके साथ दास-दासी इनके पीछे लगे रहते, इनकी सार-सँभाल करते। जंगलमें कई-कई दिनोंतक मूर्च्छित रहतीं। इस प्रकार ये अपनेको श्रीवृन्दावनमें ही मानकर यमुनाजी एवं गिरिराजजीकी वन्दनाके एवं विरहके तथा मिलनके पदोंको गाया करतीं। भगवान् श्यामसुन्दर इनके प्रेमवश इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करते तथा विविध विनोद करते।

श्रीकृष्णप्रेमदीवानी कात्यायनीको परिवारवालोंने पहले पागल जाना या भूत-प्रेतका आवेश समझा, अतः घरके भीतर बन्द करके सांकल लगा दी। तो भी आपको जब प्रेमावेश आया तो बाहर निकल गयीं। उन्हें बन्द नहीं रखा जा सका। इसे भी लोगोंने भूत-प्रेतोंका प्रभाव समझा। कभी-कभी अपने-आप इनकी इच्छासे साँकल खुल जाती और कभी-कभी साँकल बन्द रहते हुए भी ये बाहर विचरती-रोती-गाती अपने प्यारेको ढूँढ़ती दिखायी पड़तीं। लोग इनके इस दिव्य प्रभावको समझनेमें असमर्थ रहे। एक बार एक तान्त्रिकने भूत भगानेके विचारसे लौहशलाकाको अग्निमें तपाकर लाल करके इन्हें दागनेका प्रयत्न किया। परंतु वह अत्यन्त गर्म लौहशलाका इनके शरीरका स्पर्श होते ही एकदम शीतल हो गयी। तान्त्रिकके शरीरमें दाह उत्पन्न हो गया। इन प्रत्यक्ष चमत्कारोंको देखकर भावुक सज्जनोंने सबको समझाया कि यह न तो पागलपन है और न भूत-प्रेतावेश है। ये सब प्रेमाभक्तिके अष्ट सात्त्विक भाव हैं। हमारे-तुम्हारे परम सौभाग्य हैं, जो इनका दर्शन एवं सम्पर्क हमें प्राप्त है। इनकी सेवा करो। तभीसे माता-पिता आदि सभीका इनमें सद्भाव हो गया। इस अलौकिक बालिकाके ऊपर श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा है—ऐसा जानकर बहुतसे लोग दर्शन करके कृतार्थ होते थे। पिता-माता इनकी किसी भी क्रियामें हस्तक्षेप नहीं करते। कभी-कभी ये भोजनादि विपुल सामग्रीको लुटा देतीं, गौओं, मोर-बन्दरोंको खिला देतीं, तो भी वे लोग सन्तुष्ट ही रहते। एक बार ये अकेले ही कृष्ण-कीर्तन करती वनमें विचर रही थीं। इनके प्रभावको न जाननेवालोंने इनके सौन्दर्यको देखकर इन्हें कुदृष्टिसे देखा तो तत्क्षण अन्धे हो गये। कुछ लोग स्पर्श करनेकी इच्छासे इनकी ओर बढ़े, तबतक कात्यायनीजीका शरीर अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला-सा लगा, तब वे अपनी गलतीपर पश्चात्ताप करते हुए इनके चरणोंकी शरणमें आये। क्षमा-प्रार्थनाकर सदाके लिये साधुवृत्ति अपनायी। इस प्रकार अनेक विमुख जन हरि-सम्मुख हुए। भक्तोंके हृदयमें आपके प्रभावने भक्तिको अत्यन्त सुदृढ़ कर दिया। प्रेममग्न होकर आपको नृत्य-गानमें कभी थकावट

नहीं आती थी। अत: श्रीनाभाजीने लिखा कि इनके प्रेमका वर्णन वाणीद्वारा हो ही नहीं सकता है।

श्रीमुरारिदासजी

बिदित बिलौंदा गाँव देस मुरधर सब जानै।
महा महौछे मध्य संत परिषद परवानै॥
पगनि घूँघुरु बाँधि राम को चरित दिखायो।
देसी साराँगपानि हंस ता संग पठायो॥
उपमा और न जगत में पृथा बिना नाहिन बियो।
कृष्न बिरह कुंती सरीर त्यों मुरारि तन त्यागियो॥ १२८॥

श्रीमुरारिदासजी मारवाड़ प्रान्तके प्रसिद्ध ग्राम 'बिलौंदा' में विराजते थे। प्रतिवर्ष आप एक सुन्दर महोत्सव किया करते थे। एक बार महा-महोत्सवमें सन्तसभाके बीच आपको भक्त-भगवत्‌का पार्षद प्रमाणित किया गया। हरिनाम-लीला-संकीर्तनके प्रसंगमें आपने पैरोंमें घुँघरू बाँधकर भगवान् श्रीरामके चरित्रको दिखाया। गान और भाव-प्रदर्शनकी विलक्षणतासे दर्शकोंको प्रत्यक्ष लीलाका-सा अनुभव हुआ। फिर आपने शास्त्रीय संगीत-पद्धतिसे 'देसी सारंग' रागको गाते हुए सारंगधनुर्धर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वनगमनका दृश्य प्रस्तुत किया और विरह-व्यथासे व्याकुल होकर अपने प्राण-पखेरूको भगवान्‌के साथ भेज दिया। श्रीकृष्णके वियोगमें जैसे श्रीकुन्तीजीने अपने शरीरको त्यागा था, उसी प्रकार श्रीमुरारिदासजीने श्रीरामके विरहमें शरीरका परित्याग किया। श्रीकुन्तीजीके अतिरिक्त इनके शरीर-त्यागमें दूसरे किसीकी उपमा नहीं दी जा सकती है॥ १२८॥

श्रीमुरारिदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमुरारीदासजीका जन्म छत्तीसगढ़के विलौदाँ नामक ग्रामके एक अकिंचन ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। बाल्यावस्थामें ही माताने इनके हृदयमें गीतोंके माध्यमसे कृष्ण-भक्तिका बीज-वपन किया था। मुरारीदासने माँके कण्ठसे निकले गीत सुनकर कण्ठस्थ कर लिये और वे उन्हें गाया करते थे। गाँवके लोग मुरारीसे गीत सुनकर प्रसन्न होते, आग्रह करके उनसे गीत सुनते। गाँवकी स्त्रियाँ भी इनसे प्रसन्न रहतीं। इन्होंने सुन्दर रूप एवं मधुर स्वर पाया था।

अकस्मात् मुरारीके माता-पिता दोनोंका निधन हो गया। अनाथ मुरारीके मनमें गाँव छोड़ देनेकी बात आती। ये प्राय: गाँवके मन्दिरमें जाकर वहाँ घण्टों बैठे रहते थे, कारण कि वहीं इन्हें शान्ति मिलती थी। परंतु स्वयं मुरारीका चित्त उचट गया था। गाँवकी उदार स्त्रियाँ कभी-कभी अपने घरसे कुछ भोजन लाकर इनको खिला जाती थीं।

एक बार लगातार तीन दिनतक इनको कुछ भी खानेको न मिला। न किसीने इनसे पूछा, न ये स्वयं किसीके यहाँ गये। भूख-प्याससे प्राण व्याकुल थे, फिर भी इनके मनमें यह बात नहीं आयी कि किसीके यहाँसे कुछ माँगकर खा लें। आधी रात बीत चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा था, परंतु मुरारीके हृदयकी वही दशा थी, जो पानी सूखनेपर मछलियोंकी होती है। इनको विश्वास हो गया कि मेरी यह आखिरी रात है। मन बहलानेके लिये गीत गुनगुनाने लगे, किंतु बीचमें ही बेहोश होकर गिर पड़े। कुछ देर बाद इन्हें अनुभव हुआ कि उस जीर्ण-शीर्ण मन्दिरसे सुन्दर वस्त्राभरणोंसे सुसज्जित कोई देवी निकली। उसके एक हाथमें

नाना व्यंजनोंसे भरा थाल और दूसरे हाथमें शीतल जलसे भरी झारी थी। उसने मुरारिके सिरको गोदमें रखकर कहा, 'बेटा! जिसकी कोई भी सुध लेनेवाला नहीं होता, उसकी सुध मैं लेती हूँ। उठो, भोजन करो।' मुरारि समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है? देवीने अपने हाथोंसे इन्हें भोजन कराया। खिला-पिलाकर प्यारसे इनके सिरको सहलाया। मुरारि देवीमाताकी गोदमें सिर रखकर बेखबर सो गया।

दूसरे दिन जब उसकी नींद खुली तो रातकी घटनाका स्मरणकर विक्षिप्त-सा हो गया। जब कुछ होश हुआ तो उसे एक सनक सूझी। जो भी मिल जाता, उसीके चरणोंमें गिरता और 'माँ-माँ' पुकारता। धीरे-धीरे यह बात वहाँके राजाके कानोंतक पहुँची। उसने इन्हें पकड़ मँगाया और इनके इस आचरणपर इन्हें राज्य-निर्वासनका दण्ड दिया। छत्तीसगढ़को अन्तिम नमस्कारकर ये चल पड़े। रमते हुए वृन्दावन पहुँचे। इष्टदेवके धाममें पहुँचकर इन्हें अपार आनन्द हुआ। इधर अपने कृत्यपर छत्तीसगढ़-नरेशको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे मुरारिको छत्तीसगढ़ वापस लाने वृन्दावन गये। वृन्दावनमें इनका पता नहीं चल सका। वहाँके निवासियोंको मुरारि नामके इस नवागतका पता नहीं था। एक दिन किसीने बताया कि एक पागल अलमस्त होकर यमुनाके किनारे घूमा करता है। नरेशने समझा यही मुरारिदास होंगे। राजाने जाकर दण्डवत् प्रणाम किया और अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगते हुए इनसे छत्तीसगढ़ चलनेकी प्रार्थना की। मुरारिदास अपने प्रियतमके धाममें अनुरक्त हो गये थे, भला क्यों वापस जाते? राजाने पालकी मँगायी और बलात् मुरारिदासको उसपर बैठाया। मुरारिदास जा रहे थे, किंतु उनके मनमें वृन्दावन छूटनेकी असह्य पीड़ा थी।

छत्तीसगढ़ पहुँचकर राजाने बहुत बड़ा उत्सव-समारोह किया। मुरारिदासके लौटनेपर मानो छत्तीसगढ़में नवीन प्राण, नई चेतना आ गयी थी। इसके बाद राजाकी सारी दिनचर्या साधु-महात्माओंकी सेवामें ही व्यतीत होने लगी।

श्रीमुरारिदासजी राजाके गुरु थे और भगवद्भक्तोंके दासानुदास थे। एक बार आप स्नान करके वापस आ रहे थे, उसी समय एक निम्न जातिके भक्तकी आवाज आपके कानमें पड़ी। वे भगवत्सेवा करके पुकार रहे थे—'जो भगवान्के चरणामृतको लेनेका पात्र हो, वह आकर ले ले।' इस शब्दको सुनते ही आप उसके घरमें पहुँच गये। इन्हें देखकर वह डर गया और थर-थर काँपने लगा। आपने कहा—'लाइये, हमें चरणामृत दीजिये, मैं इसे पानकर अपने जीवनको धारण करूँ।' उन्होंने कहा—'हम तो नीच हैं, अति ही तुच्छ हैं, 'चरणामृत लो' ऐसा जो मैंने पुकारकर कहा, यह भूल की। ऐसी मेरी योग्यता नहीं है, जो मैं आपको चरणामृत दूँ।' परंतु श्रीमुरारिदासजी साधुतामें बड़े भारी प्रवीण थे। अतः इन्होंने अत्यन्त हठ करके चरणामृत ले ही लिया। आपने अपने मनमें विचारा कि 'श्यामसुन्दरको तो भक्ति ही प्रिय है, प्रेमाभक्तिके प्रवाहमें जाति-पाँतिके अहंकार-दोष बह जाते हैं।' उसके यहाँ चरणामृत लेनेकी इनकी बात गाँवभरमें फैल गयी। भक्तद्वेषी-विमुख लोग इनकी निन्दा करने लगे और राजाके पास जाकर उनके भी कान भर दिये। यह बात उन्हें भी अच्छी नहीं लगी। एक दिन श्रीमुरारिदासजी राजाके प्रेम-भावको देखनेके लिये उनके पास आये तो उनके व्यवहार एवं उनकी चेष्टासे आपने यह अनुमान कर लिया कि राजामें मेरे प्रति जो प्रेमभाव पहले था, वह जाता रहा।

लोगोंका असद्भाव देखकर श्रीमुरारिदासजी अपना सब सामान वहीं छोड़कर अन्यत्र चले गये। जब राजाने यह बात सुनी तो वह दुःखमें डूब गया। राजाके नगरमें प्रति वर्ष एक सन्तोंका सम्मेलन होता था। उसमें बड़े-बड़े अच्छे सन्त-महात्मा पधारते थे। कथा-कीर्तनकी धूम मचती थी। परंतु अब श्रीमुरारिदासजीके चले जानेके बाद किसी साधु-महात्माकी छाया भी वहाँ नहीं दिखलायी पड़ती थी। राजाने इसे भारी उत्पात

माना और जहाँ श्रीमुरारिदासजी विराजते थे, वहाँ उन्हें लिवानेके लिये पहुँचा। राजाने पृथ्वीपर पड़कर कई बार साष्टांग दण्डवत् की। उसके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। श्रीमुरारिदासजी राजाको सन्त-भगवन्तसे विमुख मानकर उसका मुख भी नहीं देख रहे थे।

राजा हाथ जोड़े खड़ा था। उसकी बुद्धि दीनतामें डूबी हुई थी। उसने कहा—'आप मुझे मेरे अपराधके अनुरूप करोड़ों दण्ड दीजिये। वे मुझे स्वीकार हैं, परंतु मेरी ओर देखिये, मुझे दर्शन दीजिये और आशीर्वाद दीजिये। मुझ दीन-हीनको शरणमें रखिये।' ऐसी दीनवाणीको सुनकर श्रीमुरारिदासजी प्रसन्न हो गये और राजाके साथ आप पुनः उसी गाँवको लौट आये। आपका नाम सुनते ही अनेक सन्तजन आपसे मिलनेके लिये दौड़कर आये। विशाल सन्त-समाज एकत्र हुआ और बड़ा भारी उत्सव हुआ।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीमुरारिदास रहे राजगुरु, भक्त-दास, आवत स्नान किये कान धुनि कीजियै।
जाति कौ चमार करै सेवा सो उचारि कहै 'प्रभु चरणामृत कौ पात्र जोई लीजियै'॥
गये घरमाँझ वाके, देखि डर काँपि उठ्यौ, 'ल्यावौ देवौ हमैं, अहो पान करि जीजियै'।
कही 'मैं तो न्यूनतुच्छ, बोले हमहूँतें स्वच्छ जानै कोऊ नाहिं तुम्हें मेरी मति भीजियै'॥ ५०३॥
बहै दृग नीर, कहै मेरे बड़ी पीर भई, तुम मति धीर, नहीं मेरी जोग्यताई है।
लियौ ई निपट हठ, बड़े पटु साधुता में, स्यामै प्यारी भक्ति, जाति पाँति लै बहाई है॥
फैलि गई गाँव, वाकौ नाँव लै चबाव करैं भरैं नृप कान सुनि वाहू न सुहाई है।
आयौ प्रभु देखिबेकों, गयौ वह रंग उड़ि, जान्यौ सो प्रसंग सुन्यौ वहै बात छाई है॥ ५०४॥
गये सब त्यागि, प्रभु सेवा ही सों राग जिन्हैं नृप दुख पागि, गयौ, सुनी यह बात है।
होत हो समाज, सदा भूपके बरस माँझ, दरस न काहू होत, मान्यौ उतपात है॥
चलेई लिवायबे कौं जहाँ श्रीमुरारिदास, करी साष्टांग रास नैन अश्रुपात है।
मुखहूँ न देखे वाको बिमुख कै लेखे, अहो पेखे लोग कहैं यह गुरु शिष्य ख्यात है॥ ५०५॥
ठाढ़ौ हाथ जोरि, मति दीनता मैं बोरि, 'कीजै दण्ड मौपै कोरि यों निहारि मुख भाखियै'।
घटती न मेरी, आप कृपा ही की घटती है, बढ़ती सी करी तातें न्यूनताई राखियै॥
सुनिकै प्रसन्न भये कहे लै प्रसंग नये, बालमीक आदि दै दै नाना बिधि साखियै।
आये निज गाम, नाम सुनि सब साधु धाये भयौई समाज वैसो देखि अभिलाखियै॥ ५०६॥

उस महोत्सवमें बहुतसे नृत्य-कीर्तन-कला-प्रवीण लोग आये। नृत्य-गान एवं नाम-संकीर्तनकी मंगलमयी मधुर ध्वनि चारों ओर छा गयी। परंतु सन्त-समाजके मनमें श्रीमुरारिदासजी महाराजकी नृत्य-संकीर्तन-कलाको देखनेकी विशेष उत्कण्ठा हुई। सन्तोंकी हार्दिक अभिलाषाको आप समझ गये, क्योंकि भावके प्रवीण-पारखी थे। सुन्दर नूपुरोंको अपने पैरोंमें बाँधा और सात-स्वर, तीन ग्रामों (सप्तक-मन्द, मध्य, तीव्र)-में तन्मय होकर नृत्य-कीर्तन करने लगे। आपने प्रेमके भावावेशमें आकर श्रीरामजीके वनगमनका चरित्र गाया। उस समय विरह सहन न होनेके कारण आपके प्राण भी प्रभुके साथ ही चले गये। आपका शरीर चित्रके समान स्तब्ध रह गया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीमुरारिजीके इस सच्चे प्रेमका वर्णन इस प्रकार किया है—

आये बहु गुनी जन नृत्य गान छाई धुनि ऐपै संत सभा मन स्वामी गुण देखिये।
जानिकै प्रबीन उठे, नूपुर नवीन बाँधि सप्तस्वर, तीन ग्राम, लीन भये पेखिये॥

गायौ रघुनाथजू कौ बनकौ गमन समै ता सँग गमन प्रान चित्र सम लेखिये।
भयौ दुख रासि 'कहाँ पैये श्रीमुरारिदास', गए रामपास, ऐसौ हिये अवरेखिये॥ ५०७॥

ऐसा भी कहा जाता है कि मुरारिदास जब अपने गाँववाले टूटे मन्दिरकी सीढ़ियोंपर ही दिन-रात व्यतीत करते थे। वहाँ दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती थी।

एक दिन प्रातःकाल लोगोंने देखा कि मुरारिदासका कन्था और करवा मन्दिरकी सीढ़ियोंपर पड़े हुए हैं, परंतु वे स्वयं वहाँ नहीं हैं। लोगोंने बहुत ढूँढ़ा, परंतु कहीं पता नहीं चला। उन्होंने सोचा, ये अपने प्यारेके धाम चले गये। इसके बाद इनका कहीं सन्धान नहीं मिला, न छत्तीसगढ़में, न वृन्दावनमें।

भक्तमालसुमेरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

त्रेता काब्य निबंध करी सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरैं ब्रह्महत्यादि पलायन॥
अब भक्तनि सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम चरन रस मत्त रटत अह निसि ब्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥ १२९॥

कराल कलिकालके कपटी प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने गोस्वामी श्रीतुलसीदासके रूपमें अवतार लिया। आदिकविने त्रेतायुगमें श्रीरामायण नामक प्रबन्ध महाकाव्य लिखा। जिसकी (श्लोक अथवा रामायण) संख्या सौ करोड़ है। इसके एक-एक अक्षरके उच्चारणमात्रसे ब्रह्महत्या आदि महापापपरायण प्राणी भी मुक्त हो जाते हैं। अब इस कलियुगमें भी उन्हीं श्रीवाल्मीकिजीने भगवद्भक्तोंको सुख प्रदान करनेके लिये पुनः शरीर धारणकर भगवान् श्रीरामजीकी लीलाओंका विशेष विस्तार किया, श्रीरामचरितमानस आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। ये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीसीतारामके पदपद्मके प्रेमपरागका पानकर सर्वदा उन्मत्त रहते थे और नियम-निष्ठाओंका पालन दृढ़तासे करते थे। दिन-रात श्रीरामनामको रटते थे। इस अपार संसार-सागरको पार करनेके लिये आपने श्रीरामचरितमानसरूप सुन्दर-सुगम नौकाका निर्माण किया॥ १२९॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) श्रीतुलसीदासजीका बाल्यकाल और उनके द्वारा गृहस्थका परित्याग

प्रयागके पास चित्रकूट जिलेमें राजापुर नामक एक ग्राम है, वहाँ आत्माराम दूबे नामके एक प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम हुलसी था। संवत् १५५४ की श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन अभुक्त मूल नक्षत्रमें इन्हीं भाग्यवान् दम्पतीके यहाँ बारह महीनेतक गर्भमें रहनेके पश्चात् गोस्वामी तुलसीदासजीका जन्म हुआ। जन्मके दूसरे दिन इनकी माता असार-संसारसे चल बसीं। दासी चुनियाँने बड़े प्रेमसे बालकका पालन-पोषण किया। जब तुलसीदास लगभग साढ़े पाँच वर्षके हुए, चुनियाँका भी देहान्त हो गया, अब तो बालक अनाथ हो गया। वह द्वार-द्वार भटकने लगा। इसपर जगज्जननी पार्वतीजीको उस होनहार बालकपर दया आयी। वे ब्राह्मणीका वेष धारणकर प्रतिदिन उसके पास जातीं और उसे अपने हाथों भोजन करा आतीं।

इधर भगवान् शंकरजीकी प्रेरणासे रामशैलपर रहनेवाले श्रीअनन्तानन्दजीके प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्दजीने इस बालकको ढूँढ़ निकाला और उसका नाम 'रामबोला' रखा। उसे वे अयोध्या ले गये और वहाँ संवत् १५६१ माघ शुक्ला पंचमी शुक्रवारको उसका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया। बिना सिखाये ही बालक रामबोलाने गायत्री-मन्त्रका उच्चारण किया। इसके बाद नरहरि स्वामीने वैष्णवोंके पाँच संस्कार करके रामबोलाको राममन्त्रकी दीक्षा दी और अयोध्यामें ही रहकर उन्हें विद्याध्ययन कराने लगे। वहाँसे कुछ दिन बाद गुरु-शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे। वहाँ श्रीनरहरिजीने तुलसीदासको श्रीरामचरित सुनाया। कुछ दिन बाद वे काशी चले आये। काशीमें शेषसनातनजीके पास रहकर तुलसीदासजीने पन्द्रह वर्षतक वेद-वेदांगका अध्ययन किया। तत्पश्चात् अपने विद्यागुरुसे आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमिको लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने विधिपूर्वक अपने पिता आदिका श्राद्ध किया और वहीं रहकर लोगोंको भगवान् रामकी कथा सुनाने लगे।

संवत् १५८३ ज्येष्ठ शुक्ला १३ गुरुवारको भारद्वाजगोत्रकी एक सुन्दरी कन्याके साथ उनका विवाह हुआ और वे सुखपूर्वक अपनी नवविवाहिता वधूके साथ रहने लगे। एक बार उनकी स्त्री अपने भाईके साथ मायके चली गयी। पीछे-पीछे तुलसीदासजी भी वहाँ जा पहुँचे। उनकी पत्नीने इसपर उन्हें बहुत धिक्कारा और कहा कि 'मेरे इस हाड़-मांसके शरीरमें जितनी तुम्हारी आसक्ति है, उससे आधी भी यदि भगवान्‌में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो गया होता।'

तुलसीदासजीको ये शब्द लग गये। वे एक क्षण भी नहीं रुके, तुरंत वहाँसे चल दिये।

वहाँसे चलकर तुलसीदासजी प्रयाग आये। वहाँ उन्होंने गृहस्थवेशका परित्यागकर साधुवेश ग्रहण किया। फिर तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे।

श्रीप्रियादासजीने गोस्वामीजीके गृहत्यागका इस प्रकार वर्णन किया है—

तियो सों सनेह बिन पूछे पिता गेह गई, भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आए हैं।
बधू अति लाज भई रिस सों निकसि गई, प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं॥
सुनी जब बात मानो ह्वै गयौ प्रभात, वह पाछे पछितात तजि काशीपुरी धाए हैं।
कियौ तहाँ वास प्रभु सेवा लैं प्रकास कींनौं, लीनौं दृढ़ भाव नैन रूपके तिसाए हैं॥ ५०८॥

(ख) काशीमें श्रीहनुमान्‌जीसे भेंट

काशीमें तुलसीदासजी रामकथा कहने लगे। वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान्‌जीका पता बतलाया। हनुमान्‌जीसे मिलकर तुलसीदासजीने उनसे श्रीरघुनाथजीका दर्शन करानेकी प्रार्थना की। हनुमान्‌जीने कहा, 'तुम्हें चित्रकूटमें रघुनाथजीके दर्शन होंगे।' इसपर तुलसीदासजी चित्रकूटकी ओर चल पड़े। चित्रकूट पहुँचकर रामघाटपर उन्होंने अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले थे। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ोंपर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदासजी उन्हें देखकर मुग्ध हो गये, परंतु उन्हें पहचान न सके। पीछेसे हनुमान्‌जीने आकर उन्हें सारा भेद बताया तो वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे। हनुमान्‌जीने उन्हें सान्त्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सौच चल शेष पाय, भूत हू विशेष कोऊ, बोल्यौ सुख मानि हनुमान् जू बताए हैं।
रामायन कथा सो रसायन है काननि को, आवत प्रथम पाछे जात घृना छाए हैं॥

जाय पहिचानि संग चले उर आनि आए वन मधि जानि धाय पाँय लपटाए हैं।
करैं तिरस्कार कही सकौगे न टारि, मैं तो जाने रससार रूप धर्‌यौ जैसे गाए हैं॥ ५०९॥
'माँगि लीजै वर' कही 'दीजै राम भूप रूप, अति ही अनूप, नित नैन अभिलाखियै'।
कियौ लै संकेत, वाही दिन ही सौं लाग्यौ हेत, आई सोई समैं चेत कब छबि चाखियै॥
आए रघुनाथ, साथ लछिमन, चढ़े घोरे, पट रङ्ग बोरे हरे कैसे मन राखियै।
पाछे हनुमान आये बोले 'देखे प्रान प्यारे, नेकु न निहारे मैं तो भले फेरि भाखियै'॥ ५१०॥

(ग) चित्रकूटमें भगवान् श्रीरामके दर्शन और काशीमें श्रीशंकरजीसे वरप्राप्ति

संवत् १६०७ की मौनी अमावस्या बुधवारको उनके सामने भगवान् श्रीराम पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालकरूपमें तुलसीदासजीसे कहा—बाबा! हमें चन्दन दो। हनुमान्‌जीने सोचा, वे इस बार भी धोखा न खा जायँ, इसलिये उन्होंने तोतेका रूप धारण करके यह दोहा कहा—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

तुलसीदासजी उस अद्भुत छबिको निहारकर शरीरकी सुधि भूल गये। भगवान्‌ने अपने हाथसे चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदासजीके मस्तकपर लगाया और अन्तर्धान हो गये।

संवत् १६२८ में ये हनुमान्‌जीकी आज्ञासे अयोध्याकी ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयागमें माघमेला था। वहाँ कुछ दिन वे ठहर गये। पर्वके छः दिन बाद एक वटवृक्षके नीचे उन्हें भरद्वाज और याज्ञवल्क्यमुनिके दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्रमें अपने गुरुसे सुनी थी। वहाँसे ये काशी चले आये और वहाँ प्रह्लादघाटपर एक ब्राह्मणके घर निवास किया। वहाँ उनके अन्दर कवित्वशक्तिका स्फुरण हुआ और वे संस्कृतमें पद्य-रचना करने लगे, परंतु दिनमें वे जितने पद्य रचते, रात्रिमें वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदासजीको स्वप्न हुआ। भगवान् शंकरने उन्हें आदेश दिया कि 'तुम अयोध्यामें जाकर रहो और हिन्दीमें काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वादसे तुम्हारी कविता सामवेदके समान फलवती होगी।' तुलसीदासजी उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर काशीसे अयोध्या चले आये।

संवत् १६३१ का प्रारम्भ हुआ। उस साल रामनवमीके दिन प्रायः वैसा ही योग था, जैसा त्रेतायुगमें रामजन्मके दिन था। उस दिन प्रातःकाल श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिनमें ग्रन्थकी समाप्ति हुई। संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें रामविवाहके दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये। इसके बाद भगवान्‌की आज्ञासे तुलसीदासजी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान् विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णाको श्रीरामचरितमानस सुनाया। रातको पुस्तक श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें रख दी गयी। सबेरे जब पट खोला गया तो उसपर लिखा हुआ पाया गया—**'सत्यं शिवं सुन्दरम्।'** और नीचे भगवान् शंकरकी सही थी। उस समय उपस्थित लोगोंने **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** की आवाज भी कानोंसे सुनी।

(घ) भगवन्नामनिष्ठाकी एक घटना

एक बार एक ब्राह्मण (विप्रचन्द) हत्या करके फिर उसके प्रायश्चित्तस्वरूप बहुतसे तीर्थोंमें घूमता-फिरता काशी आया। वह मुखसे पुकारकर कहता था—'राम-राम! मैं हत्यारा हूँ, मुझे भिक्षा दीजिये।' गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उसके मुखसे अति सुन्दर भगवन्नाम सुनकर उसे अपने निवास-स्थानमें बुला लिया और उसे अपनी पंक्तिमें बैठाकर भगवत्प्रसाद पवाया, उसे शुद्ध कर लिया। काशीके ब्राह्मणोंने जब यह बात सुनी

तो उन्होंने एक सभा की और उसमें श्रीतुलसीदासजीको बुलवाया। सभी पण्डितोंने आपसे पूछा कि प्रायश्चित्त पूरा हुए बिना इस हत्यारेका पाप कैसे दूर हो गया? श्रीगोसाईंजीने कहा—'आपको कैसे विश्वास होगा, सो कहिये।' इसपर पण्डितोंने कहा—'इसके हाथसे यदि श्रीशंकरजीका नाँदिया खा ले तो हमलोग इसे अपनी जाति-पंगतिमें ले लेंगे।' इस बातको आपने स्वीकार कर लिया और उसे एक थालमें सजाकर प्रसाद दिया। सब लोग काशीमें ज्ञानवापीके निकट नन्दीश्वरके पास पहुँचे, जहाँकी शर्त रखी थी। श्रीगोसाईंजीने कहा—हे नन्दीश्वर! यदि यह ब्राह्मण राम-नामके प्रतापसे शुद्ध हो गया है तो आप इसके हाथसे प्रसाद स्वीकार करके नाम-महिमाको प्रमाणित कीजिये। ऐसी प्रार्थना सुनकर नन्दीश्वरने प्रसन्न होकर प्रसाद खा लिया। सभी लोगोंने रामचन्द्रजीकी एवं श्रीरामनामकी जय-जयकार की और तुलसीदासकी नामनिष्ठापर बलिहार हो गये।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

हत्या करि विप्र एक, तीरथ करत आयौ, कहै मुख 'राम' भिक्षा डारियै हत्यारे कौं।
सुनि अभिराम नाम धाम में बुलाय लियौ दियौ लै प्रसाद कियौ सुद्ध गायौ प्यारे कौं॥
भई द्विज सभा कहि बोलि कै पठाये आप 'कैसे गयौ पाप, सङ्ग लैके जेये न्यारे कौं।
पोथी तुम बाँचौ, हिये भाव नहीं साँचौ अजू ताते मति काँचौ, दूर करै न अन्ध्यारे कौं'॥ ५११॥
देखी पोथी बाँच, नाम महिमा हूँ कही साँच, ऐपै हत्या करै कैसें तरै कहि दीजियै।
'आवै जौ प्रतीति कहौ', कही याके हाथ जेंवैं शिवजू कौ बैल तब पङ्गति में लीजियै'॥
थार मैं प्रसाद दियौ चले जहाँ पन कियौ, बोले 'आप नाम कै प्रसाद मति भीजियै'।
जैसे तुम जानो तैसी कैसी कै बखानों अहो, सुनिके प्रसन्न पायो, जै जै धुनि रीझियै॥ ५१२॥

(ङ) श्रीराम-लक्ष्मणद्वारा तुलसीदासजीकी कुटियापर पहरा देना

काशीके पण्डितोंको गोस्वामीजीसे ईर्ष्या हो गयी थी। वे दल बाँधकर तुलसीदासजीकी निन्दा करने लगे और उनके द्वारा रचित श्रीरामचरितमानसको भी नष्ट कर देनेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुरानेके लिये दो चोर भेजे। चोरोंने जाकर देखा कि तुलसीदासजीकी कुटीके आसपास दो वीर धनुष-बाण लिये पहरा दे रहे हैं। वे बड़े ही सुन्दर श्याम और गौर वर्णके थे। उनके दर्शनसे चोरोंकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समयसे चोरी करना छोड़ दिया और भजनमें लग गये।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आये निशि चोर, चोरी करन हरन धन, देखे श्याम घन, हाथ चाप सर लिये हैं।
जब जब आवैं बान सांधि डरपावैं, एतौ अति मड़रावै, ऐपै बली दूरि किये हैं॥
भोर आय पूछैं 'अजू! साँवरो किशोर कौन' सुन करि मौन रहे, आँसू डारि दिये हैं।
दई सो लुटाय, जानी चौकी राम राय दई, लई उन दिक्षा शिक्षा, शुद्ध भये हिये हैं॥ ५१३॥

इधर पण्डितोंने और कोई उपाय न देख श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीको उस पुस्तकको देखनेकी प्रेरणा की। श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उसपर यह सम्मति लिख दी—

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

'इस काशीरूपी आनन्दवनमें तुलसीदास चलता-फिरता तुलसीका पौधा है। उसकी कवितारूपी मंजरी बड़ी ही सुन्दर है, जिसपर श्रीरामरूपी भँवरा सदा मँडराया करता है।'

पण्डितोंको इसपर भी सन्तोष नहीं हुआ। तब पुस्तककी परीक्षाका एक उपाय और सोचा गया। भगवान् विश्वनाथके सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रोंके नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। मन्दिर बन्द कर दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगोंने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदोंके ऊपर रखा हुआ है। अब तो पण्डित लोग बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदासजीसे क्षमा माँगी और भक्तिसे उनका चरणोदक लिया।

(च) रामभक्तिके प्रभावसे एक स्त्रीके पतिको जीवनदान देनेकी घटना

एक बार एक ब्राह्मणका देहान्त हो गया था। उसकी पत्नी उसके साथ सती होनेके लिये जा रही थी। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी अपनी कुटीके द्वारपर बैठे हुए भजन कर रहे थे। उस स्त्रीने इन्हें दूरसे ही देखा तो फिर समीप आकर उसने इनके श्रीचरणोंमें सप्रेम प्रणाम किया। आपने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'सौभाग्यवती होओ।' उसने कहा—'महाराजजी! मेरे पतिका स्वर्गवास हो गया है और मैं सती होनेके लिये श्मशानघाटपर जा रही हूँ। तब इस आशीर्वादका क्या अर्थ होगा?' गोसाईंजीने कहा—'अब तो मेरे मुखसे आशीर्वाद निकल चुका है, तुम और तुम्हारे घरके सभी लोग यदि भगवान् श्रीरामका भजन करें तो मैं तुम्हारे मृत पतिको जीवित कर दूँ। उस स्त्रीने अपने सभी कुटुम्बियोंको बुलाकर कहा कि यदि आपलोग सभी सच्चे हृदयसे श्रीराम-भक्ति करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करें तो यह मेरा मृत पति जीवित हो जायगा। सभीने सादर स्वीकार कर लिया और श्रीरामनामका संकीर्तन करने लगे। तब गोसाईंजीने उसके मृत पतिको सुन्दर भक्तिमय जीवनदान दिया। इससे प्रभावित होकर उसके परिवारके लोग भगवद्भक्त हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इस अलौकिक घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कियौ विप्र तन त्याग, तिया चली सङ्ग लागि, दूरही ते देखि, कियौ चरन प्रनाम है।
बोले यों 'सुहागवती', मर्‍यो पति होऊँ सती, 'अब तो निकसि गई ज्याऊँ सेवौ राम है'॥
बोलिकै कुटुम्ब कही 'जौ पै भक्ति करौ सही,' गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भये सब साधु व्याधि मेटी लै विमुखताकी जाकी वास रहै तौ न सूझै श्याम धाम है॥ ५१४॥

(छ) दिल्लीके बादशाहके साथ घटी घटना तथा श्रीनाभाजीसे भेंट

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी महिमा सुनकर दिल्लीके बादशाहने अपने सेनापतियोंको काशी भेजा। उन्होंने आकर काशीके सूबेदारसे कहा कि गोस्वामीजीने मरे हुए ब्राह्मणको जीवित कर दिया है, यह सुनकर बादशाह उनके दर्शन करना चाहते हैं, उन्हें आदर और सुख-सुविधापूर्वक ले जाया जायगा। तब सूबेदारने आकर गोस्वामीजीसे बहुत अनुनय-विनय की, आपने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और काशीसे दिल्लीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर बादशाहके पास गये। उसने आपका बड़ा भारी स्वागत-सत्कार किया। ऊँचे सिंहासनपर बैठाकर बड़ी मधुरवाणीसे बादशाहने कहा—'आपकी करामातका सुयश सारे संसारमें फैला हुआ है, मुझे भी कुछ चमत्कार दिखलाइये।' गोस्वामीजीने कहा—ये सब बातें झूठी हैं, चमत्कार दिखाना हमें नहीं आता है। हम तो केवल श्रीरामजीको जानते-मानते हैं, उन्हींका भजन करते हैं। श्रीतुलसीदासजीके उत्तरको सुनकर बादशाहने कहा—'तो अपने रामको ही दिखलाओ। मैं देखूँ कि तुम्हारे राम कैसे हैं?' यह कहकर उसने इन्हें कारागारमें बन्द कर दिया। तब आपने अपने हृदयमें हनुमान्‌जीका ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप दयासागर हैं, मुझ दासपर कृपा कीजिये।' प्रार्थना करते ही उसी समय करोड़ों नये-नये आकार-प्रकारके, रंग-रूपवाले वानर प्रकट हो गये। नगरभरमें सर्वत्र लोगोंके शरीरोंको नोचने-खरोचने लगे, बेगमोंके वस्त्रोंको भी चीरने-फाड़ने लगे। यह उपद्रव देखकर बादशाहकी आँखें खुलीं, वह

श्रीतुलसीदासजीके पास आया और पैरोंमें गिरकर बोला—'अब तो आप हमें प्राण-दान दीजिये, आपके बचानेसे ही हमलोग बचेंगे। नहीं तो नहीं।' श्रीगोसाईंजीने कहा—'पहले आप थोड़ी-सी करामात और देख लीजिये।' आपकी बात सुनकर बादशाह अति ही लज्जित हुआ। पछताते हुए अपराधको क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगा। तब वानरोंका उपद्रव शान्त हुआ। आपने रक्षा की और कहा कि 'अब तुम्हारा यह किला भगवान् श्रीरामका हो गया। तुम इसे बिलकुल छोड़ दो।' यह सुनकर बादशाहने उस किलेको छोड़ दिया। दूसरा नया किला (नयी दिल्ली) बनाकर उसमें रहने लगा। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने दिल्लीसे प्रस्थान किया। पुनः वृन्दावनमें आकर आप श्रीनाभाजीसे मिले और बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाको अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णित किया है—

दिल्लीपति पातसाह अहदी पठाये लैन ताकौ, सो सुनायौ सूबै बिप्र ज्यायौ जानियै।
देखिबे कों चाहै नीकै सुख सों निबाहै, आय कही हहु बिनैं गही चले मन आनियै॥
पहुँचे नृपति पास, आदर प्रकाश कियौ, दियौ उच्च आसन लै, बोल्यो मृदु बानियै।
'दीजै करामात जग ख्यात सब मात किये', कही 'झूठ बात एक राम पहिचानियै'॥ ५१५॥
देखैं राम कैसौ, कहि कैद किये किये हिये 'हूजिये कृपाल हनुमानजू दयाल हो'।
ताही समै फैलि गए, कोटि-कोटि कपि नये, लोचैं तन खोचैं चीर भयौ यों बिहाल हो॥
फौरें कोट, मारैं चोट, किये डारैं लोट पोट, लीजैं कौन ओट जाय मान्यौ प्रलय काल हो।
भईं तब आँखैं, दुखसागर कौं चाखैं, अब वेई हमें राखैं, भाखैं, वारौं धन माल हो॥ ५१६॥
आय पाँय लिये तुम दिये हम प्रान पावैं, आप समझावैं 'करामात नेकु लीजियै'।
लाज दबि गयौ नृप, तब राखि लयौ, कह्यौ 'भयौ घर रामजू कौ बेगि छोड़ि दीजियै'॥
सुनि तजि दयो और कर्‍यौ लैकै कोट नयौ, अबहूँ न रहे कोऊ वामै तन छीजियै।
काशी जाय, वृन्दावन आय मिले नाभाजूसों सुन्यौ हो कबित्त निज रीझि मति भीजियै॥ ५१७॥

(ज) इष्टदेव श्रीरामके प्रति अनन्य निष्ठा

गोस्वामीजीने श्रीवृन्दावनमें श्रीमदनगोपाल श्रीकृष्णका दर्शन करके प्रार्थना की—'प्रभो! आपकी यह छबि अवर्णनीय है, परंतु सच्ची बात तो यह है कि भगवान् श्रीराम मेरे सच्चे इष्टदेव हैं।' उस समय आपकी दृष्टि प्रेममें पगी हुई थी। भक्तकी भावना-प्रार्थनाको स्वीकारकर श्रीकृष्णजीने श्रीरामरूप धारण करके दर्शन दिया। अपने मनके अनुरूप अपने इष्टदेवकी शोभा-सुन्दरता जब आपने देखी तो आपको अत्यन्त ही प्रिय लगी। किसी दिन श्रीकृष्णके अनन्य उपासकोंने कहा—'भगवान् श्रीकृष्ण सोलह कलाओंसे पूर्ण प्रशंसनीय हैं और श्रीरामचन्द्रजी अंशावतार हैं', यह सुनकर आपने उत्तर दिया कि अबतक तो मैं उन्हें श्रीदशरथजीका पुत्र, परम सुन्दर, उपमारहित जानकर उनसे प्रेम करता था, परंतु आज आपके द्वारा मालूम हुआ कि उनमें ईश्वरता भी है। अब उनमें मेरी प्रीति करोड़ों गुनी अधिक हो गयी है।

श्रीप्रियादासजीने तुलसीदासजीकी अपने इष्टके प्रति अनन्यताका वर्णन इस प्रकार किया है—

मदनगोपाल जू कौ दरसन करि कही, सही राम इष्ट मेरे दृष्टि भाव पागी है।
वैसे ही सरूप कियौ, दियौ लै दिखाइ रूप, मन अनुरूप छवि देखि नीकी लागी है॥
काहू कही कृष्ण अवतारी जू प्रसंस महा, राम अंश, सुनि बोले 'मति अनुरागी है'।
दशरथ सुत जानौं, सुन्दर अनूप मानौं, ईशता बताई रति कोटि गुनी जागी है॥ ५१८॥

तुलसीदासजी अब असीघाटपर रहने लगे। रातको एक दिन कलियुग मूर्तरूप धारणकर उनके पास आया

और उन्हें त्रास देने लगा। गोस्वामीजीने हनुमान्‌जीका ध्यान किया। हनुमान्‌जीने उन्हें विनयके पद रचनेको कहा; इसपर गोस्वामीजीने विनय-पत्रिका लिखी और भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दी। श्रीरामने उसपर अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदासजीको निर्भय कर दिया।

संवत् १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवारको असीघाटपर गोस्वामीजीने राम-राम कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

श्रीमानदासजी

करुना बीर सिंगार आदि उज्ज्वल रस गायो।
पर उपकारक धीर कबित कबिजन मन भायो॥
कोसलेस पद कमल अननि दासत ब्रत लीनो।
जानकि जीवन सुजस रहत निसि दिन रँग भीनो॥
रामायन नाटक की रहसि उक्ति भाषा धरी।
गोप्य केलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी॥ १३०॥

श्रीमानदासजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी गुप्त-प्रकट लीलाओंका काव्यद्वारा गान करके भक्तोंको सुनाया। श्रीरामचरित्र-वर्णनप्रसंगमें आपने अपने काव्योंमें करुण, वीर, शृंगार आदि रसोंका भी समावेश किया। आपकी कविताएँ कविजनोंको अत्यन्त प्रिय लगती थीं। आप महान् परोपकारी, धैर्यवान् एवं शीलवान् थे। कौसलेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणकमलोंकी अनन्य भावसे सेवा करनेका आपका दृढ़ व्रत था। श्रीजानकी-जीवन प्रभुके सुयशके वर्णन, अध्ययन एवं मननके रंगमें आप दिन-रात रँगे-पगे रहते थे। श्रीरामायण और हनुमन्नाटकादि ग्रन्थोंकी गूढ़ उक्तियोंका आपने सरस भाषामें विवेचन किया॥ १३०॥

श्रीमानदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

परमरसिक श्रीमानदासजी एक बार अपने आराध्य श्रीमद् राघवेन्द्र आनन्दकन्द कोसलचन्द्र भगवान् श्रीरामका ध्यान कर रहे थे। उसी समय श्रीरघुनाथजीने इन्हें अपने त्रिभुवनमोहन-मदनमोहन-स्वमनमोहन रूपका दर्शन कराते हुए अपनी गोपनीय लीलाओंके गानका आदेश दिया। प्रभुकृपासे इनके निर्मल हृदयमें भगवान्‌की परम गोपनीय लीलाओंकी स्फूर्ति होने लगी। तब इन्होंने उन लीलाओंको भाषाके पदोंमें गाकर लोकमें प्रसिद्ध किया। एक बार एक गरीब ब्राह्मणने आपसे अपनी कन्याके ब्याहके लिये धनकी याचना की, तो आपने श्रीठाकुरजीके चाँदीके पार्षद बेचकर ब्राह्मणको धन दिया। आप ऐसे ब्रह्मण्य एवं परोपकारी थे।

एक बार आपके यहाँ सन्तोंका विशाल भण्डारा था। नीचे जगह भर जानेसे छतके ऊपर पंक्ति बैठी। ये सन्तोंको प्रसाद परोस रहे थे। सहसा इन्हें प्रेमावेश आ गया। शरीरकी सुधि नहीं रही, छतसे नीचे गिर गये। सन्त-समाजमें हाहाकार मच गया। परंतु भक्तवत्सल भगवान्‌ने अपने प्रिय भक्तको अपनी गोदमें ही थाम लिया, इससे उन्हें तनिक भी चोट नहीं आयी। प्रभुकृपाका यह चमत्कार देखकर सब लोग इनके आराध्य श्रीराम और इनकी जय-जयकार करने लगे।

मान मन्दिर में विराजैं मानिनी श्री रिस भरी।
श्रीपति मनावैं खायँ हा-हा पै न मानति रस भरी॥
यहि ध्यान रसवश विकल अविकल मानिनी रुख अनुसरैं।
रीझि दम्पति मानदासहिं मान दै संज्ञा करैं॥

श्रीगिरिधरजी

अर्थ धर्म काम मोच्छ भक्ति अनपायनि दाता।
हस्तामल श्रुति ग्यान सबहि सास्त्रन को ग्याता॥
परिचर्या ब्रजराज कुँवर के मन कों कर्षै।
दरसन परम पुनीत सभा तन अमृत वर्षै॥
बिट्ठलेस नंदन सुभाव जग कोऊ नहिं ता समान।
बल्लभजू के बंस में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान॥ १३१॥

श्रीवल्लभाचार्यजीके वंशमें श्रीगिरिधरलालजी महाराज कल्पवृक्षके समान शोभायमान लगते थे। आप शरणागत भक्तोंको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और अचल श्रीहरिभक्तिके दाता थे। आपको वेद-शास्त्रोंका सम्पूर्ण ज्ञान हाथमें आँवलेकी तरह प्रत्यक्ष था। आप सभी शास्त्रोंके ज्ञाता थे। आपकी पूजा-पद्धति ब्रजराज कुँवर भगवान् श्रीकृष्णके मनको आकृष्ट करनेवाली थी। आपके दिव्य दर्शनसे लोग पवित्र हो जाते थे। भक्तोंकी सभामें विराजमान होकर जब आप श्रीकृष्ण-कथाको कहते थे, तब ऐसा लगता था कि मानो प्रेमामृतकी वर्षा हो रही है। गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी महाराजके सुपुत्र श्रीगिरिधरलालजी महाराजके समान सरस-शीतल एवं कोमल स्वभाववाला संसारमें कोई नहीं हो सकता है॥ १३१॥

श्रीगिरिधरजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगिरिधरलालजी वल्लभ-सम्प्रदायानुयायी थे, आपका एक शिष्य था। यह जातिका वैश्य था, उसके पास अपार सम्पत्ति थी। वह बहुत गुरु-गोविन्दकी सेवा करता था। परंतु समयके फेरसे उसका सारा धन नष्ट हो गया और कुछ दिन बाद उसका गोलोकवास हो गया। उसके एक पुत्र था, उसके हृदयमें भी भक्तिके संस्कार थे। परंतु धनका सर्वथा अभाव होनेसे वह अपने पिताकी भाँति श्रीगुरु-गोविन्दकी वित्तजा सेवा नहीं कर पाता था। इस बातका उसे हार्दिक दुःख था। एक दिन उसने श्रीगिरिधरलालजीके पास आकर अपना दुःख निवेदन करते हुए प्रार्थना की—प्रभो! आपकी कृपासे मेरे पिताके पास तो अपार धन था, इससे वे सन्त-भगवन्तकी बहुत सेवा करते थे, परंतु मैं तो ऐसा अभागा निकला कि मुझे पेट-भर खानेको भी नहीं मिलता। आप तो साक्षात् कल्पवृक्ष हैं, जिसके पाससे कोई भी निराश नहीं जाता है, अतः आप मुझपर भी ऐसी ही कृपा करें, जिससे मैं भी अपने पिताकी कीर्तिको अक्षुण्ण रखते हुए सन्त-भगवान्की सेवा करूँ। निरन्तर मेरे हृदयको दारिद्र्य दग्ध करता रहता है। परमदयामय श्रीगिरिधरलालजी उस वैश्यपुत्रकी दीनता देखकर द्रवीभूत हो गये और उसे भी श्रीश्रीनाथजीके भजनका उपदेश देते हुए विश्वास दिलाकर बोले कि प्रभुकृपासे बहुत शीघ्र तुम्हारी दरिद्रता दूर हो जायगी। सचमुच थोड़े ही दिनोंमें वह श्रीहरि-गुरुकृपासे धनधान्यसे सम्पन्न हो गया। कृपाके इस प्रत्यक्ष चमत्कारसे चमत्कृत होकर वह वैश्य बड़ी उदारतापूर्वक गुरु-गोविन्दकी सेवा करने लगा। इस सेवाके प्रतापसे उसके मनमें भगवान्के दर्शनोंकी उत्कण्ठा उत्पन्न हुई।

एक दिन उसने श्रीगिरिधरलालजीसे अपने मनका भाव कह सुनाया और भगवत्-साक्षात्कारका उपाय पूछा। आपने सहज भावसे कहा—*'प्रीतम प्रीति ही ते पैये।'* प्रभु तो प्रेमसे ही मिलते हैं, अतः प्रेमपूर्वक भगवान्की सेवा करो। उनके नाम-गुणोंका संकीर्तन करो। उसने पूछा—प्रभो! प्रेमके क्या लक्षण हैं? आपने कहा—जब भगवान्के नाम, रूपका स्मरण होते ही आँखोंसे अश्रुपात तथा शरीरमें रोमांच होने लगे, वाणी गद्गद हो जाय, कण्ठ अवरुद्ध हो जाय, तो उसे प्रेमकी दशा समझनी

चाहिये। ऐसी दशापर रीझकर ही भगवान् भक्तोंको दर्शन देते हैं। वह वैश्य बहुत दिनतक सेवा-पूजा-संकीर्तन करता रहा, परंतु कभी भी उसकी आँखोंमें न तो आँसू आये और न शरीरमें रोमांच ही हुआ और न कोई प्रेमके अन्य लक्षण ही दिखायी पड़े। तब तो वह बहुत उदास होकर एक दिन श्रीगिरिधरलालजीके पास आया और अति दीन होकर पुनः अपनी मनोव्यथा सुनायी। उसकी सरलता-निष्कपटता तथा दीनतापर रीझकर श्रीगिरिधरलालजीने उसे छातीसे लगा लिया और उनकी आँखोंसे झर-झर अश्रुपात होने लगा। उनके इस प्रेमका प्रभाव उस वैश्यपर भी पड़ा, उसके भी नेत्र सजल हो गये, शरीर पुलकायमान हो गया। उसी समय श्रीठाकुरजीने साक्षात् प्रकट होकर गुरु-शिष्य—दोनोंको दर्शन दिया। परंतु वह वैश्य अभी अच्छी तरह भर-आँख दर्शन नहीं कर पाया था कि ठाकुरजी अन्तर्धान हो गये। तब तो वह बहुत व्याकुल होकर आर्तनाद करने लगा। उसकी करुणा आपसे देखी नहीं गयी। आपने पुनः दर्शन देनेकी प्रार्थना भगवान्से की, तो प्रभुने कहा—इस वैश्यके द्वारा एक महदपराध होता है, इसलिये यह पुनः पूर्ण रूपसे मेरा दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता है। श्रीगिरिधरजीने कहा—जै-जै प्रभो! वह कौन-सा महापराध है? हो सकता है कि यह अल्पज्ञ जीव अनजानमें उसे करता हो और जान लेनेपर न करे। श्रीनाथप्रभुने कहा—इसकी पत्नीका वैष्णव-सेवामें बड़ा भाव है, परंतु यह उसे डाँटता-फटकारता रहता है, उसे वैष्णव-सेवा नहीं करने देता है, यही इसका महापराध है। यह सुनकर वैश्यने तत्काल प्रतिज्ञा की कि अब मैं कभी भी ऐसी भूल नहीं करूँगा। मैं नहीं जानता था कि सन्तोंकी इतनी महिमा है और प्रभु सन्तोंपर इतना प्यार करते हैं। अब तो हम स्वयं सन्तोंकी सेवा करेंगे और पत्नीको भी बेरोक-टोक सन्त-सेवा करने देंगे। जब वैश्यने इस प्रकार प्रतिज्ञा की, तब भगवान्ने पुनः प्रकट होकर दर्शन दिया। श्रीगिरिधरलालजीकी कृपासे वैश्यको सहजमें भगवद्दर्शन हो गये।

श्रीगोसाईं गोकुलनाथजी

उदधि सदा अच्छोभ सहज सुंदर मितभाषी।
गुरुबर्तन गिरिराज भलप्पन सब जग साखी॥
बिट्ठलेस की भक्ति भयो बेला दृढ़ ताकै।
भगवत तेज प्रताप नमित नरबर पद जाकै॥
निर्विलीक आसय उदार, भजन पुंज गिरिधरन रति।
(श्री) बल्लभजू के वंश में गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति॥ १३२॥

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके वंशमें (अर्थात् श्रीवल्लभाचार्यजीके पौत्र एवं श्रीविट्ठलनाथजीके चतुर्थ पुत्र) श्रीगोकुलनाथजी सद्गुणोंके निधान थे। वे क्षुभित न होनेवाले समुद्रके समान अविचल, गम्भीर तथा सहज सुन्दर थे। सर्वदा मधुर, सत्य एवं आवश्यकतानुसार बोलनेवाले थे। आपका विशाल, सुन्दर एवं दिव्य शरीर श्रीगिरिराज गोवर्धनके समान दर्शनीय था। सारा संसार आपके भलेपनका साक्षी है। आप अपने पिता श्रीविट्ठलनाथजीके भक्ति-समुद्रकी सीमा बाँधनेवाले सुदृढ़ किनारेके समान थे। आप भगवद्विभूति थे, बड़े तेजस्वी एवं प्रतापी थे। अतः बड़े-बड़े राजा-महाराजा, श्रेष्ठ व्यक्ति आपके श्रीचरणोंमें अपना सिर झुकाकर सादर नमस्कार करते थे। आपका हृदय परम पवित्र था। आप निर्विकार मन-बुद्धिवाले, परम उदार और भजन-भावकी राशि थे। श्रीगोवर्धननाथजीसे बड़ा स्नेह करते थे॥ १३२॥

श्रीगोसाईं गोकुलनाथजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजीके चतुर्थ पुत्र श्रीगोकुलनाथजी अत्यन्त प्रभावशाली और प्रतिभाशाली धर्माचार्य थे। आपने अनेक विद्वानोंसे शास्त्रार्थकर पुष्टिमार्गके प्रभावको व्यापक बनाया।

आपके जीवनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध घटना 'मालातिलक प्रसंग' है। कहा जाता है कि बादशाह जहाँगीरके राज्यमें चिद्रूप नामक संन्यासीके प्रभावमें आकर एक राजकीय आदेश निकला कि कोई ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक (वैष्णवी तिलक) न करे और न तुलसीकी माला गले में पहने। गोकुलनाथजीकी प्रेरणासे वैष्णवोंने इस आदेशका प्रबल विरोध किया, सत्याग्रह किया और स्वयं गोकुलनाथजी अत्यन्त वृद्ध होनेपर भी बादशाह जहाँगीरसे मिलनेके लिये कश्मीर गये। उनसे प्रभावित होकर वैष्णवोंकी माला और तिलक धारण करनेकी पुनः राजकीय अनुमति मिली।

श्रीगोकुलनाथजी संस्कृतके विद्वान् होनेके साथ ही ब्रजभाषाके भी उत्कृष्ट लेखक थे। आपके द्वारा लिखित 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' 'निज वार्ता', 'घरूवार्ता', 'बैठक चरित्र', 'वचनामृत' आदिके द्वारा पुष्टिमार्गके विचार और आचारको जन-जनतक पहुँचानेमें अद्भुत सफलता मिली है। श्रीगोकुलनाथजीने जनमानसमें पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों और जीवन-प्रणालीको स्थापित करनेमें अपूर्व योगदान किया।

९९ वर्ष २ माह १७ दिन भूतलपर विराजकर संवत् १६९७ फाल्गुन कृष्ण नवमीके दिन आप भगवल्लीलामें प्रविष्ट हो गये। आपका वियोग न सह पानेके कारण आपके ७८ सेवकोंने भी शरीर छोड़ दिया। आप अत्यन्त लोकप्रिय एवं त्यागी धर्माचार्य थे।

श्रीगोकुलनाथजी सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने प्राणिमात्रके कल्याण, गो और धर्मरक्षाके लिये अपनी सिद्धियोंका प्रयोग किया। कहते हैं कि—एक बार दिल्लीका तत्कालीन बादशाह मथुराको आया और औरंगाबादमें उसका पड़ाव पड़ा। उसने लोगोंसे पूछा कि आजकल यहाँ करामाती हिन्दू फकीर कौन है? लोगोंने श्रीगोकुलनाथजीका नाम बताया और इनकी प्रशंसा भी की। बादशाहने एक मन्त्रीको भेजकर प्रार्थना की कि आकर दर्शन दीजिये। आप पालकीमें विराजमान होकर अपने परिकरसहित पधारे। बादशाहने एक चबूतरा बनवाया था। उसमें हड्डियोंको भरवाकर ऊपरसे लीप-पोतकर उसपर कम्बल-बाघम्बर आदि बिछवा दिये। इनके पहुँचनेपर स्वागत करके इन्हें उसीपर बैठनेको कहा, आपने अपने जलपात्रसे लेकर जल छिड़क दिया और बैठ गये। बादशाहने पूछा—'आप जिस वेदिकापर बैठे हैं, उसके भीतर क्या है?' आपने उत्तर दिया—'गुलाबके फूल।' बादशाहने प्रार्थना करके श्रीगोसाईंजीको दूसरे तख्तपर बैठाया और चबूतरेको खोदवाया तो चारों ओर ताजे गुलाबके फूलोंकी सुगन्ध फैल गयी। फूलोंको देखकर बादशाह आपके चरणोंमें झुक गया। सेवाके लिये प्रार्थना करने लगा और गोसाईंजीकी आज्ञासे गोचर-भूमिकी व्यवस्था की। व्रजके तीर्थोंमें, वनोंमें शिकार न करनेकी पुरानी राजाज्ञाको दृढ़तासे लागू किया।

एक बारकी बात है, एक ब्राह्मण अपनी कन्याके साथ कहीं जा रहा था। दुष्ट यवनोंने उससे कन्या छीन ली। ब्राह्मण रोता हुआ श्रीगोकुलनाथजीके पास आया। समाचार सुनकर आपको दया आयी। आपने एक कायस्थ शिष्यको जो उस यवन सरदारके यहाँ मुंशी था, कहा कि उससे कह-सुनकर विप्र कन्याको वापस करा दो। उसने कहा—महाराज! ये यवन बड़े अत्याचारी हैं, मेरे कहनेसे नहीं मानेंगे। तब आपने श्रीश्रीनाथजीसे प्रार्थना की। उसे स्वप्न हुआ, पर उसने ध्यान नहीं दिया तो श्रीनाथजी आधी रातको गये और सोते हुए यवन सरदारके मुखपर पैरसे एक ठोकर मारकर कहा—'क्यों रे! तूने मेरी बात नहीं मानी।'

2066 Bhaktmal_Section_24_2_Back

वह घबड़ाकर उठा। अत्यन्त भयभीत होकर प्रातः उसने अपने दरबारियोंसे सलाह की और पूछा कि मेरा भय कैसे दूर हो? तब उस कायस्थ शिष्यने कहा—'आप श्रीगोकुलनाथजी गोस्वामीके पास चलिये। वे आपका भय दूर कर देंगे।' यवन सरदार गोसाईंजीके पास आया और अपनी विनती सुनायी और कहा—'मै आपकी हर आज्ञा मानूँगा।' गोसाईंजीने ब्राह्मण-कन्या वापस करायी और उसके मनमें व्याप्त भयको आशीर्वादमात्रसे दूर कर दिया। यवनने ब्राह्मण-कन्याको बहुतसे आभूषण दिये। पुनः ऐसा अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा की। गोकुलनाथजीका ऐसा अद्भुत प्रताप था।

एकबार एक धनवान् व्यक्ति आपका शिष्य होनेके लिये आया। वह आपके लिये लाखों रुपयेकी भेंट लाया था। आपने उससे पूछा कि क्या तुम्हारा कहीं किसी वस्तुपर ऐसा स्नेह है कि जिसके मिले बिना तुम्हारा तन-मन व्याकुल हो जाता हो। उसने कहा—अजी! मेरा कहीं किसी भी वस्तुमें तनिक भी स्नेह नहीं है। तब आपने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो हम तुम्हें कदापि दीक्षा नहीं दे सकते। तुम किसी और गुरुको खोजो। भक्तिमार्गमें तो प्रेम ही प्रधान है। जीवका जो प्रेम संसारमें होता है, दीक्षा-शिक्षाके द्वारा उसीको पलटकर भगवान्में लगा दिया जाता है। जब तुम्हारे हृदयमें कहीं प्रेम है ही नहीं तो तुम भगवान्के प्रेममें कैसे सराबोर हो सकते हो? इस प्रकारका कोरा जवाब सुनकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस प्रसंगका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आयौ कोऊ शिष्य होन ल्यायौ भेट लाखन की, भाखन की चातुरी पै मेरी मति रीझिये।
कहूँ है सनेह तेरो जाके मिले बिना देह व्याकुलता होय जोपै, तोपै दीक्षा दीजिये॥
बोल्यौ 'अजू मेरौ काहू बस्तु सों न हेतु नेकु,' नेति नेति कही हम, गुरु ढूँढ़ि लीजिये।
प्रेम ही की बात इहाँ करेही पलटि जात, गयौ दुख गात, कहो कैसे रंग भीजिये॥ ५१९॥

कान्हा नामका एक भंगी था। उसने श्रीश्यामसुन्दरके प्रेमरसमें अपने मनको एकदम मिला दिया था। कान्हाको दूरसे खड़े होकर टकटकी लगाकर श्रीनाथजीका दर्शन करते हुए देखकर मन्दिरके अधिकारी, पुजारी आदि कर्मचारियोंने श्रीगोकुलनाथजीसे कहकर श्रीठाकुरजीको उसकी दृष्टिसे बचानेके लिये मन्दिरके द्वारके सामने दीवाल उठवा दी, जिससे अब न तो कान्हा श्रीश्रीनाथजीको देख सके, न श्रीश्रीनाथजी कान्हाको देख सकें। तब रात्रिमें श्रीश्रीनाथजीने स्वप्नमें कान्हासे कहा कि इस नयी दीवालकी ओट मुझे बहुत कष्ट दे रही है। अतः तुम श्रीगोकुलनाथजीसे शीघ्र कहो कि बहुत जल्दी इस दीवालको हटवा दें, जिससे कि मैं विलछू कुण्डकी शोभाका दर्शन कर सकूँ। तुम्हें दर्शन न होनेसे जो कष्ट है, उसका हमें ख्याल है।

इसी प्रकार प्रेम-प्रवीण श्रीनाथजी तीन दिनतक लगातार स्वप्नमें कान्हाको आज्ञा देते रहे। तब कान्हा हिम्मत करके श्रीगोसाईंजीके द्वारपर गया और द्वारपालसे बोला—आप श्रीगोसाईंजीसे मेरी प्रार्थना सुनाइये कि कान्हा आपसे कुछ बात करना चाहता है। यह सुनकर द्वारपालने नाराज होकर कहा—अरे! तू गोसाईंजीसे बात करेगा? इतनेमें किसीने श्रीगोसाईंजीसे कहा कि कान्हा आपसे कुछ कहना चाहता है तो आपने कहा—'उसे शीघ्र बुलाओ'। आनेपर श्रीगोसाईंजीने कहा—अहो! कहो, तुम क्या कहना चाहते हो? तब कान्हाने वही बात कही, जो श्रीश्रीनाथजीने इससे कही थी। सुनकर श्रीगोकुलनाथजी बड़े हर्षित हुए कि अहो! श्रीश्रीनाथजीने मुझे अपना मानकर मुझसे कहनेको कहा है। फिर तो आप कान्हासे बड़े प्रेमसे मिले और बोले—यदि श्रीश्यामसुन्दरने मेरा नाम लेकर कहा है तो अब उनकी बात नहीं टलेगी। गुसाईंजीने तुरंत दीवाल गिरवा दी और कान्हाको उनका अनन्य सखा जानकर एक पारस (भोजन) देनेकी आज्ञा दी।

श्रीप्रियादासजीने भगवान्‌की इस प्रेमपरवशताका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कान्हा हो हलालखोर, घोरि दियौ मन लैकै स्याम रससागर में नागर रसाल है।
निसि को सुपन मांझ, निपुन श्रीनाथजू नै, आज्ञा दई, भीत नई भई ओट साल है॥
गोकुल के नाथजू सों बेगि दै जताइ दीजै कीजै याहि दूर छबि पूर देखौ ख्याल है।
भोर जो विचारै, नाहिं धीरजकों धारै, 'उहाँ जाऊँ कोऊ मारै पैड़ें पर्‍यो यह लाल है'॥ ५२०॥
ऐसे दिन तीन आज्ञा देते वे प्रवीन नाथ, हाथ कहा, मेरे बिन गये नहीं सरैगौ।
गए द्वार द्वारपाल बोले, 'जू बिचार एक दीजैं सुधि कान', सुनि खीझे 'बात करैगौ'॥
काहू ने सुनाय दई, लीजियै बुलाय अहो कहौ, और 'दूर करौ करे', दूरि ढरैगौ।
जाय वही कही, लही आपनी पिछानि, मिले, सुन्यौ मेरौ नाम स्याम कह्यो, नहीं टरैगौ॥ ५२१॥

श्रीबनवारीदासजी

बात कबित बड़ चतुर चोख चौकस अति जानै।
सारासार बिबेक परम हंसनि परवानै॥
सदाचार संतोष भूत सब कों हितकारी।
आरज गुन तन अमित भक्ति दशधा ब्रतधारी॥
दरसन पुनीत आसय उदार आलाप रुचिर सुख धाम को।
रसिक रँगीलो भजन पुँज सुठि बनवारी स्याम को॥ १३३॥

श्रीबनवारीदासजी भगवान् श्यामसुन्दरके बड़े अनुरागी, रसिक एवं सुन्दर भजनानन्दी सन्त थे। भगवत्सम्बन्धी कथा-वार्ता एवं काव्य-रचनामें परम चतुर थे। साधन-भजनमें सर्वदा सावधान रहते थे। सार-पदार्थको ग्रहण करने तथा असारको त्यागनेमें आप परमहंसोंके समान थे। आप श्रेष्ठ सदाचारी और सन्तोषी थे तथा प्राणिमात्रके हितकारी थे। आपमें सभी श्रेष्ठ गुण विद्यमान थे। प्रेमाभक्तिके आचरणकी आपने प्रतिज्ञा ले रखी थी। आपका दर्शन परमपवित्र और उद्देश्य उदार था। आपका वार्तालाप परम मनोहर एवं सुखदायक था॥ १३३॥

श्रीबनवारीदासजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीबनवारीदासजी खण्डेलवाल ब्राह्मण थे, आपका जन्म राजस्थानमें हुआ था। एक बार आप तीर्थयात्रा करते हुए मथुरा आये। वहाँ नारद टीलेपर आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीके दर्शन हुए। उनसे प्रभावित होकर आपने विरक्त-दीक्षा ग्रहण की। गुरुदेवके आज्ञानुसार आप श्रीयुगलकिशोरकी सेवामें अनुरक्त हो गये और आजीवन व्रजमें निवासकर दशधाभक्तिका आस्वादन करते रहे।

एक बार एक सत्संगी आपके पास आया, वह आपकी परीक्षा लेना चाहता था, अतः पूछा कि मेरी मृत्यु कब है? आप समझ गये कि यह मेरी परीक्षा ले रहा है, अतः ध्यानसे देखकर बोले—तुम्हारे गुरुदेवने जो बताया है, वह सत्य है। तुम्हारी आयु अब केवल एक मासकी है, अतः अब अपने कल्याणके लिये यत्न करो। यह सुनकर उसने समझ लिया कि ये सिद्ध सन्त हैं, अतः इनके चरणोंकी शरण ग्रहण कर ली।

आप श्रीमहावाणीजीका नित्य प्रेमपूर्वक गायन किया करते थे, जिसे सुनकर लोग परम विभोर हो जाया करते थे। आपकी वाणी देशकालके अनुरूप, युक्तियुक्त, हितकारिणी और प्यारी होती थी। आपके पद कृष्ण-

भक्तिरससे भीने तो होते ही थे, साथ ही समस्त काव्यगुणोंसे युक्त भी होते थे। आपके पदोंमें 'बनवारी श्याम' की छाप मिलती है, जिनमें युगलकिशोर श्रीराधामाधवकी विभिन्न लीलाओंका वर्णन है। एक पद द्रष्टव्य है—

बसी उर जोरी जुगल अनूप।
स्यामा-स्याम सहज रस सागर उलझत सुभग सुरूप॥
राजत गौर किशोर स्याम दोउ दामिनि घन दुति देत।
चितवत हरत सकल चित कलमष करत छिनै अनुरूप॥
श्रीहरिव्यास चरणरज रंजित मंजित करि मन नैन।
बसि वृन्दावन वंशीवट ढिंग ढरि कालिन्दी कूल॥
यह 'बनवारी स्याम' सुखद अति भाग सुभाग बन्यौ।
अनत चलन चित चहत न कबहूँ चाहत हौं भल भूप॥

श्रीनारायणमिश्रजी

नाम नरायन मिश्र बंस नवला जु उजागर।
भक्तन की अति भीर भक्ति दसधा को आगर॥
आगम निगम पुरान सार सास्त्रनि सब देखे।
सुरगुरु सुक सनकादि ब्यास, नारद जु बिसेषे॥
सुधा बोध मुख सुरधुनी जस बितान जग में तन्यो।
भागवत भली बिधि कथन को धनि जननी एकै जन्यो॥ १३४॥

नवल-वंशमें जन्म लेकर श्रीनारायणमिश्रजीने अपनी सुन्दर कीर्तिसे उसे प्रसिद्ध किया। आप भक्तसेवी थे, अतः आपके यहाँ भक्तोंकी बड़ी भारी भीड़ लगी रहती थी। दस प्रकारकी भक्तिके आप निधान थे। आपने वेद-शास्त्र-पुराण तथा अन्य धर्मशास्त्रोंके रहस्यको प्राप्त कर लिया था। इसलिये आप बृहस्पति, शुकदेव, सनकादि ऋषि, व्यास और नारदके समान थे। आपके श्रीमुखसे श्रोताजनोंको ज्ञान देनेवाली, परम मधुर, अमृत-सरीखी वाणी श्रीगंगाजीके समान निकलती थी। आपका सुयश-वितान सारे संसारमें फैला हुआ था। श्रीनारायणदासजी मिश्रकी माताको धन्यवाद है, जिन्होंने श्रीमद्भागवतके परम श्रेष्ठ वक्ताको जन्म दिया॥ १३४॥

श्रीनारायणमिश्रजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

सर्वेश्वर पत्रिकाके भक्तमालांकके अनुसार कुछ लोग इन्हें सनाढ्य कुलका बताते हुए ब्रजके किसी सीमावर्ती नगरको आपकी जन्मभूमि मानते हैं। इनके वंशज कई शताब्दियोंसे श्रीवृन्दावनमें निवास करते हैं। कुछ सज्जनोंका निश्चय है कि ये राजस्थानके पाटण ग्रामनिवासी श्रीनवलकिशोरजीके पुत्र हैं। श्रीमद्भागवतका कथा-प्रवचन इनके कुलकी सम्पत्ति है। श्रीनारायणमिश्रजीने केशव काश्मीरीजीकी सन्निधिमें रहकर वेद-वेदांग, वेदान्त और पुराणोंका अध्ययन किया। तत्पश्चात् श्रीभट्टदेवाचार्यजीसे विरक्त दीक्षा ली। फिर आपने ब्रजमें ही निवास किया। आप श्रीभागवतके अद्वितीय वक्ता थे।

श्रीनारायणमिश्रजीने मथुरामें वास करते हुए एक बार उत्तराखण्डकी यात्राका विचार किया। प्रथम आप हरिद्वार पहुँचे तो वहाँ स्वामी श्रीनृसिंहारण्यजी मिले। उनके साथ सत्संगकर उनकी आज्ञासे बदरिकाश्रमको गये, वहाँ नर-नारायण भगवान्‌का दर्शन हुआ। उसके पश्चात् वहीं श्रीशुकदेवजीके दर्शन हुए। इनसे

श्रीनारायणमिश्रने सरहस्य श्रीमद्भागवतको प्राप्त किया। फिर वहाँसे आप काशीजीको आये। वहाँ सुखराशि श्रीनृसिंहारण्यजीके पुनः दर्शन हुए। उनके सत्संगसे भगवत्-भागवततत्त्वके परम सुखका लाभकर आप पुनः श्रीमथुराजीको आ गये। जिस समय आप श्रीमद्भागवतकी कथा कहते थे, उस समय बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् आपके श्रीमुखकी ओर एक-टक देखते ही रहते थे। जैसे मन्त्रद्वारा कीलित सर्प फणको इधर-उधर नहीं हिलाता है, उसी तरह विद्वान् लोग आपकी प्रवचन-कलासे स्तब्ध-प्रेममग्न हो जाते थे। इस विशेषताका कारण यह है कि दूसरे लोगोंके पास भागवत अनेक विद्वानोंके पास होकर आयी, पर इनके पास तो सीधे श्रीशुकमुखसे आयी। यही कारण है कि वे श्रीभागवतके अद्वितीय वक्ता थे।

आपके यहाँ भक्तोंकी सदा भीड़ रहती थी; क्योंकि आप सन्त-सेवा करते थे। भगवत्प्रसादसे उन्हें तृप्त करते थे। दूसरे मधुर भगवत्कथाके श्रवणका उत्तम लाभ था।

श्रीनारायणमिश्रजीके पुत्रकी साली उनके पासमें ही रहती थी। उसकी बुद्धि काली अर्थात् तामसी थी। उसने अपनी बहनको बहकाया कि तेरा श्वसुर घरके धनको मुड़िया-वैरागियोंको खिलाये देता है। यह तो सर्वस्व लुटाकर मर जायगा। तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा। धनके बिना दुःख पावोगी, रोवोगी; अतः इसको विष देकर मार डालो और धनको बचा लो। वधूके बहकानेसे पुत्रकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। दोनों बहनोंने विषमिश्रित भोजन बनाकर मिश्रजीको खिला दिया। पर भगवदर्पित अन्न खानेसे इनका कुछ न बिगड़ा। पुनः दूसरी बार अधिक मात्रामें विष मिलाया। इस बार भी इनपर कुछ असर न देखकर दोनों बहिनों तथा पुत्रने समझा कि विष प्रभावहीन है। परीक्षार्थ किंचित् जिह्वापर स्पर्श कराते ही सभी मूर्च्छित हो गये। वमन आदि कराकर किसी तरह प्राण बचे। दोनों बहनें अब इनके मारनेका नया उपाय सोचने लगीं। पुत्रको अपने पिताकी महिमा और भक्तिका बोध हो चुका था। अतः स्त्रीके प्रस्तावको सुनते ही उसने उसकी लात-घूँसोंसे खूब पिटाई की और पिताके पास जाकर उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणामकर उसने सारी अपनी तथा स्त्रीकी कुटिलता सुना दी और क्षमा-प्रार्थना की। दयालु श्रीनारायणमिश्रजीने उन तीनोंको उपदेश दिया, जिससे उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। सभी सन्त-भगवन्तकी सेवा करने लगे।

श्रीराघवदासजी

काम क्रोध मद मोह लोभ की लहर न लागी।
सूरज ज्यों जल ग्रहै बहुरि ताही ज्यों त्यागी॥
सुंदर सील सुभाव सदा संतन सेवा ब्रत।
(गुरु) धर्म निकष निर्बह्यो, बिस्व में बिदित बड़ो भृत॥
अल्ह राम रावल कृपा आदि अंत धुकती धरी।
कलिकाल कठिन जग जीति यों राघौ की पूरी परी॥ १३५॥

श्रीराघवदासजीने महाभयंकर कलियुगको जीतकर इस संसारमें भक्त-भगवन्तकी भक्तिके प्रणको निभाया। काम, क्रोध, मद, मोह और लोभकी लहरें इनको नहीं छू सकीं। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जलको खींचते हैं और फिर समयपर उसे विश्व-कल्याणके लिये बरसाते हैं, उसी प्रकार आप भी अतिथि-साधु-सेवाके निमित्त अन्न-धन आदिका संग्रह करके फिर उसे सेवामें लगा देते थे। आपका स्वभाव और आचरण अति उत्तम था। सर्वदा सन्तोंकी सेवा करनेका दृढ़ नियम आपने अपनाया था। गुरु-सेवारूप

धर्मकी कसौटीपर आप खरे उतरे। इसीसे आप सारे संसारमें महान् गुरुसेवी-गुरुभक्त प्रसिद्ध हुए। श्रीअल्हजी एवं श्रीरामरावलजीकी कृपासे आदिसे अन्ततक जीवनभर भक्त-भगवन्तमें आपने अपने मनको लगाये रखा तथा उनके प्रति नम्र रहे। इस प्रकार श्रीराघवदासजीकी निष्ठाका जीवनभर निर्वाह हुआ॥ १३५॥

श्रीराघवदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीराघवदासजी श्रीरामभक्त सन्त थे। आपने जगत्के जीवोंको भक्तिका उपदेश देकर उन्हें गुरु-गोविन्दके चरणाश्रित किया। यत्र-तत्र विचरते हुए जहाँ भी जाते वहाँ लोगोंके द्वारा सन्तोंकी सेवा करवाते। एक बार अकेले ही विचरते हुए पर्वतीय प्रदेशमें पहुँच गये। राजा-प्रजा सभीको आपने अपने उपदेशोंसे प्रभावित कर उनके मनमें सेवा-पूजाके भावको दृढ़ किया। आपके दर्शनार्थ अच्छे-अच्छे घरोंकी स्त्रियाँ आतीं और दर्शन एवं सत्संगसे कृतार्थ होतीं। यह देखकर एक कुटिल क्षत्रियकुमारके मनमें सन्देह एवं रोष हुआ। वह हथियार बाँधे हुए इनके पास पहुँचा और इनसे बोला—'स्वामीजी! आप इस प्रकार स्त्रियोंको एकत्र करते हैं, उनसे बोलते-चालते हैं तो क्या आपके मनमें विकार नहीं उत्पन्न होता है? साधु-सन्तको तो स्त्री-प्रसंगसे बहुत दूर रहना चाहिये।' श्रीराघवदासजीने कहा—'मेरे लिये पुरुष और स्त्रियाँ बराबर हैं, सबमें श्रीरामराघव रमते हैं। मेरा मन सर्वथा पवित्र है, फिर उसमें विकारोंकी कोई सम्भावना कैसे हो सकती है?' क्षत्रियकुमारने कहा—'देखिये, इस बोतलमें मदिरा है, क्या आप इसे दूधके समान मान सकते हैं। यदि अभेद दृष्टि है, तो इसे दूध ही मानिये।' श्रीराघवदासजीने श्रीरामजीका स्मरण करके कहा—'मदिरा भी मेरे लिये दूध ही है। मैं भेद नहीं मानता।' इतना कहते ही बोतल दूधसे भर गयी। परिचय पाकर क्षत्रियकुमारको पूर्ण विश्वास हो गया कि ये मुझ दुष्ट नास्तिकको भी सज्जन और आस्तिक बना सकते हैं। क्षमा-प्रार्थना करता हुआ वह आपके श्रीचरणोंमें पड़ गया। तब आपने शिक्षा-दीक्षा देकर उसे कृतार्थ किया। धाम-गमनका समय जानकर आपने दो दिनका उत्सव किया। सन्तोंके बीच कीर्तन करते हुए शरीर त्यागकर भगवद्धामको चले गये।

श्रीबावनजी

अच्युत कुल सों दोष सुपनेहूँ उर नहिं आनै।
तिलक दाम अनुराग सबनि गुरुजन करि मानै॥
सदन माहिं बैराग्य बिदेहिन की सी भाँती।
राम चरन मकरन्द रहति मनसा मदमाती॥
जोगानन्द उजागर बंस करि निसि दिन हरि गुन गावनो।
हरिदास भलप्पन भजन बल बावन ज्यों बढ़्यो बावनो॥ १३६॥

भगवद्भक्तोंकी साधुता तथा अपने भजनके बलसे श्रीहरिदासजी (वामनजी) भी बावनभगवान्की तरह बहुत छोटेसे बहुत बड़े हो गये। आप वैष्णवोंके किसी भी छोटे-बड़े दोषोंको स्वप्नमें भी अपने मनमें नहीं लाते, उनपर ध्यान नहीं देते थे। तिलक-माला (कण्ठी) आदि भक्तोंके चिह्नोंमें आपका परम अनुराग था तथा सभी वैष्णव वेष धारण करनेवालोंको आप अपना गुरु करके मानते। श्रीजनकराजाकी तरह आप भी गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए परम वैराग्यवान् थे। श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलके परागको पानकर आपका मनरूपी भौंरा सदा उन्मत्त रहता था। आप श्रीयोगानन्दजीके वंशकी कीर्तिको उज्ज्वल करके दिन-रात भगवद्गुणोंको गाते रहते थे॥ १३६॥

श्रीबावनजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

'भक्तदामगुणचित्रणी' के अनुसार श्रीबावनजीका नाम हरिदास था और 'बावन' यह आपका उपनाम था। आपने ५२ ग्रामोंका एक मण्डल बना लिया था। उसमें भ्रमण करके आप भक्तिका प्रचार-प्रसार किया करते थे। आप ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए। आपका सन्त-सेवा व्रत था। गाँवोंसे सीधा-सामान लाते और सन्त-सेवा करते। आपके मण्डलके लोगोंमें सन्तोंके प्रति बड़ा सद्भाव था। श्रीहरिदासजीका सन्त-समाजमें बड़ा सम्मान था। एक बार इनके यहाँ एक वेषधारी आ गया, जो स्वभावसे सन्त नहीं था। आपके यहाँ कई दिनतक रहा। आपने उसकी भी सेवा की। एक दिन अवसर पाकर उसने छल किया। इनकी पत्नीके पास सन्त-सेवार्थ एक सौ रुपये रखे थे। उसने आकर कहा कि हरिदासजीने रुपये मँगाये हैं। इस प्रकार एक सौ रुपया लेकर वह चम्पत हो गया। बादमें जब भेद खुला तो पत्नी रोने-धोने-खीझने तथा कहने लगी। देखो, साधुओंमें कैसे-कैसे ठग घुसे हुए हैं। अब आप इनकी सेवा बन्द कर दीजिये, मेरी बात मानिये। यह सुनकर श्रीहरिदासजीने कहा—सन्त-सेवाको जल और मुझे मछली समझो। मैं सन्त-सेवाके बिना जीवित नहीं रह सकता हूँ, तू व्यर्थमें क्यों रो रही है? धन जिसका था, वह ले गया। उसे तू अपने बापके घरसे नहीं लायी थी। सन्तोंको दोष मत दे, उन्हें चोर या ठग भी मत कह। वे जो कुछ भी करते हैं, ठीक ही करते हैं। रुपयोंको दूना करनेके लिये ले गये हैं। स्त्रीको इनकी बातोंपर विश्वास न हुआ। दूसरे दिन इनकी वाणीको सत्य करनेके लिये स्वयं श्रीरामजी सन्तका वेष धारण करके आये और बोले—ये दो सौ रुपया लीजिये। पहले जब मैं गृहस्थ था, तब मुझसे एक आदमी दो सौ रुपया उधार ले गया था। अब जब मैं विरक्त हो गया हूँ। तब वह रुपये वापस कर गया। अब ये मेरे कामके नहीं हैं। आप इन्हें सन्त-सेवामें लगा दीजिये। इतना कहकर रुपया देकर घरसे बाहर निकलते ही प्रभु अन्तर्धान हो गये। ढूँढ़नेसे भी नहीं मिले। श्रीहरिदासजीने अपनी पत्नीसे कहा—'तुमने सन्तका प्रेम देखा।' यह सुनकर पत्नी प्रेम-विभोर हो गयी। श्रीहरिदासजीने उन रुपयोंसे भण्डारा कर दिया। सभी सन्तोंका खूब सत्कार किया।

एक सन्तको वायुरोग हो गया, वे आकर हरिदासजीके यहाँ पड़ गये। ये उनकी खूब सेवा-शुश्रूषा करने लगे। कुछ दिनोंके बाद सन्तजी स्वस्थ हो गये। एक दिन सन्तने कहा—मेरे लिये दलिया बना दो। श्रीहरिदासकी पत्नीने दलिया बना दिया। सन्तने थोड़ा-सा खाकर कहा—'यह दलिया मुझे अच्छा नहीं लग रहा है, अब मेरे लिये चनेकी दाल और गेहूँकी रोटी बनाओ।' स्त्रीने मना कर दिया तो सन्त कुपित हो गये। तब वह फटकारती हुई बोली—'जो दूँ, उसे चुपचाप खा लो, बातें मत बनाओ। तुम कौन-सी कमाई करके लाते हो।' इस प्रकार दोनोंमें कुछ कहा-सुनी हो गयी। तब सन्तने पाँच-सात चाँटे लगा दिये। श्रीहरिदासके आनेपर रो-रोकर उसने अपना दुःख सुनाया और कहा—'इस साधुको घरसे अभी भगा दो।' श्रीहरिदासजीने कहा—'ऐसा कभी नहीं हो सकता है। सन्त मेरे माता-पिता हैं। लात-घूँसा और चाँटे मारकर यदि धर्माचरणकी शिक्षा देते हैं तो अति उत्तम है।' यह सुनकर पत्नी रूठ गयी। उसने सन्तसे बोलना-चालना बन्द कर दिया। यह देखकर पाँच-सात दिन बाद सन्त चुपचाप वहाँसे चले गये। उसी समय भगवदिच्छासे हरिदासके पुत्रकी मृत्यु हो गयी। पत्नी बिलख-बिलखकर रोने लगी। हरिदासजीने उसे समझाया कि—'तूने सन्तका अपमान किया, इसीसे तुझको यह दण्ड मिला है। अब सन्तोंमें सदा सद्भाव रखना, तभी आनन्द-मंगल होगा।' पत्नीने कहा—'यदि सन्त-सेवामें कुछ चमत्कार है तो आप इस पुत्रको जीवित कर दीजिये। मेरा नहीं तो आपका तो सन्तोंमें पूरा सद्भाव है।' भगवत्कृपासे बालक जीवित हो गया। इस चमत्कारसे प्रभावित होकर स्त्री भी प्रेमसे सन्त-सेवा करने लगी। इस प्रकार श्रीहरिदासजी सन्तोंमें दोष नहीं देखते थे।

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी

ज्यों चंदन को पवन नीब पुनि चंदन करई।
बहुत काल तम निबिड़ उदय दीपक ज्यों हरई॥
श्रीभट पुनि हरिब्यास संत मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसन हरि गुन उच्चरई॥
गोबिंद भक्ति गद रोग गति तिलक दाम सद बैद हद।
जंगली देश के लोग सब (श्रीपरसुराम) किए पारषद॥ १३७॥

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीने जंगली असभ्य जनोंको हरिभक्तिका उत्तम उपदेश देकर उन्हें भगवत्पार्षदोंके तुल्य पवित्र एवं पूज्य बना दिया। जिस प्रकार चन्दन वृक्षका स्पर्श करके बहनेवाले वायुका स्पर्श पाकर नीम भी चन्दनके समान हो जाता है तथा जिस प्रकार दीपक पुराने एवं घने अन्धकारको दूर कर देता है, उसी तरह आप भी हरिभक्ति-विमुख लोगोंको अपने सम्पर्कसे पवित्रकर उनके अज्ञानको दूर कर देते थे। आप श्रीभट्टजी तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य आदि सन्तोंके मार्गपर चले। नित्य नियमपूर्वक आप अपनी जिह्वासे भगवत्कथा एवं कीर्तन करते रहते थे। जिस प्रकार कोई उत्तम वैद्य मधुर अनुपानके साथ रस-रसायनद्वारा असाध्य रोगीको रोग-मुक्त कर देता है, उसी प्रकार श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीने भी तिलक-कण्ठीके समेत हरिभक्तिका उपदेश देकर संसारी जीवोंको जगत्के पाप-ताप आदि रोगोंसे मुक्त किया॥ १३७॥

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीपरशुरामदेवजीका जन्म जयपुर राज्यमें सोलहवीं सदीमें हुआ था। वे परमरसिक महात्मा हरिव्यासदेवजीके शिष्य थे। परशुरामदेव अच्छे कवि और रसोपासक थे। भगवान्‌की कथा-सुधाके रसास्वादनमें उन्हें अमित आनन्द मिलता था। दूसरोंको कथामृतपान करानेके लिये वे सदा प्रस्तुत रहते थे। वे तिलक लगाने, माला फेरने और भगवद्‌गुणानुवाद करनेको बड़ा महत्त्व देते थे। वे कहा करते थे कि जहाँ धर्मकी खेती होती है, भगवान्‌के भक्तजन रहते हैं, वहीं साधु और सन्त अपने रहनेका स्थान बना लेते हैं। जिस तालाबमें पानी नहीं होता, उसके किनारे हंस नहीं रहा करते। जिस मनुष्यमें भगवान्‌का प्रेम नहीं होता, उसके पास भक्तजन भूलकर भी नहीं जाते।

परशुरामदेवका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा था। उनमें अलौकिक तेज था। उनका जीवन पूर्णरूपसे तपोमय था। विधर्मीतक उनके दर्शनसे प्रभावित हो जाया करते थे। अजमेरके निकट सलेमशाह नामका एक फकीर रहता था। वह हिन्दुओं तथा अन्य मतावलम्बियोंको हेय दृष्टिसे देखता था। साधु-सन्तोंपर अत्याचार करनेमें उसे तनिक भी संकोच नहीं होता था। लोग उससे डरते थे कि कहीं अपनी सिद्धियोंसे वह उन्हें हानि न पहुँचा दे। महात्मा हरिव्यासजीकी आज्ञासे परशुरामदेवने उसके दम्भ और पाखण्डका अन्त किया। जनताका उसके आतंकसे परित्राण करके भगवद्भक्तिकी महिमाका विस्तार किया। सलेमाबादमें उन्होंने राधा-माधवके मन्दिरका निर्माण करवाया और शहरका नाम परशुरामपुर रखा।

परशुरामदेवजी उच्चकोटिके रसिक थे, बड़े ठाट-बाटसे रहते थे। देखनेवालोंको भ्रम हो जाया करता था कि वे विरक्त हैं या गृहस्थ। एक बार एक ब्राह्मणने इनकी त्यागवृत्तिकी परीक्षा ली। उसने इनसे माया-त्यागकी बात चलायी। सन्तों और भक्तोंका चरित्रवैचित्र्य दूसरोंके उपकारके लिये होता है। परशुरामदेवने

अपनी सारी वस्तुएँ त्याग दीं, केवल कौपीन धारणकर वे उसके साथ नागेश्वर पहाड़की गुफामें चले गये। थोड़ी ही देरमें एक बनजारा आया, उसने अपनी सम्पत्ति इनके चरणोंमें चढ़ा दी। ब्राह्मण परशुरामदेवकी इस सिद्धि और प्रभावसे चकित हो उठा। उसने चरण पकड़कर क्षमा माँगी और उनकी आज्ञामें प्राणतक निछावर करनेको तैयार हो गया।

श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

राजसी महन्त देखि, गयौ कोऊ अन्त लैन, बोल्यौ 'जू अनन्त हरि सगे, माया टारियै।
चले सङ्ग वाके, त्यागि, पहिरि कुपीन अंग, बैठे गिरि कन्दरा में लागी ठौर प्यारियै॥
तहाँ बनिजारौ आय सम्पति चढ़ाय दई, दई और पालकी हूँ, महिमा निहारियै।
जाय लपटायौ पाँय, 'भाव मैं न जान्यौं कछू आन्यौं उरमाँझ, आवै प्राण वारि डारियै॥ ५२२॥

परशुरामदेवने भगवान्‌की रसमयी भक्तिसे अनेक जीवोंका कल्याण किया। एक बार एक अद्वैतवादी वेदान्ती संन्यासीके शिष्यने उनसे दीक्षा लेकर भक्तिमार्गका अवलम्बन लिया। संन्यासीने उसके सिरपर एक घड़ा जल भरकर उनके सामने भेजा, जिसका आशय यह था कि मैंने इसके हृदयको अद्वैत-जलसे परिपूर्ण कर दिया था। इसे नये ज्ञानकी आवश्यकता नहीं थी। परशुरामदेवने घड़ेमें मीठा डाल दिया, जिसका अभिप्राय यह था कि अभी भक्ति-माधुरीकी उसमें कमी थी। संन्यासी उनकी ओर आकृष्ट हो गया और उनमें उसकी श्रद्धा हो गयी।

उन्होंने 'परशुरामसागर' नामक एक ग्रन्थका निर्माण किया। इस ग्रन्थमें बाईस सौ दोहे, छप्पय, छन्द और अनेक पद हैं। इस सरस ग्रन्थमें भक्ति, ज्ञान, गुरुनिष्ठा और प्रेमकी महिमाका बखान विशेषरूपसे किया गया है।

श्रीगदाधरभट्टजी

सज्जन सुहृद सुसील बचन आरज प्रतिपालय।
निर्मत्सर निहकाम कृपा करुना को आलय॥
अननि भजन दृढ़ करन धर्‌यो बपु भक्तनि काजै।
परम धरम को सेतु बिदित बृन्दाबन गाजै॥
भागवत सुधा बरषै बदन काहू को नाहिन दुखद।
गुन निकर गदाधर भट्ट अति सब ही को लागै सुखद॥ १३८॥

श्रीगदाधरभट्टजी समस्त सद्‌गुणोंके समूह तथा सभीको सुख देनेवाले थे। आप स्वभावसे सज्जन, सबके मित्र, सदाचारी और पूर्वाचार्योंके वचनोंका पालन करनेवाले थे। आप ईर्ष्या, कामना आदि दुर्गुणोंसे रहित, कृपा और करुणाके निधान थे। लोगोंमें अनन्यभावपूर्वक भजन-साधनको दृढ़ करनेके लिये आपने शरीर धारण किया था। आप परम धर्मके पुष्ट सेतु थे। श्रीवृन्दावनधाममें सर्वदा विराजते थे। श्रीमद्भागवतकी कथा-सुधा आपके श्रीमुखसे बरसती रहती थी। आप किसी भी प्राणीके लिये दुःखद नहीं थे॥ १३८॥

श्रीगदाधरभट्टजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) अपने इष्टके धाम 'श्रीवृन्दावन' के प्रति निष्ठाका एक दृष्टान्त

श्रीगदाधरभट्टजी आन्ध्रप्रदेशके वैल्लनाटीय तैलंग ब्राह्मण थे। श्रीजीवगोस्वामीजीकी प्रेरणासे वे

वृन्दावनमें आकर श्रीरघुनाथभट्टजीके अनुगत शिष्य हो गये थे। श्रीगदाधरभट्टजी जब अपनी जन्मभूमि घरमें ही रहते थे, उस समय उन्होंने ***'सखी हौं स्याम रंग रँगी'*** यह पद बनाया। श्रीजीवगोस्वामीजीने श्रीवृन्दावनमें किसीको गाते हुए उक्त पदको सुना तो उनका मन विभोर हो गया। उन्होंने शीघ्र ही एक पत्र लिखकर दो सन्तोंको श्रीगदाधरभट्टजीके पास भेजा। पत्रमें लिखा था कि—'बिना (रँगनेके स्थान)-के आपके ऊपर रंग कैसे चढ़ गया, मुझे यह सोच-विचारकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है।' प्रेमसे ओत-प्रोत पत्रको लेकर दोनों सन्त श्रीभट्टजीके गाँवमें पहुँचे। उस समय परमरसिक सन्त श्रीभट्टजी गाँवके बाहर एक कुएँपर बैठे दातौन कर रहे थे। सन्तोंने श्रीभट्टजीसे ही पूछा—'यहाँ श्रीगदाधरभट्टजी कहाँ निवास करते हैं?' उत्तरमें श्रीभट्टजीने उन दोनों सन्तोंसे पूछा—'आप लोग किस स्थानमें रहते हैं?' सन्तोंने उत्तर दिया—'श्रीवृन्दावनधाममें।' यह सुनते ही श्रीभट्टजी मूर्छित होकर कुएँसे नीचे भूमिपर गिर पड़े। उस समय ऐसा लग रहा था कि मानो इनके प्राणोंने भगवत्प्राप्ति कर ली।

श्रीगदाधरभट्टजीकी मूर्च्छा देखकर पत्र लेकर आनेवाले साधुओंसे किसी ग्रामवासीने बताया कि 'श्रीगदाधरभट्टजी ये ही हैं।' आश्चर्य करते हुए प्रेमके साथ तब उन साधुओंने श्रीभट्टजीके कानमें कहा कि 'हम आपके लिये श्रीवृन्दावनसे श्रीजीवगोस्वामीजीका पत्र लाये हैं।' यह सुनकर इनकी मूर्च्छा दूर हो गयी और उठकर बैठ गये। साधुओंने पत्र दिया, आपने उसे लेकर सिरसे लगाया और पढ़कर उसी क्षण उन साधुओंके साथ चल दिये और शीघ्र ही श्रीवृन्दावन आकर सर्वप्रथम श्रीजीवगोस्वामीजीसे मिले। मिलन-सुखसे आँखोंमें आनन्दके आँसू भर गये। शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये। तत्पश्चात् धैर्य धारणकर वही ***'सखी हौं स्याम रंग रँगी'*** पद गाया। श्रीवृन्दावनमें निवास करते हुए आपने श्रीजीवगोस्वामीसे अनेक भक्तिशास्त्रोंका अध्ययन और सन्तोंके साथ सत्संग किया। श्रीकृष्णकी कथाओंके रसकी उमंग आपके अंग-अंगमें भर गयी। भावमें विभोर होकर आप नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा कहने लगे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीगदाधरभट्टजी और श्रीजीवगोस्वामीके मिलनकी घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

'स्याम रङ्ग रँगी, पद सुनिकै, 'गुसांई जीव' पत्र दै पठाये उभै साधु वेगि धाये हैं'।
'रैनी बिन रंग कैसे चढ्यौ' अति सोच बढ़्यौ, कागद में प्रेम मढ़्यौ तहाँ लैके आये हैं॥
पुर ढिग कूप, तहाँ बैठे रस रूप, लगे पूछिबे कौ तिनहीं सों नाम ले बताये हैं।
रहौ कौन ठौर, सिरमौर वृन्दावन धाम नाम सुनि मुरछा ह्वै गिरे प्रान पाये हैं॥ ५२३॥
काहू कही 'भट्ट श्रीगदाधर जू एई जानौ' मानौ उही पाती चाह फैरिकै जिवाये हैं।
दियो पत्र, हाथ लियो, सीस सौं लगाय, चाय, बाँचत ही चले, वेगि वृन्दावन आये हैं॥
मिले श्रीगुसाईं जू सों आँखैं भरि आईं नीर, सुधि न शरीर धरि धीर वही गाये हैं।
पढ़े सब ग्रन्थ, संग नाना कृष्णकथा रंग, रसकी उमंग अंग अंग भाव छाये हैं॥ ५२४॥

(ख) श्रीमद्भागवतकथाके मध्य घटी एक विलक्षण घटना

मथुरा-वृन्दावनके मध्यमें बसे धौरहरा गाँवका निवासी कल्याणसिंह नामक एक पवित्र हृदयवाला राजस्थानी राजपूत वृन्दावनमें श्रीगदाधरभट्टजीकी कथामें आने लगा। कथाका ऐसा विचित्र रंग उसपर चढ़ा कि उसने अपनी स्त्रीसे हँसना-बोलना बिलकुल छोड़ दिया। इससे उसकी स्त्री बड़े दुःखमें पड़ गयी। उसने निश्चय किया कि मैं ऐसी कोई नयी युक्ति करूँ, जिससे हमारे पतिका मन कथा और कथावाचकसे हट जाय। इसी बीच एक गर्भवती तरुणी स्त्री गाँवमें भीख माँगती दिखायी पड़ी।

कल्याणसिंहकी स्त्रीने युवती भिखारिनको बुलाकर बीस रुपये दिये और समझाया कि तुम वृन्दावन चली जाओ और जिस समय श्रीगदाधरभट्टजीकी कथा हो, उसी समय सबके सामने कहना—'महाराज! जैसे आपने मुझपर कृपा की और मुझे गर्भवती किया, उसी प्रकार अब मेरी सुधि लीजिये।' उस भिखारिनने स्वीकार कर लिया, तब उसने अपनी एक दासी उसके साथ कर दी। धनके लोभवश भिखारिनका चित्त दूषित हो गया था। उसने कथामें जाकर सबको सुनाकर श्रीभट्टजीसे कहा कि 'अब मेरा प्रबन्ध कीजिये।' उसकी इन बातोंको सुनकर श्रीगदाधरभट्टजीने कहा—'आओ-आओ, बैठो। मैं तो नित्य मनमें तुम्हारा स्मरण करता था, परंतु तुम जाने कहाँ चली गयी थी।' श्रोताओंने जब ये बातें सुनीं तो उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगे कि यह स्त्री झूठ कह रही है, इसे मारो, दूर भगा दो। यह सुनकर उसके प्राणोंकी रक्षाके लिये श्रीभट्टजीने कहा—यह सत्य कहती है। यह सुनकर श्रोताओंको बड़ा दुःख हुआ।

श्रोताओंमें श्रीराधिकाबल्लभदासजी नामक एक सन्त बैठे थे, वे बड़े बुद्धिमान् थे, उन्हें भी भिखारिन और भट्टजीका संवाद सुनकर महान् दुःख हुआ। उन्होंने उस भिखारिनको एकान्तमें बुलाकर उसे समझाया और डराया कि जो सच्ची बात है, उसे बता दो, तब तो तुम्हें छोड़ दिया जायगा। नहीं तो अभी तुझे मार डाला जायगा। यह सुनकर वह डर गयी और उसने सब रहस्य खोल दिया, जिसे सुनकर श्रोताओंकी जान-में-जान आयी। कल्याणसिंहजीने जब अपनी स्त्रीकी यह करतूत सुनी तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और म्यानसे तलवार निकालकर उसे मारनेके लिये चले। तब श्रीभट्टजीने उन्हें रोक लिया और समझाते हुए कहा—'इन स्त्रियोंने हमारे ऊपर बड़ी दया की है, उन्होंने अहंकार एवं प्रभुतारूपी पिशाचिनीसे बचाया है।' सन्त श्रीभट्टजीके स्वभावको देखकर कि अपराधीके प्रति कितनी दया है, दोनों स्त्रियाँ भक्ता बन गयीं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नाम हो कल्यानसिंह जात रजपूत पूत, बैठ्यौ आय, कथा सो अभूत रंग लाग्यो है।
निपट निकट वास 'धौरहा' प्रवास गांव हास परिहास तज्यो, तिया दुःख पाग्यो है॥
जानी भट्ट संग सों अनंग वास दूर भई, करौ लैकै नई आनि हिये काम जाग्यो है।
माँगत फिरत हुती जुवती औ गर्भवती, कही लै रुपैया बीस नैकु कहो राग्यो है॥ ५२५॥
गदाधर भट्ट जू की कथा में प्रकाश कहो, 'अहौ कृपा करी अब मेरी सुधि लीजियै'।
दई लौंड़ी संग, लोभ रंग चित्त भंग किये दिये लै बताय, बोली 'मेरौ काम कीजियै'॥
बोले आप 'बैठिये जू जाप नित करौं हिये, पाप नहीं मेरौ गई दर्शन दीजियै।
श्रोता दुख पाय, भाखैं झूठी याहि मारि नाखैं साँची कहि राखैं, सुनि तन मन छीजियै॥ ५२६॥
फाटि जाय भूमि तौ समाय जायँ श्रोता कहैं, बहै दृग नीर है अधीर सुधि गई है।
राधिकाबल्लभदास प्रकट प्रकाश भास, भयौ दुःख रास, सुनि सो बुलाय लई है॥
'साँच कहि दीजै नहीं अभी जीव लीजै', डरि, सबै कहि दीयौ, सुख लियौ संज्ञा भई है।
काढ़ि तरवार तिया मारिबे कल्यान गयो, दयौ परबोध 'हमें करी दया नई है'॥ ५२७॥

(ग) कथाके श्रोता एक महन्तजी और श्रीगदाधरभट्टजीका प्रेमाह्लाद

श्रीगदाधरभट्टजीकी कथाकी प्रशंसा सुनकर व्रजभूमिसे बाहर किसी स्थानके एक महन्तजी भी कथा सुनने आये। लोगोंने उन्हें सम्मानपूर्वक आगे बैठाया। कथा होने लगी तो महन्तजीने देखा कि कथा सुनकर सभी सन्तोंके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। अब महन्तजी सोचने लगे कि मेरी आँखोंमें आँसू क्यों नहीं आते? वे शोक-समुद्रमें मग्न हो गये। सोचते-सोचते उन्हें एक उपाय सूझा। दूसरे दिन जब ये कथा सुनने आये

तो पिसी लाल मिर्च छिपाकर लाये और कथा सुनते हुए उन्होंने अपनी आँखोंमें मिर्च लगा ली। इस बातको किसी सन्तने जान लिया और कथाके समाप्त होनेपर श्रीगदाधरभट्टजीको बता दिया। जब सभी श्रोता चले गये, तब श्रीभट्टजी महन्तजीको छातीसे लगाकर मिले और रोते हुए पुकारकर बोले—मेरे मनमें यदि ऐसी रोनेकी तीव्र इच्छा प्रकट हो जाती तो मेरा जन्म सफल हो जाता। इस प्रकार कहते-कहते आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उससे महन्तजी भीग गये और उनके हृदयमें भी प्रेम प्रकट हो गया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

रहै काहू देस में महन्त, आये कथा माँझ, आगै लै बैठाये देखैं सबै साधु भीजे हैं।
'मेरे अश्रु पात क्यों न होत, सोच सोत परे करे लै उपाय दै लगाय मिर्च खीजे हैं॥
सन्त एक जानिकै जताय दई भट्टजू कौ, गए उठि सब जब मिलि अति रीझे हैं।
'ऐसी चाह होय मेरे' रोयकै पुकारि कही, चली जलधार नैन प्रेम आय धीजे हैं॥ ५२८॥

(घ) चोर भगवद्भक्त बन गया

एक बार श्रीगदाधरभट्टजीके आश्रममें (माँट गाँवका) एक चोर घुस आया और उसने बहुत-सी सम्पत्ति-सामान बटोरकर एक गठरी बाँध ली, परंतु जब वह गठरी उठाने लगा तो अधिक भारी होनेके कारण उसे उठा न सका। श्रीभट्टजी देख रहे थे, वे उसके पास आये और उन्होंने गठरी उठवा दी। चोरको आश्चर्य हुआ। उसने आपका नाम पूछा। तब आपने बता दिया। नाम सुनकर उसके मनमें इनके प्रति बड़ा प्रेम हुआ और वह बोला—'मुझसे बड़ी भारी भूल हुई, मैं नहीं जानता था कि यह आपका घर है।' सिरसे गठरी उतारकर वह क्षमा-प्रार्थना करने लगा। तब आपने कहा—'आप इस गठरीको ले जाओ। मेरे पास तो सबेरा होते ही इससे दसगुनी सम्पत्ति और आ जायगी। तुम्हारी तो यही जीविका है।' उसने श्रीभट्टजीके चरण पकड़ लिये और शिष्यता स्वीकार कर ली। चोरी करना छोड़ दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आयौ एक चोर, घर सम्पति बटोरि, गाँठि बाँधी, लै मरोरि किहूँ उठै, नाहिं भारी है।
आयकै उठाय दई, देखी इन रीति नई, पूछ्यौ नाम, प्रीति भई, भूलो मैं बिचारी है॥
बोले आप लै पधारौ, होत ही सवारौ आवै और दसगुनी मेरे तेरी यह ज्यारी है।
प्राननि कौं आगे धरौ आनि कै उपाय करौ, रहे समझाय भयौ शिष्य चोरी टारी है॥ ५२९॥

(ङ) श्रीगदाधरभट्टजीका भगवद्भाव

श्रीगदाधरभट्टजी श्रीमद्भागवतके मर्मज्ञ विद्वान् थे, अतः सेवा-भक्तिका प्रभाव जैसा भागवतमें कहा गया है, उसे भलीभाँति जानते थे। इसलिये भक्त-भगवन्तकी सेवा-टहल नित्य आप अपने हाथोंसे ही करते थे। एक दिन आप मन्दिरमें चौका लगा रहे थे। उसी समय कोई धनी-मानी आपका शिष्य बहुत-सी भेंट लेकर दर्शन करने आया। श्रीभट्टजीके एक शिष्यने दूरसे देखकर आपसे कहा—'महाराजजी! आप शीघ्र हाथ धोकर अपने आसनपर बैठ जाइये। भक्त भेंट लेकर आ रहा है।' यह सुनकर आप उसके ऊपर नाराज हो गये। पुनः समझाया कि 'भगवत्-सेवामें ही हमें रुचि है, अतः सेवाको त्यागकर भेंट लेनेके लिये गद्दीपर नहीं बैठ सकते हैं।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रभु की टहल निज करनि करत आप, भक्ति कौ प्रताप जानें भागवत गाई है।
देत हुते चौका, कोऊ शिष्य बहु भेंट ल्यायौ, दूर ही ते देखि दास आयौ सो जनाई है॥

धोवौ हाथ बैठौ आप, सुनिकै रिसाय उठे, सेवा ही में चाय वाकौ खीझि समझाई है।
हिये हित रासि जग आस कों विनास कियौ, पियौ प्रेम रस ताकी बात लै दिखाई है॥ ५३०॥

चारण भक्त

चौमुख चौरा चंड जगत ईस्वर गुन जाने।
करमानँद अरु कोल्ह अल्ह अच्छर परवाने॥
माधौ मथुरा मध्य साधु जीवानँद सींवा।
दुदा नरायनदास नाम माँड़न नतग्रीवा॥
चौरासी रूपक चतुर, बरनत, बानी जुवा।
चरन शरन चारन भगत हरि गायक एता हुआ॥ १३९॥

भगवान्‌के चरणकमलोंकी शरण ग्रहण करनेवाले और उन्हींके गुणोंको गानेवाले ये तेरह चारण (गवैया) भक्त हुए। श्रीचौमुखजी, श्रीचौराजी, श्रीचण्डजी, जगत्‌में भगवद्‌गुण गानेवाले श्रीईश्वरदासजी, श्रीकरमानन्दजी, श्रीकोल्हजी, प्रामाणिक काव्य रचनेवाले श्रीअल्हजी, मथुरामें रहनेवाले श्रीमाधवजी, सरल-सन्त श्रीजीवानन्दजी, श्रीसींवाजी, श्रीदूदाजी, श्रीनारायणदासजी और नम्र स्वभाववाले श्रीमाण्डनजी। ये सभी चारण भक्त चौरासी प्रकारसे (अथवा चौरासी लाख योनियोंके) रूपकोंकी रचनामें तथा अनेक प्रकारसे अलग-अलग हरिगुणगानमें परम चतुर हुए॥ १३९॥

इन चारण भक्तोंमेंसे कुछ भक्तोंके चरित इस प्रकार हैं—

श्रीचौमुखजी

श्रीचौमुखजी बड़े ही भगवद्भक्त संत थे। इनका दूसरा नाम चौमौ था। एक बार श्रीचौमुखजी अपने नगरसे बैलोंके रथपर सवार होकर दर्शनार्थ द्वारकापुरीको जा रहे थे। चलते-चलते रास्तेमें जंगलके मध्य एक बैल मर गया। अब समस्या हो गयी कि एक बैलसे रथ कैसे चले! आप मनमें बहुत चिन्तित हुए, तब उसी क्षण एक बैल आपके रथके पास आकर खड़ा हो गया। आप उसे रथमें जोतकर सानन्द द्वारका आये। यहाँ आते ही वह बैल अन्तर्धान हो गया। तब इन्हें बड़ा दुःख हुआ। भगवान् स्वयं बैल बनकर रथमें जुते—यह सोच-सोचकर भगवान्‌की वत्सलतापर आप न्यौछावर होते थे, प्रभुकी कृपाका ध्यानकर आपकी आँखें सजल हो रही थीं। आपको इस प्रकार चिन्तित देखकर भगवान्‌ने स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि यदि मैं अपने भक्तपर इतना वात्सल्य न करूँ तो फिर मेरा भजन कौन करे!

श्रीराघवदासजीकृत भक्तमालमें लिखा है कि आप एक दिन प्रभुकी स्तुति कर रहे थे। आपके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। आपको अपने शरीरकी सुधि न थी। उसी समय राजाका नौकर आपको बुलाने आया। किंतु भगवान्‌की स्तुति छोड़कर आप उसके साथ नहीं आये। इससे राजा रुष्ट हो गया। आप स्तुति-पूजा समाप्त करके राजसभामें गये तो राजाने इन्हें फटकारकर सभाके बाहर निकाल दिया। यह प्रभुको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने रातको स्वप्नमें राजासे कहा—चौमुखकी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं, वह हमें बहुत प्रिय लगता है। तुम आज प्रातःकाल उसे अपने दरबारमें बुला लेना और सत्कार करना। नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। भगवान्‌के आज्ञानुसार राजाने श्रीचौमुखजीको बुलाकर क्षमा-प्रार्थना करके उनका सत्कार किया और इच्छानुसार भजन-पूजनके बाद दरबारमें दर्शन देनेकी प्रार्थना की।

श्रीचण्डजी

इनका पूरा नाम चूड़ाजी भी था। ये इसी छप्पयमें आये श्रीमाधवदासजीके पिता थे। ये मेड़ताके ठाकुर श्रीचारभुजाजीके अनन्य भक्त थे। इनकी भक्तिके प्रभावसे ही इन्हें माधवदास-सरीखे भक्त पुत्रकी प्राप्ति हुई।

श्रीईश्वरदासजी

ये रोहड़िया शाखाके चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्यमें भाद्रेस गाँवमें वि० सं० १५९५ में हुआ था। आपके जन्मके सम्बन्धमें यह दोहा प्रसिद्ध है—***'पन्द्रह सौ पंचानबे जनम्या ईसरदास। चारण वर्ण चकार में उस दिन भयौ उजास॥'***

आपके पिताका नाम सूजा और माताका नाम अमरबाई था। आपकी धर्मपत्नीका नाम देवलबाई था, जिनकी असामयिक मृत्यु हो गयी। आपके गुरु श्रीपीताम्बरजी भट्ट थे। जामनगरमें पेथा भाई अबसूराकी पुत्री राजबाईके साथ आपका दूसरा ब्याह हुआ। पहले ईश्वरदासजी राजाओंको प्रसन्न करनेके लिये उनकी कीर्तिका गान किया करते थे। जामनगरमें जाकर वहाँके राजाको भी आपने कविताएँ सुनायीं। उत्तम कविता थी, अतः राजा बहुत प्रसन्न हुआ। परंतु श्रीपीताम्बरजी भट्ट इनकी कविता सुनकर बहुत उदास हुए। उन्होंने प्रशंसा भी नहीं की, अत: ईश्वरदासजीके मनमें भट्टजीके प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ और ये बदला लेने (मारने)-की इच्छासे रातमें पीताम्बरभट्टके यहाँ गये और छिपकर बैठ गये। भट्टजी अपनी पत्नीसे वार्तालाप कर रहे थे। उसे ईश्वरदासजी सुन रहे थे। उनकी पत्नीने पूछा कि आप उदास क्यों हैं? उन्होंने कहा—'आज एक चारण दरबारमें आया, उसकी सुन्दर कविता सुनकर मेरा मन खिन्न हो गया।' स्त्रीने फिर पूछा कि सुन्दर कविता सुनकर तो आपको प्रसन्न होना चाहिये, फिर आप खिन्न क्यों हो गये? तब भट्टजीने कहा कि इतनी विशिष्ट काव्य रचनेकी प्रतिभा पाकर उसने राजाके गुण गाकर उसे प्रसन्न किया और धन-मान पाकर फूल गया। क्या अच्छा होता कि यदि वह अपनी कविताके द्वारा ईश्वरकी कीर्तिको गाकर उन्हें प्रसन्न करता तो उसे जीवन-जन्मका परम लाभ मिल जाता। इतना सुनते ही हथियार फेंककर ईश्वरदास प्रकट हो गये और भट्टजीके चरणोंमें गिर गये, रोने लगे और अपनी दुष्ट भावनाको प्रकटकर बारम्बार क्षमा-याचना करने लगे।* उसी समय भट्टजीको गुरु मानकर उनके शिष्य बन गये और प्रतिज्ञा की कि 'अब मैं केवल ईश्वरके गुणोंका ही गान किया करूँगा, किसी अन्यका नहीं।' तभीसे आप भक्त हो गये। इस प्रतिज्ञासे राजसभाओंमें भी आपका विशेष आदर हुआ। सर्वत्र आप हरियशका गानकर दूसरोंको तथा अपनेको भी कृतार्थ करते थे। ये लगभग बीस वर्षकी आयुमें सं० १६१५ में जामनगर पहुँचे। वहाँके रावल जामने संचणो आदि कई गाँव इन्हें भेंटमें दिये। लगभग छः वर्ष जामनगरमें निवास करनेके बाद पुनः अपने गाँव भाद्रेसमें आ गये। वहीं रमणीय नदीके तटपर एकान्तमें कुटी बनाकर भजन करने लगे। ये भजनानन्दी, प्रतापी सिद्ध सन्त हुए।

एकबार ये द्वारकाधीशका दर्शन करनेके लिये चले। साथमें आपके चाचा आसवदास (आशानन्दजी) भी थे। चलते-चलते एक जगह जंगलमें सुन्दर सरोवर देखकर वहीं स्नान और भजन-पूजन हुआ। उसके बाद आपने अग्नि चेतायी और उसके ऊपर पात्रमें पानी चढ़ा दिया। चाचा आशानन्दजीने कहा—यहाँ दाल, चावल आदि कुछ भी सामान नहीं है, फिर भी आपने व्यर्थ ही आगपर पानी चढ़ा दिया। श्रीईश्वरदासजीने उत्तर दिया—***'ईश भरोसे ऊकले आँधन ईसरदास। ऊकलतामें ऊरसी रख वन्दा विश्वास॥'*** अर्थात् ईश्वरके भरोसे पानी खौल रहा है, ईश्वरदासको विश्वास है कि खौलते हुए जलमें प्रभु (दाल, चावल आदि) कुछ डालेंगे। आपका विश्वास फलीभूत हुआ, उसी समय एक बंजारेके वेषमें आकर प्रभुने सब सामान

* यह कथा महर्षि वसिष्ठ एवं विश्वामित्रसे सम्बन्धित एक प्रसंगसे मिलती-जुलती तथा उसीके समान प्रेरक भी है।

दिया। भोजन बना और भोग लगा तब पुनः एक सन्तके रूपमें भगवान्ने आकर साथ-साथ भोजन किया। जब आप द्वारकापुरीमें श्रीद्वारकाधीशजीका दर्शन करने गये तो उस समय परदा पड़ा हुआ था। आप दर्शनोंके लिये लालायित थे, अतः बोले—*'कह ईसर रे ईसरा खोल पड़ाद्दा यार। मैं आया तुझ कारने दिखला दे दिद्दार॥'* सख्य रसावेशकी प्रिय भाषा सुनकर बिना पुजारीके खोले ही परदा खुल गया। चकितचित्त पुजारियोंने बाहर आकर देखा तो जान लिया कि भक्तवर ईश्वरदासके लिये ही अनवसरमें स्वयं प्रभुने परदा खोल दिया।

एक बार आप दर्शनार्थ द्वारकापुरी गये। प्रेमोन्मत्त होकर आपने विविध छन्दोंको गाकर प्रभुकी स्तुति की। भगवान्की अद्भुत छबि देखकर इनके मनमें साक्षात् प्रभुके दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा जगी। नहीं रहा गया तब आप समुद्रमें कूद पड़े। पर थलकी तरह जलमें इतस्ततः रोते-गाते घूमते रहे। न तो आप डूबे न किसी जीव-जन्तुने ही पकड़ा और न दर्शन ही हुए। तब भगवत्प्रेरणासे आप बाहर निकल आये और श्रीद्वारकाधीशके द्वारपर अनशन व्रत लेकर बैठ गये। तीसरे दिन आपको आकाशवाणी सुनायी पड़ी। प्रभुने कहा—हम तो तुम्हारे प्रेमके अधीन हैं, अतः तुम कष्ट न सहकर घरको जाओ और सन्त-सेवाके निमित्त तुमने जो धनका संग्रह किया है, उसे सन्त-सेवामें लगा दो। उसके बाद घरपर ही मैं तुम्हें दर्शन दूँगा। प्रातःकाल मैं तुम्हें अपनी प्रसादी-माला दिलाऊँगा। आज्ञा पाकर आपने अनशन त्यागकर प्रसाद लिया। प्रातःकाल भगवान्ने पण्डाजीको आज्ञा दी, तब पण्डाजीने माला-प्रसादी ईश्वरदासको प्रदान की। इसके बाद आप घर आये और बड़े प्रेमसे आपने महोत्सव आरम्भ किया। संग्रहीत धनके अतिरिक्त और भी बहुत-सा धन लगाकर आपने सन्त-सेवा की। विदाई करते समय आपके साथमें प्रत्यक्ष प्रभु सन्तोंका सत्कार कर रहे थे। ये बीच-बीचमें प्रभु-दर्शनसे विभोर होकर सुध-बुध खो बैठते। तब भगवान् इन्हें सचेत करके कर्तव्यका निर्देश देते। इसके बाद प्रभुछवि इनके नैनोंमें, मनमें बस गयी। उसीमें मग्न रहते।

अमरेलीमें भक्त कर्णदासजी रहते थे। उनके पिताजी भी हरिभक्त थे। उनसे आपकी प्रगाढ़ मैत्री थी। परस्पर सत्संग करके दोनों परमानन्दका अनुभव करते थे। एकबार आप अमरेलीको जा रहे थे। मार्गमें साँगा गौड़ राजपूतके यहाँ आप ठहरे। आपने भोजन-विश्राम किया। साँगाने एक कम्बल भेंट किया। उसकी कोर बनाना बाकी था, अतः आपने कहा कि मैं अमरेलीसे जब लौटूँगा। तब इसे ले लूँगा। ऐसा कहकर आप अमरेली चले गये। वहाँपर कर्णदासको महान् विषधर सर्पने डस लिया। उसकी मृत्युसे सभीको बड़ा कष्ट हुआ। लोगोंके करुण-क्रन्दनसे आपका कोमल-हृदय पसीज गया। तब आपने प्रभुसे विनती करके कर्णदासजीको जीवित कर दिया। कुछ दिन वहाँ भजन-कीर्तन एवं सत्संगसे लोगोंको कृतार्थकर श्रीईश्वरदासजी लौटे और साँगा राजपूतके यहाँ गये। साँगाकी माताने इनका स्वागत-सत्कार किया। पश्चात् भोजन परोसा, तब आपने पूछा कि साँगा कहाँ है? माताने कहा—आप भोजन कीजिये, वह यहाँ नहीं है। आपने कहा—'कम्बल देना पड़ेगा, इस भयसे मेरे पास नहीं आ रहा है क्या?' माताने कहा—ऐसा नहीं, आप भोजन कर लें तब उसका पता बताऊँगी। आपने कहा—जबतक वह नहीं आयेगा, तबतक मैं प्रसाद नहीं पाऊँगा। अब मातासे नहीं रहा गया, वह रोने लगी। लोगोंने बताया कि वह अपने गोवंशको चराने गया था। नदी पार करते समय भयंकर बाढ़ आयी और सभी पशुओंके सहित साँगा डूबकर बह गया। महीनों पहलेकी बात है। साँगा भक्तके प्रेममें आकर श्रीईश्वरदासने कहा—अरे! ऐसा तो नहीं होना चाहिये। मुझे कम्बल दिये बिना कहाँ चला गया, फिर तो आपने भगवान्की विनती की एवं अनेक भावपूर्ण छन्द पढ़े। प्रभु-कृपासे साँगा अपने सम्पूर्ण गोवंशके साथ नदीसे निकलकर आ गया। ईश्वरदासके चरणोंमें उसने

दण्डवत्प्रणाम किया। साथ-साथ भोजनकर इन्हें कम्बल भेंट किया। इस ईश्वर-लीलासे वहाँकी सारी जनतापर इनका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। आपके उपदेशसे अनन्त जीवोंका कल्याण हुआ। लोगोंने इन्हें साक्षात् ईश्वरके समान माना। मृतकको जीवित करनेवाले सिद्ध-सन्त अनेक हुए। पर इतने दिनों बाद उन-उन जीवात्माओंको जाने कहाँ-कहाँसे वापस बुला लेना—यह ईश्वरके अतिरिक्त किसकी सामर्थ्य है। तभीसे उक्ति प्रसिद्ध हुई—***'ईसरा सो परमेसरा'*** अर्थात् जो ईश्वर हैं, वही ईश्वरदास हैं।

नाम-महिमाका वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—

नाम समो बड़ क्वौ नहीं, जप तप तीरथ जोग।
नामे पातक छूटिया, नामे नाशै रोग॥

'हरिरस' नामक ग्रन्थ आपकी प्रमुख रचना है। अब भी भाद्रेस गाँवमें आपकी भजन-कुटी और चरण-पादुकाएँ हैं। वहाँ दीपमालिकाके दिन प्रतिवर्ष मेला लगता है। लोग वहाँ दीपदान और हरिरसका पाठ करते हैं। वहाँ पीलु (जाल)-के वृक्षपर भावुक भक्तोंको दीपकका दर्शन होता है। आपके कृपारूप प्रसादसे वहाँके लोगोंके मनोरथ पूर्ण होते हैं। लगभग ८० वर्षकी आयुमें आपने वैकुण्ठधामगमन किया। घोड़ेपर चढ़कर समुद्रमें घुस गये। उनके सम्बन्धमें यह दोहा प्रसिद्ध है—

ईश्वर घोड़ा रेलिया भवसागर रै माहि। तारण वालो तारसी साईं पकड़ी बांहि॥

हरिरसके आदिमें आपने जामनगरनिवासी अपने गुरु श्रीपीताम्बरभट्टकी वन्दना की है—

लागू हूँ पहली खुलै पीताम्बर गुरु पाय। भेद महारस भागवत प्रामू जास पसाय॥
जाल टलै मन क्रम गलै निरमल भावै देह। भाग हुवै तो भागवत सांभल जे श्रवणेह॥

ग्रन्थके अन्तमें दोहासंख्या और फलस्तुति इस प्रकार है—

ईश्वर ओ हरिरस कियो दुहाँ तीन सौ साठ। महापापी पावै मुकुत जो कीजै नित पाठ॥

श्रीकरमानन्दजी

श्रीकरमानन्दजी चारणकुलमें उत्पन्न एक श्रेष्ठ भक्त थे, वे अपने मधुर गायनसे प्रभुकी सेवा करते थे। आपका गायन इतना भावपूर्ण होता था कि उसे सुनकर पाषाण-हृदय भी पिघल जाता था। आप गृहस्थ भक्त थे, परंतु गृहस्थी आपको बहुत दिनतक रास न आयी और एक दिन आप सब कुछ छोड़कर तीर्थाटन-हेतु निकल पड़े; निःस्पृह निष्किंचन। साधन-सामग्रीके नामपर आपके पास हाथमें एक छड़ी थी और गलेमें लटकता ठाकुर बटुआ। आप जहाँ-कहीं भी विश्राम करनेके लिये रुकते, वहाँ छड़ीको पृथ्वीमें गाड़ देते और ठाकुर बटुआको उसपर लटका देते। इससे आपके आराध्य श्रीठाकुरजीको झूला झूलनेका सुख मिल जाता और आपकी भी उनको झूला झुलानेके भावकी पूर्ति हो जाती।

एक दिन आप प्रातःकाल सेवा-पूजा करके श्रीठाकुरजीको गलेमें लटकाकर चल दिये। उस समय भगवन्नाम-रूपमें मनके लगे रहनेसे छड़ीको भूल गये। वस्तुतः भगवान्ने ही भक्त-भावका रसास्वादन करनेके लिये यह लीला की थी। जब अगले विश्राम-स्थलपर रुके तो बिना छड़ीके अब श्रीठाकुरजीको कहाँ और कैसे पधरायें? छड़ीमें झुलानेका अभ्यास-नियम था। दूसरा कोई विकल्प नहीं सूझा। तब आपको प्रेमाधिक्यके कारण श्रीठाकुरजीपर प्रणय-रोष हुआ। आपने कहा—हम तो जीव हैं, हमसे तो भूल होती ही रहेगी। जब हम भूल गये थे तो आपको छड़ीकी याद दिलाना था। कभी दाल-शाकमें रामरस-मिर्च कम-ज्यादा हो जाता है तो आप बता देते हैं, खीर या कढ़ी पानेकी इच्छा होती है तो कह देते हैं, उसी तरह यदि छड़ीकी याद दिला देते तो आपका क्या बिगड़ जाता? अब वह मुकाम यहाँसे चार कोस दूर है, जाने वहाँ छड़ी

है कि कोई ले गया। पीछे लौटकर जायँ तो यहाँ सेवा-भोग आदिमें बाधा होगी। इतना कहकर श्रीकरमानन्दजी क्या करें और किंकर्तव्यविमूढ़की स्थितिमें फँसकर चिन्तित एवं उदास हो गये। श्रीठाकुरजीने इन शब्दोंको सुननेके लिये ही यह लीला की थी। अपनी सेवासे सम्बन्धित चिन्ता एवं तत्सुख-सुखित्वके भावसे श्रीठाकुरजी रीझ गये। श्रीकरमानन्दजी इसलिये खीझे कि सदाकी भाँति आज मुझे चैतन्य नहीं किया।

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक प्रभु श्रीकरमानन्दजीकी डाँट-फटकारसे प्रभावित हो गये और रीझ गये। जिनकी इच्छामात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका सृजन होता है, उनके लिये चार कोससे छड़ी मँगा लेना यह कौन बड़ी बात है? प्रभुकी इच्छाशक्ति योगमायाने छड़ी लाकर दी। ऐसा लगा कि भगवान् हाथ बढ़ाकर छड़ी उखाड़ लाये। छड़ी देखकर श्रीकरमानन्दजी प्रेम-विह्वल हो गये और बोले, प्रभो! क्षमा कीजिये। मैंने आपको कठोर शब्द कहे। ***'रहत न आरत के चित चेतू।' 'आरत काह न करै कुकरमू॥'*** भगवान्ने कहा—जब हम और तुम दो ही हैं, तब यदि कुछ कहने-सुनने, लड़ने-झगड़नेकी इच्छा होगी तो कहाँ जायेंगे? आपसमें ही सब लीलाएँ होंगी। मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ और तुम्हारे प्रेमके अधीन हूँ। तुम्हारा रोष मेरे सुखके लिये था।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

करमानन्द चारण की बानी की उचारन में, दारुन जो हियौ होय, सोऊ पिघलाइयै।
दियौ गृह त्यागि हरि सेवा अनुराग भरे, बटुवा सुग्रीव हाथ छरी पधराइयै॥
काहू ठौर जाय गाड़ि वहीं पधराये वापै ल्याये, उर प्रभु भूलि आये कहाँ पाइयै।
फेरि चाह भई दई स्याम को जताय बात, लई मँगवाय, देखि मति लै भिजाइयै॥ ५३१॥

श्रीकोल्हजी, श्रीअल्हजी

श्रीकोल्हजी और श्रीअल्हजी दोनों भाई-भाई थे। इन दोनोंमें बड़े भाई श्रीकोल्हजी संसारके विषयोंसे उदासीन थे। वाणीसे अपनी कवितामें भगवान्के ही रूप और गुणोंका सर्वदा गान करते और भक्ति-भावनाको हृदयमें धारण करते थे, जबकि श्रीअल्हजी राजसी भोगोंको भोगते थे। राजाओंके गुणोंका गान करते थे, कभी-कभी भगवान्के भी गुणोंका गान कर लेते थे, परंतु अपने बड़े भाईके आज्ञाकारी थे।

एक दिन बड़े भाई श्रीकोल्हजीने अल्हजीसे कहा—चलो, श्रीद्वारकापुरी और श्रीद्वारकाधीशके दर्शन कर आयें। श्रीअल्हजी तो अपने बड़े भाईके सर्वथा आज्ञाकारी थे ही, अतः आज्ञा पाते ही उनके साथ चल दिये और श्रीद्वारकापुरी पहुँचे। जब मन्दिरमें दर्शन करने गये तो वहाँ एक विलक्षण घटना घटी। श्रीकोल्हजीने भगवान्को अपने बनाये हुए अनेक छन्द गाकर सुनाये। इसके बाद श्रीअल्हजीने भी सकुचाते हुए दो-चार छन्द सुनाये। इनके पदोंको सुनकर श्रीद्वारकाधीशने प्रसन्न होकर हुँकारी भरी और पण्डाजीको आज्ञा दी कि अल्हजीको मेरी प्रसादी-माला पहनाओ। आज्ञा पाकर पण्डाजी माला लेकर आये और जैसे ही इन्हें पहनाने लगे, इन्होंने कहा—ये मेरे बड़े भ्राता हैं, इन्हें ही माला पहनाइये, मैं इस योग्य नहीं हूँ।

श्रीअल्हजीके कहनेसे भी पुजारीजीने श्रीकोल्हजीको माला नहीं पहनायी और कहा—यह माला तो प्रभुने आपके लिये दी है न कि आपके बड़े भाईके लिये। ऐसा कहकर पुजारीजीने अल्हजीको माला पहना दी। इससे श्रीकोल्हजीने अपना बड़ा भारी अपमान समझा। अहंवश और ग्लानिके मारे समुद्रमें कूद पड़े। जलके भीतर घुसते ही इन्हें दिव्य भूमि मिल गयी। अब ये आनन्दमग्न होकर आगे चले, परंतु माला न मिलनेवाली अनीति इन्हें भूल नहीं रही थी। कुछ दूर और आगे बढ़नेपर इन्हें भगवान्के पार्षद मिले, जो कि अगवानी करनेके लिये आये थे। उनसे मिलकर आपको सुख-शान्ति मिली। फिर आपने जब द्वारकाधीश

श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये, तब परमानन्दकी प्राप्ति हुई। अपमानका दुःख भूल गया। इसके बाद जब कोल्हजी प्रसाद पानेके लिये बैठे, तब भगवान्‌की आज्ञासे सेवकोंने इनके सामने दो पत्तल परोसे। आपने पूछा—यह दूसरा पत्तल किसके लिये है? भगवान्‌ने उत्तर दिया—तुम्हारे छोटे भाईके लिये। वह हमें और तुम्हें भी अत्यन्त प्रिय है।

दूसरा पत्तल छोटे भाईके लिये है, यह सुनते ही अमृतमय भोजनप्रसाद विषतुल्य अप्रिय हो गया। अपमानका दुःख जो भूल गया था, वह फिर ज्यों-का-त्यों हो गया। यह देखकर भगवान्‌ने श्रीअल्हजीके पूर्वजन्मकी कथा सुनायी और कहा—यह तुम्हारा छोटा भाई पूर्वजन्ममें बड़े भारी राजाका पुत्र था। वहाँ इसे वैराग्य हो गया। घर छोड़कर वनमें चला गया। वहाँ इसने मुझमें मन-बुद्धि लगाकर खूब मेरा भजन किया। इसी बीच एक राजा वनमें आया। उसके साथ अनेक प्रकारके भोग-विलासकी सामग्री थी, जिसे देखकर इस राजकुमारके मनमें विषय भोगनेकी वासना उत्पन्न हो गयी। इसलिये हमने इसे संसारी सुखोंको भोगनेके लिये मनुष्यका शरीर दिया ताकि यह भोगोंको भोगकर उनकी असारता समझकर वासनासे मुक्त हो जाय। फिर भगवान्‌ने कोल्हजीसे कहा—तुम्हारे वियोगमें तुम्हारे छोटे भाईने अन्न-जल त्याग दिया है। तुम्हारे वियोगमें वह अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता है। इसलिये अब तुम शीघ्र जाकर उसकी खबर लो, यह कहकर भगवान्‌ने कोल्हजीके हाथमें प्रसाद दिया। शंख-चक्रके चिह्न लेकर आप घरको आ गये। अपमानका दुःख स्वप्नमें हुए दुःखके समान बिलकुल भूल गया। मनमें उसके प्रति अपार प्रेम हो गया। इधर छोटे भाई श्रीअल्हजीने जब सुना कि मेरे बड़े भ्राता कोल्हजी दिव्य द्वारकाका दर्शन करके आ रहे हैं तो उनके स्वागतके लिये चले। भाईको देखकर भूमिपर पड़कर प्रणाम किया। श्रीकोल्हजीने अल्हजीको भगवत्प्रसाद दिया तथा पूर्वजन्मका इतिहास भगवान्‌ने जो कुछ कहा था, वह सब कह सुनाया। उसी समय श्रीअल्हजी गृहकी आसक्तिको सर्वथा त्यागकर वृन्दावनमें रहने लगे। दोनों भाइयोंकी बुद्धि भक्त-भगवन्तके प्रेममें सराबोर हो गयी।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकोल्हजी और श्रीअल्हजीके इस प्रसंगका इस प्रकार वर्णन किया है—

कोल्ह अल्ह भाई दोऊ, कथा सुखदाई सुनौ, पहिलौ विरक्त मद मांस नहीं खात है।
हरि ही के रूप गुण वाणी में उचार करै, धरै भक्ति भाव हिये, ताकी यह बात है॥
दूसरौ अनुज, जानौ खाय सब उन मानौं, नृप ही कों गावै प्रभु कभूं गाय जात है।
बड़े के अधीन रहै, सोई करै जोई कहै, ईश करि चहै, आप दीनता मैं मात है॥ ५३२॥
बड़े आय कही चलौ द्वारिका निहारैं सही, मिथ्या जग भोग, यामें आयु ही बिहात है।
आज्ञा के अधीन चल्यौ, आये पुर, लीन भये, नये चोज मन्दिर मैं सुनौ कान बात है॥
कोल्ह नै सुनाये सब जे जे नाना छन्द गाये, पाछे अल्ह दोय चार कहे सकुचात है।
भर्‍यो ही हुङ्कारौ, प्रभु कही माला गरें डारौ, ल्याए पहिरावैं, कह्यो 'मेरौ बड़ौ भ्रात है'॥ ५३३॥
दयौ पै न याहि दयौ बड़ौ अपमान भयौ, गयौ बूड़ौं सागर मैं दुख कौ न पार है।
बूड़त ही आगे भूमि पाई, चल्यो झूमि प्रीति सो अनीति भूलै नाहिं मानो तरवार है॥
सौंही आये लैन हरिजन, मन चैन झिल्यो, मिल्यौ कृष्ण जाय पायो अति सुखसार है।
बैठे जब भोजन कों दई उभै पातर लै दूसरी जू कैसी कही वही भाई प्यार है॥ ५३४॥
सबै विष भयौ, दुख गयौ सोई हुयौ नयौ, दयौ परबोध वाकी बात सुनि लीजियै।
तेरो छोटो भाई मेरो भक्त सुखदाई, ताकी कथा लै जताई जामें आपही सों धीजियै॥

प्रथम जनम मांझ बड़ौ राज पुत्र भयौ, गयौ गृह त्यागि सदा, मोसों मति भीजियै।
आयौ वन कोऊ भूप सङ्ग राग रंग रूप, देखि चाह भई, देह दई भोग कीजियै॥ ५३५॥
तेरेई बियोग अन्न जल सब त्यागि दियौ जियौ नहीं जात वापै बेगि सुधि लीजियै।
हाथ पै प्रसाद दीनों, आय घर चीन्ह लीनों, सुपनौ सौ गयौ बीति, प्रीति वासों कीजियै॥
द्वारिका कौ संग सुनि आवत ही आगै चल्यौ मिल्यौ भूमि पर दृग भरि वहै दीजियै।
कही सब बात स्याम धाम तज्यौ ताही छिन कर्‌यौ बन बास दोऊ अति मति भीजियै॥ ५३६॥

श्रीनारायणदासजी

श्रीनारायणदासजी भक्तवर श्रीअल्हजीके पौत्र थे। इनसे बड़े और दूसरे भाई थे, ये सबसे छोटे थे। बड़े भाई लोग अन्न-धनका उत्पादन करनेवाले थे और ये श्रीनारायणदासजी कुछ भी कमाते नहीं थे। केवल खर्च-ही-खर्च करते थे। एक दिन इनकी भाभीने इन्हें ठण्डा भोजन दिया। इससे इन्हें महान् दुःख हुआ। इन्होंने अपनी भाभीसे कहा कि 'मुझे ताजा भोजन बनाकर दो।' इसपर वह क्रोध करके बोली—'तू अल्ह बाबा है क्या? जो मैं तुझे गर्म भोजन बना-बनाकर खिलाऊँ। जा, द्वारकाको चला जा और श्रीद्वारकाधीशजीको कविता सुनाकर उनसे हुँकारी भरवा, तब मैं तेरा बहुत आदर किया करूँगी और ताजा भोजन बना-बनाकर खिलाऊँगी।' इस प्रकार उसने परिहास किया। श्रीनारायणदासजीको यह बात लग गयी। इन्होंने उसी क्षण घर छोड़ दिया और श्रीद्वारकाधीशभगवान्‌में उसी प्रकारका अनुराग किया, जैसा कि श्रीअल्हजी करते थे। इनपर भी भगवान् प्रसन्न हो गये; क्योंकि वे तो भक्त-प्रेमके वशमें रहते हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीनारायणदासजीका यह चरित अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णित किया है—

अल्ह ही के वंश मैं प्रसंस याहि जानि लेव, बड़ौ और भाई छोटौ श्रीनारायणदास है।
दीरघ कमाऊ लघु उपज्यो उड़ाऊ, भाभी दियौ सीरौ भोजन लै भयौ दुख रास है॥
'देवौ मोकों तातौ करि' बोली वह क्रोध भरि यहूँ जा हुङ्कारौ भरवावै कियो हास है।
गयौ गृह त्यागि हरि पागि कर्‌यौ वैसे ही जू, भक्ति बस स्याम कह्यौ प्रकट प्रकास है॥ ५३७॥

श्रीपृथ्वीराजजी

सवया गीत सलोक, बेलि दोहा गुन नवरस।
पिंगल काब्य प्रमान बिबिध बिधि गायो हरिजस॥
पर दुख बिदुख, सलाघ्य बचन रचना जु बिचारै।
अर्थ बित्त निर्मोल सबै सारँग उर धारै॥
रुक्मिनी लता बरनन अनुप बागीस बदन कल्यान सुव।
नरदेव उभय भाषा निपुन पृथीराज कबिराज हुव॥ १४०॥

श्रीकल्यानसिंहजीके सुपुत्र श्रीपृथ्वीराजजी संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओंमें काव्य रचनेमें बड़े निपुण हुए। आपके द्वारा रचित सवैया, गीत, श्लोक, वेलि, दोहा आदि विविध छन्दोंमें काव्योचित गुण, साहित्यके नौ रस पाये जाते हैं। आपने छन्दशास्त्रके सभी नियमोंका पालन करते हुए अनेक प्रकारसे हरियशका वर्णन किया। आप दूसरेको दुखी देखकर उसे सुखी करनेका उपाय करते थे। आपकी वचन-रचना विद्वानोंके द्वारा प्रशंसनीय है। आप काव्यके अर्थरूपी धनको अमूल्य मानकर उसे अपने हृदयमें उसी प्रकार धारण करते थे, जैसे भ्रमर

मकरन्दको। 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' नामक आपका काव्य अनुपम है। उसके पढ़नेसे ऐसा लगता है कि आपके कण्ठमें सरस्वतीका वास था॥ १४०॥

श्रीपृथ्वीराजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

राजस्थानके कृष्ण-भक्त रचनाकारोंमें बीकानेर राजवंशके राठौर पृथ्वीराजका अप्रतिम स्थान है। ये राव कल्याणमलके पुत्र और अकबरके दरबारके प्रसिद्ध नौ रत्नोंमें एक थे। इनका जन्म वि० सं० १६०६ की मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदाको हुआ था। ऐतिहासिक विवरणोंसे इनके द्वारा तीन विवाह करनेका उल्लेख मिलता है। पहली पत्नी जैसलमेरके रावल हरराजकी पुत्री लालांदे थी। लालांदेके निधनके बाद इन्होंने उनकी बहन चांपादेसे विवाह किया। इनके वंशज 'पृथ्वीराजोत बीका' कहलाते हैं।

उच्चकोटिके कवि होनेके साथ-साथ ये श्रीकृष्णके अनन्य भक्त तथा प्रसिद्ध योद्धा भी थे। वि० सं० १६३८ में काबुलमें तथा वि० सं० १६५३ में अहमदनगरके युद्धोंमें इनके द्वारा प्रदर्शित अद्भुत पराक्रमके कारण मुगल सम्राट्‌द्वारा इन्हें गागरोनगढ़का दुर्ग पुरस्कारस्वरूप प्रदान किया गया था। पृथ्वीराजके व्यक्तित्वकी सर्वाधिक उल्लेख्य विशेषता यह है कि अकबरके कृपापात्र तथा विश्वस्त सेनानायक होते हुए भी इन्होंने देशकी स्वाधीनताके लिये संघर्षरत कर्तव्यनिष्ठ वीरोंके कृत्योंकी मुक्त कण्ठसे सराहना की। शौर्य और स्वाभिमानके अग्रदूत महाराणा प्रतापद्वारा अकबरसे समझौता करनेके लिये पत्र लिखनेका समाचार पाकर मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके हितैषी इस देशभक्तका हृदय तिलमिला उठा। इन्होंने महाराणा प्रतापको तत्काल कतिपय दोहे लिखकर भिजवाये। इन दोहोंने महाराणा प्रतापके सुप्त स्वाभिमानको जाग्रत्‌कर जातीय गौरव तथा राष्ट्रके सम्मानकी रक्षा की। दोहे इस प्रकार हैं—

पातल जो 'पतसाह' बोले मुख हूँतां बयण।
मिहर पछम दिस माँह, उगै कासम राव उत॥
पहकूं मूँछा पाण के, पटकूँ निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक॥

अर्थात् हे प्रताप! यदि तुम अपने मुँहसे अकबरको 'बादशाह' कह दोगे तो मैं समझूँगा कि सूर्य पश्चिममें उगने लगा है। हे एकलिंग*के दीवान! दो बातोंमेंसे एक बात बताओ कि मैं अपने मूँछोंपर ताव दूँ या आत्महत्या कर लूँ।

बहुमुखी प्रतिभाके धनी पृथ्वीराज महान् भक्त, दार्शनिक और उच्चकोटिके कवि थे। समसामयिक भक्तों और कवियोंने इनकी प्रशस्तिमें अनेक पद, दोहे और कवित्त लिखे हैं। कर्नल टॉड और तेस्सीतोरी-जैसे विदेशी विद्वानोंने भी इनके अपूर्व शौर्य तथा भक्तिभावनाकी प्रशंसा की है।

अपने समयके प्रसिद्ध चारण दुरसा आढाने पृथ्वीराजरचित 'वेलि' को पाँचवाँ वेद बतलाया है—

रुकमणी गुण लखन रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करइ बखाण।
पाचमउ वेद भाखियऊ पीथल, पुणियउ डगणीसमउ पुराण॥

'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'गंगाजी रा दूहा' और प्रकीर्णक गीत। किंतु 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' ही इनकी सर्वाधिक लोकप्रिय कृति है। इसको डिंगल साहित्यकी अनुपम रचना कहना अतिशयोक्ति न होगी। मध्यकालीन भक्ति-साहित्यमें यह विशिष्ट स्थान रखती है।

---

* मेवाड़में एकलिंग भगवान् (शिवजी)-का एक अतिप्राचीन मन्दिर है, इन्हें मेवाड़का प्रधान अधिपति माना जाता है तथा मेवाड़के सभी शासक सदैव स्वयंको इनका दीवान मानकर ही राज-काज करते थे।

कुछ विद्वानोंकी मान्यता है कि व्रजभाषामें जो माधुर्य और अलंकरण शक्ति है, वह अन्य भाषाओंमें नहीं दिखायी देती। परंतु पृथ्वीराज राठौरकी 'वेलि' ने आलोचकोंके इस भ्रमको तोड़ते हुए सिद्ध कर दिखाया है कि डिंगल भाषामें वीररसके साथ शृंगार और भक्तिकी श्रेष्ठ साहित्य-सर्जनाकी अद्भुत शक्ति विद्यमान है।

'वेलि' तीन सौ पद्योंमें निर्मित वर्णनप्रधान, शृंगाररसात्मक रचना है, जिसमें श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका हरण और दोनोंके परिणय-सूत्रमें बँधनेकी घटनाका प्रभावपूर्ण भाषा-शैलीमें चित्रण हुआ है। इस भक्ति-ग्रन्थमें भावपक्ष और कलापक्ष अपने चरम उत्कर्षपर है। विषयानुकूल वर्णन, नादसौन्दर्य, दृश्य-मूर्तिमन्तता, शब्द-चयन, अलंकारोंकी अद्भुत छटा आदि विशेषताएँ 'वेलि' में सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं। इस कृतिकी लोकप्रियताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि संस्कृत, पिंगल तथा डिंगल भाषामें 'वेलि' की असंख्य टीकाएँ लिखी गयी हैं। इन टीकाकारोंमें जैन-धर्मावलम्बियोंकी संख्या सबसे अधिक है।

आकर्षक भाषा-शैली, सरस-वर्णन, अवसर एवं प्रसंगानुरूप शब्दोंका सटीक प्रयोग, भावोंकी गहराई आदि विशेषताओंने इस भक्ति-रचनाको अनुपम बना दिया है। भाव और भाषाके समायोजनके कारण वर्णित प्रसंग मूर्तिमन्त हो उठे हैं। उदाहरणके लिये रुक्मिणीकी यौवनावस्थाके रूप-सौन्दर्यका शब्दचित्र देखिये—

दल फूलि विमल वण, नयन कमल-दल, कोकिल-कंठ सुहाइ सर।
पांपणि-पंख सँवारि नवी परि, भ्रूंहारे भ्रमिया भ्रमर॥
आगलि पित मात रमंती आँगणि, काम विराम छिपाइन काज।
लाजवंती-अंगि एह लाज विधि, लाज करंती आवई लाज॥

भक्त कविने श्रीकृष्ण और शिशुपालकी सेनाओंके मध्य हुए युद्धका अत्यन्त चित्रोपम वर्णन किया है। भालेरूपी सूर्य-किरण युद्धमें सन्तप्त होकर चमचमाने लगे, बाण बन्द हो गये। शरीर-शरीरपर तलवारोंकी धारें चमक रही हैं, जिन्हें देखकर ऐसा लगता है, मानो शिखर-शिखरपर बिजलियाँ चमक रही हैं।

समर-क्षेत्रका एक शब्द-चित्र द्रष्टव्य है—

कलकलिया कुंत किरण कलि ऊकलि, वरजित विसिख विवरजित बाउ।
धड़ि धड़ि धड़कि धार धारुजल, सिहरि सिहरि समवड़ सिलाउ॥
जिणि दीध जनम जगि मुखि दे जीहा, क्रिसन जु पोखण-भरण करइ।
कहण तणउ तिण तणउ कीरतन, स्रम कीधाँ विन केम सरइ?

'जिन भगवान् श्रीकृष्णने जगत्में जन्म दिया है, जिन्होंने मुखमें जिह्वा दी है और जो कृष्ण लोकहितैषी एवं सबका पालन-पोषण करनेवाले हैं, उनकी कीर्तिका बिना परिश्रमके वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है?'

धायौ धावंतांह गरुडै ही माठौ गिणे। ग्रह उग्राहण ग्राह वारण वसदे-राव-उत॥

'हे राजा वसुदेवके पुत्र! हाथीको ग्राहकी पकड़से मुक्त करानेके लिये दौड़ते समय आप गरुड़को भी मन्दगामी समझकर पैदल ही दौड़ पड़े थे। फिर मेरी मुक्तिके लिये देर क्यों लगा रहे हैं?'

'वेलि' के अध्ययनसे स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज राठौड़ उच्चकोटिके भक्त और काव्यमर्मज्ञ होनेके साथ-साथ ज्योतिष, शकुन, वैद्यक, संगीत, नृत्य, नाट्य, योगशास्त्र, पुराण, दर्शन, राजनीति, कर्मकाण्ड, भाषा-शास्त्रप्रभृति विषयोंके भी जानकार थे। 'ठाकुरजी रा दूहा' २४० दोहेकी भक्ति-रचना है, जिसमें श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीरामका गुणगान किया गया है।

श्रीपृथ्वीराजजी बहुत बड़े भगवद्भक्त और महान् कवि थे। भगवान्की सेवामें आपको बड़ा भारी

प्रेम था और विषयोंसे ऐसा वैराग्य था कि मन्दिरमें आपने अपनी रानीको भी नहीं पहचाना। एकबार आप विदेश गये, वहाँ आपने मानसी-सेवाके निमित्त मनसे मन्दिरमें प्रवेश किया, परन्तु हृदयमें भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए। अब कैसे सेवा हो और बिना सेवा भोजन-पान आदि कैसे हो? इस प्रकार तीन दिन बीत गये और भगवान्‌के दर्शन मन्दिरमें नहीं हुए। चौथे दिन मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शन हुए, तब आपने उनकी मानसी-सेवा की और महान् सुखका अनुभव किया। पृथ्वीराजजीने पत्रमें यह सन्देश लिखकर अपने देशको भेजा कि तीन दिनतक मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए। वहाँसे जो उत्तर लिखकर आया, उसे पढ़कर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। पत्रमें लिखा था कि मन्दिरमें सफाई-पोताई एवं मरम्मतके लिये कारीगर लगे थे, इसलिये भगवान् तीन दिनतक दूसरी जगह विराजे थे। एक चरित्र और सुनिये—भगवत्प्रेममें तन्मय होकर राजा पृथ्वीराजने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने शरीरको मथुरापुरीमें छोड़ूँगा। (बादशाहके पूछनेपर आपने बताया कि आजसे छः महीने बाद मथुरामें यमुना तटपर सफेद कौवेको देखते हुए मेरी मृत्यु होगी।) यह जानकर परीक्षाके लिये बादशाहने उन्हें काबुलकी कठिन लड़ाईपर भेज दिया। आपमें महान् आत्मबल था, अतः आप कालके अधीन नहीं थे।

श्रीपृथ्वीराजजीको अपनी आयुका पता था, जब आपने देखा कि अब हमारी आयु थोड़े दिनोंकी है, तब आपको एक-एक क्षण कल्पके समान बीतने लगा। भगवान् इनकी प्रतिज्ञाको सत्य करना चाहते थे, अतः प्रभुने इन्हें बालकके रूपमें आकर भविष्यका ज्ञान करा दिया। राजाके अंग-प्रत्यंगमें भक्तिका भाव व्याप्त था। वे तत्काल सांडिनी (ऊँट)-पर सवार होकर चल दिये और मथुरापुरीमें आ गये। यहाँ आपने श्रीयमुनाजीमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा प्रदान की। इसके बाद आसन लगाकर बैठ गये। भगवान्‌का ध्यान करके उन्होंने शरीरको त्याग दिया। चारों ओर जय-जयकी ध्वनि फैल गयी। बादशाहने जब यह समाचार सुना तो बहुत प्रभावित हुआ और सदाके लिये आपके सुयशरूपी चन्द्रमाका चकोरकी तरह अनुरागी बन गया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीपृथ्वीराजजीके इन भक्तिमय चरित्रोंका इस प्रकार वर्णन किया है—

मारवार देस बीकानेर कौ नरेश बड़ौ, 'पृथीराज' नाम भक्तराज कविराज है।
सेवा अनुराग और विषय वैराग्य ऐसौ, रानी पहिचानी नांहिं मानों देखी आज है॥
गयौ हो बिदेश, तहाँ मानसी प्रवेस कियौ, हियौ नहिं छुवै कैसे सरै मन काज है।
बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर न दीठि परै पाछै हरि देखि, भयो सुख कौ समाज है॥ ५३८॥
'लिखिकै पठायौ देस, सुन्दर सन्देश यह 'मन्दिर न देखे हरि बीते दिन तीन हैं'।
लिख्यौ आयो सांच बांचि अति ही प्रसन्न भये लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रबीन हैं॥
सुनौ एक और यौं प्रतिज्ञा करी हिये धरि 'मथुरा सरीर त्याग करैं' रस लीन हैं।
पृथीपति आनि कै मुहीम दई काबुल की, बल अधिकाई, नहीं काल के अधीन हैं॥ ५३९॥
जीवन अवधि रहै निपट अलप दिन, कलप समान बीतै पल न विहात है।
आगम जनाय दियौ, चाहै इन्हैं सांचौ कियौ, लियौ भक्ति भाव जाके छायौ गात गात है॥
चल्यौ चढ़ि सांड़िनी पै लई मधुपुरी आनि, करिकै अस्नान प्रान तजे, सुनी बात है।
जै जै धुनि भई ब्यापि गई चहूँ ओर अहो, भूपति चकोर जस चन्द दिन रात है॥ ५४०॥

इनका देहावसान विक्रम संवत् १६५७ में हुआ था।

श्रीसींवाजी

असुर अजीज अनीति अगिनि मैं हरिपुर कीधौ।
साँगन सुत नै सादराय रनछौरै दीधौ॥
धरा धाम धन काज मरन बीजा हूँ माँड़ै।
कमधुज कुट कै हुवौ चौक चत्रभुजनी चाँड़ै॥
बाढ़ेल, बाढ कीवी कटक चाँद नाम चांड़ै सबल।
द्वारका देखि पालंटती अचढ़ सीवै कीधी अटल॥ १४१॥

एक बार अन्यायी म्लेच्छ अजीजखाँने द्वारकापुरीमें आग लगा दी। तब रणछोड़ श्रीद्वारकाधीशने सांगनके पुत्र सींवाको पुकारा। धरती, धन और धाम आदिके लिये सभी साधारण लोग लड़कर मर जाते हैं, परंतु इस वीर बाढ़ैलवंशी क्षत्रिय भक्तने चतुर्भुज श्रीद्वारकानाथके चौड़े-चौकमें यवनोंकी सेनाको विध्वंसकर अपने तन-मन और प्राणोंको न्यौछावर कर दिया। इस प्रकार राठौरवंशीय इस भक्तने अपने बाहुबलसे अपने पूर्वज चाँदके नामको उजागर किया और नष्ट होती हुई द्वारकापुरीकी तथा वहाँके निवासियोंकी रक्षा की एवं उसे सदाके लिये सुरक्षित कर दिया॥ १४१॥

श्रीसींवाजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसींवाजी भीलोंके राजा थे, परंतु स्वयं भील नहीं थे। ये राठौर क्षत्रिय थे। मारवाड़ राठौर राज्यकी स्थापना करनेवाले राव सीहाजीका तीसरा पुत्र अज था। उसने ओखा मण्डल (शंखोद्धार) द्वारकाके निकट एक प्रदेशपर अधिकारकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। अजके वंशज बाढ़ैल राठौर हैं, जो अब भी वहाँ हैं। श्रीसीवांजी उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए। द्वारकासे चार कोस दूरपर श्रीसींवाजीका निवास-स्थान था। ये वहाँसे नित्य दर्शन करने आते थे। दर्शन करना, प्रसाद लेना और परिक्रमा लगाना—यह आपका नित्य-नियम था। भगवान् इन्हें प्रिय थे तथा ये भगवान्‌को प्यारे थे, तभी तो संकटके समय भगवान्‌ने इनका स्मरण किया। स्वाभाविक है कि संकटमें प्रियकी याद आती है। जैसे अजामिलको संकटके समय अपने प्रिय पुत्र नारायणकी याद आयी, उसीको पुकारा।

बादशाहके सेनापति अजीजखाँका उद्देश्य था कि नगरको जलाकर मन्दिरको तोड़ दें। हिन्दू-धर्मके केन्द्रको नष्ट करके इस्लाम-धर्मका केन्द्र स्थापित कर दें। लोग भाग न सकें, इस विचारसे उसने रातको चारों ओरसे घेरकर आग लगायी। तब द्वारकाधीशने छतके ऊपर चढ़कर पुकारा। 'रक्षा कीजिये'—'यवनोंने पुरीमें आग लगा दिया है, सींवाजी! आकर मेरी रक्षा करो।' सींवाजीके कानमें ये शब्द पड़े तो इनकी मति भावमें डूब गयी। सर्वसमर्थ भगवान् सर्वदा भक्तोंकी रक्षा करनेवाले मुझे पुकारते हैं, यह मुझपर असीम वात्सल्य एवं दया है। अनेक पार्षद सेवामें उपस्थित हैं, उन्हें छोड़कर प्रभु मुझे आज्ञा दे रहे हैं। अपनी रक्षा करा रहे हैं। प्रेमाकुल सींवाजीने भी अपनी छतपर चढ़कर नगाड़ा बजाया। जिसे सुनते ही इनके सैनिक घुड़सवार आ गये। उन्हें लेकर द्वारका पहुँच गये। प्रभु-कृपा एवं आज्ञाकी शक्तिसे लगभग ५०० घुड़सवार वीरोंने कई हजार सशस्त्र यवन सैनिकोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

चाहते तो आप जीवित रह सकते थे, पर शुभ अवसर देखकर प्राणोंको न्यौछावर कर दिया। इसमें हेतु यह है कि श्रीसींवाजीने विचारा कि यदि मैं जीवित रहा, तो लोग कहेंगे कि 'इन्होंने पुरीकी रक्षा की, इन्हें श्रीद्वारकाधीशने पुकारा।' ऐसी बड़ाई मुझे बड़ा-भारी दुःख देनेवाली हो जायगी। एक प्रकारसे वह

मेरी भक्तिका उपहास होगा, अतः श्रीद्वारकाधाममें भगवान्‌की आज्ञासे भगवान्‌के लिये आज यदि मैं शरीर न त्यागूँ तो फिर ऐसा अवसर कभी हाथ आनेका नहीं है। जैसे *'समर मरन पुनि सुरसरि तीरा। राम काज छन भंगु सरीरा॥' 'बड़े भाग अस पाइय मीचू॥'* ऐसा विचारकर आपने प्राण न्यौछावर कर दिये। यह भी प्रसिद्ध है कि कटे हुए आपके धड़ने बचे-खुचे यवन सैनिकोंका संहार किया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीसींवाजीकी भक्ति, वीरता और बलिदानकी इस गाथाका इस प्रकार वर्णन किया है—

कावा पति, सींवा, सुत सांगन कौ, प्यारौ हरि, द्वारावति ईश, यों पुकारै रक्षा कीजिये।
सदा भगवान आप भक्त प्रतिपाल करैं करौ प्रतिपाल मेरौ सुनि मति भीजिये॥
तुरक अजीज नाम धाम कों लगाई आगि लई बाग घोरन की आये टूक कीजिये।
दुष्ट सब मारे प्रभु कष्ट ते उबारे निज प्रान वारि डारे यह नयौ रस पीजिये॥ ५४१॥

इस कथानकमें श्रीप्रियादासजी नये भक्तिरसका बोध कराकर उसके आस्वादनकी सम्मति देते हैं। पुराना भक्तिरस यह है कि भक्तकी आर्त पुकार सुनकर भगवान् शीघ्र प्रकट होते हैं अथवा स्वधामसे आते हैं और भक्तकी रक्षा करते हैं। गजेन्द्र, द्रौपदी आदि इसके असंख्य उदाहरण हैं। आज भगवान्‌ने पुकारा, भक्तने कष्टसे बचाया—यह नया रस है। भक्तोंको बड़ाई देनेके लिये तथा भक्त मेरे समान हैं, यह प्रमाणित करनेके लिये ही भगवान्‌ने ऐसी लीला दिखायी।

श्रीमती रत्नावतीजी

कथा कीरतन प्रीति भीर भक्तनि की भावै।
महामहोछौ मुदित नित्य नँदलाल लड़ावै॥
मुकुँद चरन चिंतवन भक्ति महिमा ध्वजधारी।
पति पर लोभ न कियो टेक अपनी नहिं टारी॥
भलपन सबै विसेवहीं आँबेर सदन सुनखा जिती।
पृथीराज नृप कुलबधू भक्त भूप रतनावती॥ १४२॥

जयपुरके निकट आमेरनगरमें निवास करनेवाली सुनखाजीतकी पुत्री रत्नावतीजीमें सब प्रकारकी भलाइयाँ विशेष रूपसे विद्यमान थीं। आप महान् भक्त राजा पृथ्वीराजके कुलकी वधू थीं तथा भक्तोंमें श्रेष्ठ थीं। भगवान्‌की कथा सुननेमें, कीर्तन करनेमें आपको बड़ा प्रेम था। भक्तोंकी भीड़ आपको अच्छी लगती थी। बड़े-बड़े महामहोत्सवोंको करके प्रसन्न होती थीं। नित्य नन्दलालजीको लाड़ लड़ाती थीं। भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंके चिन्तन (ध्यान)-में मगन रहकर आपने भगवद्भक्तिकी पताका फहरायी। भक्तिके आचरणमें बाधा करनेवाले पतिपर लोभ न करके उनसे अपने मनको हटा लिया और सन्त-भगवन्तकी भक्तिरूप अपना प्रण नहीं छोड़ा॥ १४२॥

रानी रत्नावतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) रानी रत्नावती और भगवद्भक्ता दासीका संवाद

आमेरके राजा मानसिंहजीके छोटे भाई थे माधोसिंहजी, उनकी रानी श्रीरत्नावतीजी थीं। इनके समीप सेवाके लिये एक दासी रहती थी। वह भगवद्भक्ता दासी कभी 'नवलकिशोर', कभी 'नन्दकिशोर' और कभी 'हा श्रीवृन्दावनचन्द्र' कहकर आँखोंमें पानी भर लेती थी।

एक दिन रानीने उस दासीसे पूछा—'तुम बार-बार क्या कहती रहती हो, किसका नाम लिया करती हो? उसे सुनकर मेरा हृदय भी उधर खिँचता है और मेरे मनमें आता है कि मैं भी इसी प्रकार नामका उच्चारण करूँ।' इस प्रश्नको सुनकर दासी विशेष विकल हो गयी, उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। दासीकी ऐसी दशा देखकर रानीकी भी वही दशा हो गयी। कुछ देर बाद स्वस्थचित्त होकर दासीने उत्तर दिया—'महारानी जू! आप इस बातको मत पूछिये। दिन-रात राजसुख भोगिये।' मेरी इस दशाका कारण यह है कि 'मुझपर एक प्रेमी सन्तकी कृपा हो गयी है, अतः प्रेम-वियोगके सुख-दुःखको मेरा शरीर सहन कर रहा है।' फिर रानीके विशेष आग्रहपर और उनकी उत्कण्ठाको देखकर दासीने प्रेम-मार्गके रहस्यका वर्णन किया। उसके समर्थनमें व्रजधामके रसिकशिरोमणि सन्तोंके चरित्र और उनके उपदेश सुनाये। उसका रानीके हृदयपर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि उसने दासीको उसकी सेवा-टहलसे छुड़ा दिया और आदरपूर्वक उसे अपनेसे ऊँचे आसनपर बैठाया। उस दासीको अपना गुरु मान लिया।

श्रीप्रियादासजी रानी रत्नावतीके इस भगवत्प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

मानसिंह राजा ताकौ छोटौ भाई माधौसिंह, ताकी जानौ तिया, जाकी बात लै बखानियै।
ढिग जो खवासिनि सों स्वासनि भरत नाम रटति जटित प्रेम रानी उर आनियै॥
नवल किशोर कभूं नन्द के किसोर कभूं वृन्दावन चन्द कहि आँखै भरि पानियै।
सुनत विकल भई सुनिबे की चाह भई रीति यह नई कछु प्रीति पहिचानियै॥ ५४२॥
बार बार कहै, कहा कहै उर गहै मेरौ, बहै दृग नीर हो, शरीर सुधि गई है।
पूछौ मत बात, सुख करौ दिन रात, यह सहै निज गात, रागी साधु कृपा भई है॥
अति उतकण्ठा देखि, कह्यौ सो बिसेस सब, रसिक नरेसनि की बानी कहि दई है।
टहल छुटाई, औ सिरहाने लै बैठाई वाहि, गुरु बुद्धि आई, यह जानौ रीति नई है॥ ५४३॥

(ख) दासीद्वारा रानीको भगवत्प्रेमकी रीति सिखाना

रानी श्रीरत्नावतीजी दासीके मुखसे भगवान्‌के सुन्दर रूप और गुणोंको सुनती रहतीं, इससे भगवान्‌के दर्शनोंकी अभिलाषा तीव्र हो उठी। फिर एक दिन रानीने दासीसे कहा—'आप कुछ उपाय कीजिये, मनमोहनके दर्शन करा दीजिये।' दासीने कहा—भगवान्‌के दर्शन पाना बहुत दूर अर्थात् कठिन है। उनके दर्शनके लिये राजा लोग राज्य सुखको छोड़कर, विरक्त होकर धूलिमें लोटते हैं, फिर भी छविसमुद्र भगवान्‌के दर्शन नहीं पाते हैं। वे तो केवल एकमात्र विशुद्ध प्रेमके वशमें हैं और उसीसे दर्शन देते हैं, अतः सच्चे प्रेमभावसे भगवान्‌की सेवा करो। विविध प्रकारके रसीले मेवा-मिष्टान्नोंका भोग लगाओ। तब वे अवश्य ही कृपा करेंगे।

रानी रत्नावतीजीने दासीके उपदेशानुसार इन्द्रनीलमणिकी एक श्रीमूर्ति बनवायी। भावके अनुसार भगवान् स्वयं अर्चा-विग्रहके रूपमें प्रकट हो गये। अतः उसमें अपार रूप-माधुरी आ गयी थी। रानी इस अर्चा-विग्रहकी सेवामें लग गयीं। विविध प्रकारके भोग-राग समर्पणकर भगवान्‌को बड़ा प्यार करती। अष्टयाम भगवान्‌की सेवामें उपस्थित रहती। भगवान्‌को शयन कराकर रातमें जब रानी शयन करती तो स्वप्नमें भगवान् सेवाको स्वीकार करते हुए दर्शन देकर उसे सुख देते। रानीपर गहरा प्रेमरंग चढ़ गया। नित्य ठाकुरजीका वस्त्र-आभूषणोंसे सुन्दर शृंगार करती। जिस शोभा-सागरका ओर-छोर नहीं है, उसे टकटकी लगाकर निहारती रहती।

रानी श्रीरत्नावतीजीके मनमें भगवान्‌के दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा थी। फिर भी दासीसे नित्य पूछती ही

रहती कि 'भगवान्के दर्शन पानेका क्या उपाय है?' यह सुनकर दासीने कहा—'आप महलके निकट ही एक सन्त-निवास बनवाइये और नगरसे बाहर सभी मार्गोंपर पहरेदारोंको बैठा दीजिये। उन्हें अच्छी प्रकार समझा दीजिये कि जो भी कोई भगवान्के प्यारे भक्त आते-जाते मिल जायँ, उन्हें अपने साथ आदरपूर्वक यहाँ लिवा लायें। फिर उनके श्रीचरणोंको धोकर उन्हें ठहरायें और अनेक प्रकारके मिष्ठान्न-पक्वान्न उनके सामने परोसकर उन्हें भोजन करायें। उस समय आप खिड़कीपर पड़े बाँसकी तीलियोंसे बने चिकके परदेके भीतरसे उन भक्तोंका दर्शन करें। तब वहाँ आपको श्यामसुन्दर प्रत्यक्ष दिखायी देंगे।'

श्रीप्रियादासजीने रानी रत्नावतीकी भगवद्दर्शनकी इस तीव्र उत्कण्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

निशि दिन सुन्यौ करै, देखिबे को अरबरै देखे कैसें जात जल जात दृग भरे हैं।
कछुक उपाय कीजै, मोहन दिखाय दीजै, तब ही तौ जीजै वे तो आनि उर अरे हैं॥
दरशन दूर, राज छोड़ै लौटैं धूर पै न पावैं छबि पूर, एक प्रेम बस करे हैं।
करौ हरि सेवा, भरि भाव धरि मेवा पकवान रसखान, दै बखान मन धरे हैं॥ ५४४॥
इन्द्रनीलमणि रूप प्रगट सरूप कियौ, लियौ वह भाव यों सुभाव मिलि चली है।
नाना विधि राग भोग लाड़कौ प्रयोग जामैं, जामिनी सुपन जोग भई रङ्ग रली है॥
करत सिंगार छबि सागर न पारावार रहत निहारि वाही माधुरी सों पली है।
कोटिक उपाय करै, जोग जज्ञ पार परै, ऐ पै नहीं पावै यह दूर प्रेम गली है॥ ५४५॥
देख्योई चहति तऊ कहति 'उपाय कहा? अहो, चाह बात कहौ कौन को सुनाइयै'।
कही जू बनावौ ढिग महलकै ठौर एक चौकी लै बैठावौ चहूँ ओर समुझाइयै॥
आवै हरि प्यारे तिन्हैं ल्यावैं वे लिवाय इहाँ, रहैं ते धुवाय पाँय रुचि उपजाइयै।
नाना बिधि पाक सामा आगै आनि धरें, आप डारि चिक देखौ, स्याम दृगन लखाइयै॥ ५४६॥

(ग) रानीका महल छोड़कर सन्तसेवापरायण होना

रानी श्रीरत्नावतीके महलके निकट सन्त-निवास बन गया और वहाँ भगवान्के प्यारे भक्तजन आने लगे। रानी उनकी सेवा करती और उनका दर्शन करती। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ। एक दिन वे सन्तगण पधारे, जिन्हें व्रजभूमि प्रिय थी, जो व्रजरसके रंगमें रँगे थे। रानीने दासीसे कहा—मैं इन सन्तोंके निकट जाकर इनका दर्शन एवं इनके श्रीचरणोंका स्पर्श करना चाहती हूँ। दासीने कहा—आप रानी हैं, अतः महलसे बाहर नहीं जा सकती हैं। रानीने कहा—रानीपनेको मैंने त्याग दिया है, अब मैं सन्तोंकी दासी हूँ। इतना कहते-कहते रानी उठकर चली ही थी कि दासीने हाथ पकड़कर रोक लिया। रानी बोली—अब मुझसे नहीं रहा जाता है। आप विचारकर यह बताइये कि कुलकी लज्जासे सत्संग न करके दुःख सहना या उसे त्यागकर सत्संग-सुख प्राप्त करना, क्या उचित है। मैं तो लोक-लज्जा और कुलकी मर्यादाको बिलकुल त्यागकर उसीका आहार (आस्वादन) करूँगी।

ऐसा कहकर दासीके रोकते-रोकते रानी राजमहलसे उतरकर वहाँ आ गयी, जहाँ सुखप्रद सन्त विराजमान थे। उसने उनके चरणोंमें लिपटकर प्रार्थना की—'भगवन्! अपने हाथोंसे परोसकर साधु-सन्तोंको प्रसाद पवानेकी बड़ी भारी अभिलाषा है।' सन्तोंने अच्छी प्रकारसे देख-सुनकर यह जान लिया कि रानी भक्त-भगवन्तके प्रेममें डूबी हुई है, अतः उन्होंने कहा—'जैसी तुम्हारे मनकी अभिलाषा है, वैसा करो। इससे कुछ भी हानि न होगी।'

तदनुसार साधु-सन्तोंकी अनुमति प्राप्तकर रानी रत्नावती सोनेके थालमें विविध प्रकारके व्यंजनोंको सजाकर बड़ी उमंगके साथ आयी। रानीने बड़े प्रेमके साथ परोसकर सन्तोंको भोजन कराया। भोजन कराकर

रानीने सबको चन्दन लगाया और ताम्बूल खिलाया। पुनः भगवच्चर्चा चलायी, सन्तोंके श्रीमुखसे भगवद्वार्ताको सुना। भक्त-भगवान्‌की रूप-माधुरीका दर्शनकर रानीके नेत्र सजल एवं सरस हो गये। उधर सम्पूर्ण आमेरनगरमें शोर मच गया कि रानी परदेसे बाहर निकलकर वैरागियोंके बीचमें आ गयी हैं। लोग देखनेके लिये उमड़ पड़े। राजाके मन्त्रीने यह समाचार लिखकर एक दूतद्वारा राजाके पास दिल्ली भेज दिया।

श्रीप्रियादासजीने रानीके इस सन्तप्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आवै हरिप्यारे साधु सेवा करि टारे दिन किहूँ पाँव धारे जिन्हैं व्रजभूमि प्यारियै।
जुगुल किशोर गावै नैननि बहावै नीर ह्वै गई अधीर रूप दृगनि निहारियै॥
पूछी वा खवासिन सों जू रानी कौन अङ्ग ? जाके इतनी अटक सङ्ग भङ्ग सुख भारियै।
चली उठि हाथ गह्यौ, रह्यौ नहीं जात, अहो सह्यो दुख लाज बड़ी तनक विचारियै॥ ५४७॥
'देख्यौं मैं विचारि 'हरिरूप रससार' ताकौ कीजिये अहार, लाज कानि नीकें टारियै'।
रोकत उतरि आई जहाँ साधु सुखदाई, आनि लपटाई पाँय, विनती लै धारियै॥
सन्तनि जिमायबे की निजकर अभिलाष, लाख लाख भाँतिन सों कैसे कै उचारियै।
आज्ञा जोई दीजै सोई कीजै, सुख वाही मैं, जु, 'प्रीति अवगाही कही' करौ लागी प्यारियै॥ ५४८॥
प्रेम में न नेम, हेम थार लै उमगि चली, चली दृगधार सो परोसि कै जिवाँये हैं।
भीजि गए साधु नेह सागर अगाध देखि, नैननि निमेख तजी, भये मन भाये हैं॥
चन्दन लगाय आनि बीरीऊ खवाय, स्याम चरचा चलाय चख रूप सरसाये हैं।
धूम परी गाँव, झूमि आये, सब देखिबे कों, देखि नृप पास लिखि मानस पठाये हैं॥ ५४९॥

(घ) राजाद्वारा रानी तथा पुत्रके सन्तप्रेमके प्रति रोष प्रकट करना

मन्त्रीके द्वारा लिखे गये पत्रको पढ़ते और दूतके मुखसे सारा हाल सुनते ही राजाके शरीरमें आग-सी लग गयी। संयोगवश इसी बीच रानी श्रीरत्नावतीके सुपुत्र रसिक श्रीप्रेमसिंहजी वहाँ आये। उनके मस्तकमें तिलक और गलेमें तुलसी कण्ठी-माला थी। उन्होंने राजाको प्रणाम किया। समीपके लोगोंने राजाको बताया कि राजकुमार श्रीप्रेमसिंहजी प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनकर राजाने प्रेमसिंहजीसे कहा—'आ रे वैरागिनके बेटा।' यह सुनकर इनके मनमें बड़ी पीड़ा हुई।

श्रीप्रेमसिंहको अपमानितकर क्रोधमें भरा हुआ राजा भीतर चला गया। इधर श्रीप्रेमसिंहके मनमें दुःख हो रहा था। समझमें नहीं आ रहा था कि राजाने ऐसा क्यों कहा। पीछे उन्होंने लोगोंसे पूछा तो उन्होंने आमेरसे आये पत्रका सब समाचार कह सुनाया। तब श्रीप्रेमसिंहजीने मनमें विचारा कि अहो! धन्य हैं, वैरागी ही हमारी जाति है। अपनी माताजीका स्मरणकर, प्रेम-भक्तिके भावोंको हृदयमें लाकर ये तन-मनसे सुखी हो गये। अपने निवास-स्थानपर आकर इन्होंने अपनी माताजीको पत्र लिखा कि 'यदि आपने अपने हृदयमें भगवद्-भक्ति धारण की है तो उसे छोड़ना मत। चाहे सिरकी बाजी लगाना पड़े तब भी। आप अपने प्राणोंका मोह छोड़कर भक्ति-भावकी रक्षा करना।' राजाने भरी सभामें मुझे 'मोड़ी—वैरागिनका बेटा' कहकर मेरा अपमान किया है। मैं चाहता हूँ कि अब मोड़ी—वैरागिनका बेटा ही रहूँ।'

श्रीप्रेमसिंहजीने पत्र लिखकर तीव्रगामी दूतोंके द्वारा माताजीके समीप भेज दिया। वे पत्र लेकर आमेर आये। रानीने उसे पढ़ा और उसमें (भक्तियुक्त) लिखे प्रसंगको पढ़ते ही इन्होंने इत्र-फुलेलसे भीगे अपने सिरके बालोंको मुड़वा दिया और मुण्डी—वैरागिन बन गयीं। इसके पहले ये सन्तोंको प्रसाद पवाकर उनके साथ सत्संगवार्ता करके रातको राजमहलोंमें जाकर रहती थीं। परंतु अब अपने श्रीठाकुरजीको सन्त-निवासमें

ही ले आयीं और वहीं उनकी सेवा-पूजा, नृत्य-गान करने लगीं। राजाका अन्न-धन लेना भी इन्होंने छोड़ दिया। इसके बाद अपने पुत्र प्रेमसिंहको पत्र लिख दिया कि 'मैं मूड़ मुड़वाकर सच्ची वैरागिन बन गयी हूँ और दिन-रात उन्हींके बीचमें रह रही हूँ।'

रानी श्रीरत्नावतीका पत्र लेकर दूत लोग गये और उन्होंने पत्र श्रीप्रेमसिंहजीको दिया। इन्होंने उसे सिरसे लगाया और पढ़कर प्रेमानन्दमें मग्न हो गये। आजसे भगवद्दासोंमें हमारी गिनती हो गयी। यह (दूसरा जन्म) मानकर मनमें उल्लास हुआ। बहुत-सी सम्पत्ति साधु-ब्राह्मण और दीनोंको बाँटी। द्वारपर नौबत बजवायी तथा बधाइयाँ बँटवायीं। किसीने राजासे कहा—'आज कुँवर प्रेमसिंहजीके यहाँ कोई उत्सव है।' राजाने कहा—'कौन-सा यह नया उत्सव हो रहा है, पता लगाओ।' तब राजाके लोगोंने इनसे आकर पूछा, तो इन्होंने उत्तर दिया कि अब हम सचमुच वैरागिनके बेटा बन गये। अबतक तो केवल स्वाँग किया था, पर हमारी बात बन गयी। माताजीने वैरागिनका वेष धारण कर लिया है।' यह बात जब राजाने सुनी तो उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ। क्रोधवश उन्होंने वैर-भावसे श्रीप्रेमसिंहपर चढ़ाई करके उनसे युद्धकी तैयारी कर ली। जब कुँवर श्रीप्रेमसिंहको यह बात मालूम पड़ी तो वे भी लड़ने—मरनेके लिये तैयार हो गये।

श्रीप्रियादासजीने रानी रत्नावती और कुँवर प्रेमसिंहके इस सन्तप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

ह्वै करि निसङ्क, रानी बङ्क गति लई नई, दई तजि लाज, बैठी मोड़नि की भीर मैं।
लिख्यौ लै दिवान नर आये, सो बखान कियो, बाँचि सुनि, आँच लागी नृपके शरीर मैं॥
'प्रेमसिंह' सुत, ताही काल सो रसाल आयौ, भाल पै तिलक, माल कण्ठी कण्ठ तीर मैं।
भूप को सलाम कियौ नरनि जताय दियौ, बोल्यौ आव मोड़ी के रे पर्‌यौ मन पीर मैं॥ ५५०॥
कोप भरि राजा गयौ भीतर सो, सोच नयौ, पाछे पूछि लयौ, कह्यौ नरनि बखानि कै।
तब तो बिचारी, 'अहो मोड़ा ही हमारी जाति' भयौ दुख गात, भक्ति भाव उर आनिकै॥
लिख्यौ पत्र मा जी कों, जु प्रीति हिये साजी जोपै सीस पर बाजी आय राखौ तजि प्रानि कै।
सभा मधि भूप कही 'मोड़ीको बिरूप भयौ' रहैं अब मोड़ीके ही भूलौ मति जानि कै॥ ५५१॥
लिख्यौ दै पठाये बेगि मानस, लै आये जहाँ रानी भक्ति सानी हाथ दई, पाती बाँचियै।
आयो चढ़ि रङ्ग, बाँचि सुत कौ प्रसंग, बार भीजै जे फुलेल, दूर किये, प्रेम साँचियै॥
आगे सेवा पाक निसि महल बसत जाय, ल्याय याही ठौर प्रभु नीके गाय नाँचियै।
नृप अन्न त्यागि दियौ, दियौ लिखि पत्र पुत्र, भई मोड़ी आज, तुम हित करि जाँचियै॥ ५५२॥
गए नर पत्र दियौ सीस सों लगाय लियौ, बाँचि कै मगन हियौ, रीझि बहु दई है।
नौबत बजाई द्वार बाँटत बधाई, काहू नृपति सुनाई कही 'कहा रीति नई है'॥
पूछै भूप लोग कह्यौ मिटे सब सोग भये मोड़ी के जू जोग स्वाँग कियो बनि गई है।
भूपति सुनत बात, अति दुख गात भयौ, लयौ बैर भाव चढ्यो त्यारी इत भई है॥ ५५३॥

(ङ) लोगोंके समझानेपर राजा तथा राजकुमारके युद्धका बन्द होना

पिता-पुत्रमें युद्धकी तैयारी देखकर हितैषी लोगोंने राजाको अच्छी तरहसे समझाया कि 'लड़केके साथ युद्ध करनेसे सारे विश्वमें आपकी निन्दा होगी।' बुद्धिमान् शुभचिन्तकोंने उधर श्रीप्रेमसिंहजीको भी यही कहकर समझाया। इन्होंने कहा—'लौकिक विषयोंके लिये मैंने अबतक करोड़ों जन्म गँवाये हैं, यह एक भगवान्‌की भक्तिके काम आये। मैं ऐसा ही चाहता हूँ, मुझे यही अच्छा लग रहा है।' श्रीप्रेमसिंहजीका ऐसा दृढ़ विचार सुनकर लोग इनके पैरोंमें पड़ गये और कहा—अभी कुछ समयके लिये

इन बाजोंका बजना बन्द करवा दीजिये। राजासाहब आज ही रातको आमेर चले जायेंगे। फिर आप खूब नौबत बजवायें। प्रेमसिंहने मान लिया। 'नौबत बन्द हो गयी' यह कहकर लोगोंने राजाको शान्त किया। राजा माधवसिंहजी दिल्लीसे चल दिये और आमेर आ गये। इनके नगरके निकट पहुँचते ही लोग आकर इनसे मिले और उन्होंने रानीका सब वृत्तान्त कह सुनाया। अब राजाके मनमें बड़ी चिन्ता हो गयी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नृप समझाय राख्यौ 'देश में चबाव ह्वै है, बुधिवन्त जन आय सुत सों जताई है।
बोल्यो 'विषै लागि कोटि कोटि तन खोये, एक भक्ति पर आवै काम यह मन आई है॥
पाँयपरि माँगि लई दई जो प्रसन्न तुम, राजा निसि चल्यो जाय करौ जिय भाई है।
आयौ निज पुर ढिग ढुरि नर मिले आनि कह्यौ सो बखानि सब, चिन्ता उपजाई है॥ ५५४॥

(च) राजाद्वारा रानीको मरवानेका षड्यन्त्र करना, पर उसके भक्तिभावसे स्वयं भी भगवद्भक्त बन जाना

राजाने राजमहलोंमें पहुँचकर अपने मन्त्रियोंको बुलवाया और कहा—'मेरी नाक तो कट ही गयी, वह अब जुड़ नहीं सकती है, परंतु उसमेंसे जो लगातार खून बह रहा है, उसको किसी प्रकार रोकिये।' किसी प्रकार रानीको मरवा डालना आवश्यक है। अतः आपलोग कोई ऐसा उपाय सोचिये कि रानी मर जाय और हत्याका कलंक भी न लगे। जब राजाने यह कहा तो किसी बुद्धिमान् (चापलूस) मन्त्रीने बहुत सोच-विचारकर एक उपाय बताते हुए कहा—अपने यहाँ पिंजड़ेमें जो सिंह बन्द है, उसे रानीके सामने छोड़ दिया जाय। वह रानीको मार डालेगा, तब फिर उसे पकड़वा लिया जायगा। इस मन्त्रणाको गुप्त रखा जाय और बादमें यह प्रचार कर दिया जायगा कि सिंह छूट गया और उसने रानीको मार डाला। यह उपाय सबको अच्छा लगा। लोगोंने यही किया, सिंहको छोड़ दिया। जब वह रानीकी ओर आया तो उसे देखकर दासीने कहा—देखो, श्रीनृसिंहजू आपकी ओर आ रहे हैं, दर्शन कीजिये।

जिस समय सिंह आया, उस समय अनुराग रंगमें भरी रानी भगवान्की सेवा कर रही थीं। श्रीनृसिंहजूका शुभागमन सुनकर रानीने दृष्टि घुमाकर उधर देखा। रानीने प्रेमभावसे पहचाना और उठकर उनका आदर करते हुए कहा—'अहो! धन्य है, आज मेरे बड़े भाग्य हैं, जो मेरे घरपर मुझे दर्शन देनेके लिये श्रीनृसिंहभगवान् पधारे हैं।' रानीकी सच्ची भावना थी, अतः भगवान्ने अपनी उसी नृसिंहरूपकी शोभाका दर्शन कराया। रानीने फूलोंकी माला पहनायी और सँवारकर तिलक लगाया, आरती की। उसके बाद सप्रेम दर्शन किया तो चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्रीनृसिंहजीकी शोभा अत्यन्त प्रिय लगी। रानीकी पूजा स्वीकार करके श्रीनृसिंहभगवान् रानीके घरसे निकले, मानो खम्भ फाड़कर बाहर निकले हों। तत्काल उन्होंने विमुखोंके समूहको मार डाला।

राजाको रानीका समाचार मिला, लोगोंने बताया कि रानीने सिंहका पूजन किया, शान्त-भावसे पूजन स्वीकारकर वह वहाँसे निकला और सैकड़ों लोगोंको मारकर जाने कहाँ चला गया! राजाने सब बातें ध्यानपूर्वक सुनीं, फिर वह अत्यन्त नम्र होकर रानीके पास आया। रानीकी भक्तिके प्रभावसे राजाकी बुद्धि बदल गयी, अतः भूमिपर पड़कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। इन्हें प्रणाम करते देखकर दासीके मनमें दया भर गयी और उसने रानीको सुनाकर कहा—'देखो, महाराज प्रणाम कर रहे हैं।' रानीने कहा—ठीक है, राजा लालजीको प्रणाम कर रहे हैं।' फिर दासीने आग्रह करते हुए कहा—'आप थोड़ा राजाकी ओर

घूमकर देखें।' रानीने कहा—'ये आँखें एक ओर लगी हैं, अब दूसरी ओर नहीं जा सकतीं।' राजाने कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य और धन आपका ही है, आप इसे स्वीकारकर सेवामें लें।' अब रानीको पतिमें या उनकी सम्पत्तिमें लोभ नहीं रह गया था। अत: उसने कहा—'राज्यसुखको आप भोगें, हमारी सम्पत्ति और सुख हमारे लालजी हैं, अब ये ही हमको प्रिय लगते हैं।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भवन प्रवेश कियो, मन्त्री जो बुलाय लियौ, दियौ कहि 'कटी नाक लोहू निरवारियै।
मारिबौ कलंक हू न आवै' यों सुनावै भूप काहू बुधिवन्त नै बिचारि लै उचारियै॥
'नाहर जू पींजरा मैं दीजै छाड़ि लीजै मारि पाछै ते पकरि वह बात दाबि डारियै।
सबनि सुहाई, जाय करी मन, भाई आयौ, देख्यौ वा खवासी कही 'सिंहजू निहारियै'॥ ५५५॥
करै हरि सेवा भरि रंग अनुराग दृग, सुनी यह बात नेकु नैन उन टारे हैं।
भाव ही सों जाने उठि अति सनमाने, अहो! आज मेरे भाग, श्रीनृसिंह जू पधारे हैं॥
भावना सचाई वही शोभा लै दिखाई फूल माल पहिराई, रचि टीकौ लागै प्यारे हैं।
भौन ते निकसि धाए, मानौ खम्भ फारि आये, बिमुख समूह ततकाल मारि डारे हैं॥ ५५६॥
भूप कौं खबरि भई, रानी जू की सुधि लई, सुनी नीकी भाँति, आप नम्र ह्वैके आये हैं।
भूमि पर साष्टाङ्ग करी, हरी मति भई दया आप आय वाके वचन सुनाये हैं॥
'करत प्रनाम राजा' बोली 'अजू लालजू कौं' नैकु फिरि देखौ एक ओर ए लगाये हैं।
बोल्यो नृप 'राज धन सबहीं तिहारो धारौ' पति पै न लोभ कही 'करौ सुख भाये हैं'॥ ५५७॥

(छ) रानीकी भक्तिके प्रभावसे राजा मानसिंह तथा भाई माधवसिंहका संकटसे उद्धार

एक बार राजा मानसिंहजी और माधवसिंहजी दोनों भाई काबुलकी लड़ाईमें विजय प्राप्त करके लौटते समय अटक नदीमें नावपर चढ़कर यात्रा कर रहे थे। दैववश नाव डूबने लगी। बड़े भाई मानसिंहजीने अपने छोटे भाई माधवसिंहजीसे कहा—'अब बचनेका कौन-सा उपाय किया जाय?' माधवसिंहजीने कहा—'अपने घरमें रानी भगवान्‌की बड़ी भक्ता हैं, ऐसे समयमें उन्हींका स्मरण किया जाय।' फिर दोनों भाइयोंने रानी श्रीरत्नावतीका ध्यान किया। उसका ऐसा अद्‌भुत प्रभाव हुआ कि नाव संकटसे बचकर किनारेपर लग गयी। इससे दोनों भाइयोंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। मानसिंहके मनमें नई अभिलाषा उत्पन्न हुई कि 'भक्ता रानीका दर्शन प्रथम करना चाहिये।' तदनुसार भाई समेत मानसिंहजीने आकर रानीका एवं उनके श्रीठाकुरजीका दर्शन किया और विनती की।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

राजा 'मानसिंह' 'माधौसिंह' उभै भाई चढ़े, नाव पर कहूँ, तहाँ बूड़िबे कों भई है।
बोल्यौ बड़ौ भ्राता 'अब कीजिये जतन कौन? भौन तिया भक्त' कहि छोटे सुधि दई है॥
नेकु ध्यान कियौ, तब आनिकै किनारौ लियौ, हियौ हुलसायौ, जेठ चाह नई लई है।
कर्‌यौ आय दरसन बिनै करि गयौ भूप अति ही अनूप कथा हिये व्यापि गई है॥ ५५८॥

श्रीजगन्नाथ पारीखजी

(श्री) रामानुज की रीति प्रीति पन हिरदैं धार्‌यो।
संसकार सम तत्त्व हंस ज्यों बुद्धि बिचार्‌यो॥

सदाचार मुनिबृति इन्दिरा पधति उजागर।
रामदास सुत संत अननि दसधा को आगर॥
पुरुषोत्तम परसाद तें उभै अंग पहिर्‌यो बरम।
पारीष प्रसिध कुल काँथड़्या जगन्नाथ सीवाँ धरम॥ १४३॥

परम प्रसिद्ध कांथड़्यागोत्रमें श्रीरामदासजीके पुत्र श्रीजगन्नाथ पारीखजी वैष्णवधर्मकी सीमा थे। श्रीरामानुजाचार्यजीके द्वारा संस्थापित भक्तिकी रीतिके अनुसार आपने भगवान्‌से प्रेम करनेके शरणागतिव्रतको दृढ़तापूर्वक अपने हृदयमें धारण किया। आप वैष्णवीय संस्कारोंसे युक्त थे। नीर-क्षीर-विवेकी हंसकी तरह समान रूपसे व्याप्त भगवत्तत्त्वको आपने अपनी बुद्धिमें धारण किया। आपका सात्त्विक स्वभाव एवं आचार-विचार मुनियोंका-सा था, आप लक्ष्मी-सम्प्रदायमें चमकते हुए प्रसिद्ध सन्त थे और प्रेमाभक्तिके अनन्य उपासक थे। गुरुदेव श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजीकी कृपासे आपने स्थूल शरीरपर (राजपुरोहित होनेके कारण राजाके साथ युद्धमें) लोहेका कवच और (पुरोहिती छोड़कर) भावशरीरपर भगवान्‌की भक्तिका कवच धारण किया। इस प्रकार आपके दोनों शरीर सदा सुरक्षित रहे, अतः वैष्णवधर्मकी सभी मर्यादाओंका पालन करनेमें आप समर्थ हुए॥ १४३॥

श्रीजगन्नाथ पारीखजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीजगन्नाथ पारीखजी कांथड़्यागोत्रीय ब्राह्मण थे। आपके पिताका नाम श्रीरामदास था। परम भक्तिमती श्रीकरमैतीजीका जन्म इन्हींके गोत्रमें हुआ था। भक्तदामगुणचित्रणीके तीन कवित्तोंमें श्रीपारीखजीके दो चरित्रोंका उल्लेख है—

किसी स्थानपर पाँच-सात ब्राह्मण भगवान् श्रीरामजीके उपासक थे, वे अपनी उपासनामें तल्लीन थे। इसी बीच एक घोर शाक्त वहाँ आ पहुँचा और उसने वैष्णवीय उपासनाका खण्डन कर दिया। वे ब्राह्मण उससे शास्त्रार्थ नहीं कर पाये। इसी समय दैवयोगसे श्रीजगन्नाथजी पारीख वहाँ पहुँच गये। उन्होंने उससे शास्त्रार्थ करके उसे हरा दिया और श्रीरामोपासनाका समर्थन किया। इससे वे ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए, परंतु उस शाक्तको बहुत बुरा लगा। तब उसने मारण-शक्तिका प्रयोग किया, परंतु इनके ऊपर कुछ भी प्रभाव उसका नहीं हुआ। उलटे उस मारण-प्रयोगसे वह स्वयं मरने लगा, तब श्रीपारीखजीको दया आ गयी। उन्होंने उस शाक्तकी रक्षा की। इससे प्रभावित होकर उस शाक्तने इनकी शरण ग्रहण की और राम-भक्त बन गया।

एक बार आप कहीं जा रहे थे, मार्गमें आपको कई ठग मिले और उन्होंने आपको लूटने-मारनेका प्रयास किया। परंतु आपका शरीर तो दिव्य कवचसे सुरक्षित था अतः कुछ भी असर न हुआ। आपको यह भी पता न था कि हमारी गर्दनपर किसीने तलवार मारी है। जब तलवारोंके घावसे गर्दन नहीं कटी। कष्ट भी नहीं हुआ। तब वे समझ गये कि ये कोई दिव्य मनुष्य हैं, अतः श्रीपारीखजीके चरणोंमें पड़कर क्षमा-प्रार्थना करने लगे। इन्होंने कहा कि हमारा कुछ भी आपने नहीं बिगाड़ा है। हम क्यों नाराज होंगे। इनकी इस मुनिवृत्तिको देखकर सभी दस्यु इनके शिष्य बन गये। चोरी आदिका उन्होंने त्याग कर दिया। इस प्रकार श्रीपारीखजी कुपात्रोंको भी सुपात्र बनानेवाले हुए।

श्रीमथुरादासजी

सदाचार संतोष सुहृद सुठि सील सुभासै।
हस्तक दीपक उदय मेटि तम बस्तु प्रकासै॥

हरि को हियँ बिस्वास नंदनंदन बल भारी।
कृष्न कलस सों नेम जगत जानै सिर धारी॥
(श्री) बर्द्धमान गुरु बचन रति सो संग्रह नहिं छंडयो।
कीरतन करत कर सपने हूँ मथुरादास न मंडयो॥ १४४॥

श्रीमथुरादासजी सर्वदा भगवन्नामका कीर्तन करते रहते थे। इसलिये इनके ऊपर तान्त्रिकोंके मारण-मोहन आदि प्रयोग नहीं चले। आपमें शुद्ध आचार, यथालाभ-संतोष, मैत्रीभाव, सुन्दर शील आदि सभी सद्गुण विशेषरूपसे प्रकाशित थे। जिस प्रकार हाथके दीपकसे अन्धकार मिट जाता है और वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं, उसी प्रकार भगवत्तत्त्व-ज्ञानके द्वारा आपका हृदय प्रकाशित था। आपके हृदयमें प्रभुका विश्वास था और उन्हींका बल था। सभी लोग जानते हैं कि श्रीकृष्णकी सेवाके निमित्त जलका घड़ा आप अपने सिरपर रखकर बड़े नेम और प्रेमसे लाते थे। आपको अपने गुरुदेव श्रीवर्धमानजीके वचनोंमें बड़ा प्रेम था। आप उनके उपदेशोंका संग्रह एवं पालन करते थे। आपने गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन कभी नहीं किया॥ १४४॥

श्रीमथुरादासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमथुरादासजीने तिजारे ग्राममें निवास करते हुए भगवद्-भक्तिपूर्वक खूब आराधना की और प्रजामें भक्तिका प्रचुर प्रचार-प्रसार किया। एक बार तिजारे ग्राममें साधु-वेषधारी एक जादूगर आया। वह सबको दिखाकर भगवान् शालग्रामकी सेवा करता था। विशेष बात यह थी कि उसके शालग्रामजी सिंहासनपर (कठपुतलीकी तरह) हिलते-डोलते रहते थे। इस चमत्कारको देखनेके लिये जनताकी भीड़ एकत्र हो जाती थी। वहाँ जो श्रीमथुरादासजीके शिष्य-सेवक थे, उनके मनमें भाव आया कि ये बड़े भारी सिद्ध सन्त हैं, तभी तो भगवान् इनके अधीन हैं। उन लोगोंने इस प्रभावका वर्णन श्रीमथुरादासजीके सामने किया और कहा कि उस सन्तकी सेवा सभीको अच्छी लगती है। कुछ समयके लिये आप भी चलिये और उसकी उपासनाकी रीति-भाँति देखिये। श्रीमथुरादासजी सर्वज्ञ थे। जादूगर ढोंगी है, भक्त नहीं है, इस रहस्यको समझकर बोले—मेरे चलनेसे उसकी माया नहीं चलेगी, तब उसके मनमें दुःख हो जायगा, अतः हम वहाँ नहीं जायँगे।

सभी शिष्य-सेवकोंने चरणोंमें पड़कर प्रार्थना की। तब आप वहाँ गये, जहाँ उसने अपना ढोंग फैला रखा था। ये जाकर उसके पास खड़े हो गये। फिर जब उसने शालग्रामजीको हिलाना-डुलाना चाहा तो वे नहीं हिले-डोले। अब उसके मनमें बड़ा भारी शोक हुआ। वह समझ गया कि अभी-अभी जो यह साधु आया है। इसीका यह प्रताप है। हमारी सिद्धाईमें यह बाधक है, अतः तन्त्र-मन्त्र-जप आदि करके इसे मार डालूँ। इस विचारको उसने अपने मनमें दृढ़ किया। फिर उसने इन्हें मारनेके लिये मूठ चलायी। वह श्रीमथुरादासजीकी भक्तिके सामने आकर व्यर्थ हो गयी। उलटकर उस चलानेवालेको ही लगी, जिससे मूर्च्छित होकर वह पृथ्वीपर गिर गया। लोगोंको ऐसा लगा कि यह मर गया। पश्चात् दयालु सन्त श्रीमथुरादासजीने दया करके उसे जीवित किया। फिर समझाया और उसे सेवारूपी भक्ति-मार्गका उपदेश दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बासकै 'तिजारे' माँझ भक्ति रस रास करी, करी एक बात, ताकौ प्रगट सुनाइयै।
आयौ भेषधारी कोऊ करै सालग्राम सेवा, डोलत सिंहासन पै आनि भीर छाइयै॥

स्वामीके जु शिष्य भयौ, तिनहूँ कै भाव देखि, वाहि कौ प्रभाव आय कह्यौ हिय भाइयै।
नेकु आप चलौ, उह रीति कों बिलोकियै जु, बड़े सरवज्ञ, कही 'दूखै नहीं जाइयै'॥ ५५९॥
पाँय परि, गये लैकै, जाय ढिग ठाढ़े भये, चाहत फिरायौ, पै न फिरै सोच पर्‌यौ है।
जानि गयौ आप, कछु याही कौ प्रताप, ऐ पे मारौं करि जाप यों विचार मन धर्‌यौ है॥
मूठ लै चलाई, भक्ति तेज आगे आई नाहिं, वाही लपटाई, भयौ ऐसौ मानौ मर्‌यौ है।
ह्वै करि दयाल, जा जिवायौ, समझायो प्रीति पन्थ दरसायौ, हिय भायौ, शिष्य कर्‌यौ है॥ ५६०॥

श्रीनारायणदासजी नर्तक

पद लीनो परसिद्ध प्रीति जामें दृढ़ नातो।
अच्छर तनमय भयो मदनमोहन रँग रातो॥
नाचत सब कोउ आहि काहि पै यह बनि आवै।
चित्र लिखित सो रह्यो त्रिभँग देसी जु दिखावै॥
हँड़िया सराय देखत दुनी हरिपुर पदवी को कढ़्यो।
नृतक नरायनदास को, प्रेमपुंज आगे बढ़्यो॥ १४५॥

श्रीनारायणदासजी नर्तकका प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाला था। एक बार आपने वह प्रसिद्ध पद गाकर नृत्य किया, जिसमें 'प्रीतिका नाता ही दृढ़ माना गया है।' गाते-गाते उस पदके शब्दों-अक्षरों और भावोंमें आप तल्लीन हो गये। *'मदनमोहन रँग रातो'* इसे गाते हुए स्वयं भी मदनमोहनके प्रेमरंगमें रँग गये। इस संसारमें नाचते-गाते तो सभी लोग हैं, परंतु ऐसा नाचना-गाना और ऐसी भाव-तन्मयता किसमें बन सकती है? उस तन्मयतामें आप चित्रलिखितकी भाँति स्तब्ध रह गये। श्रीकृष्णने दर्शन दिया। प्रयागसे पूर्व लगभग छः कोसकी दूरीपर हँड़ियासराय नामक गाँवमें लोगोंके देखते-देखते आप वैकुण्ठपदपर पहुँच गये॥ १४५॥

श्रीनारायणदासजी नर्तकके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनारायणदासजीका यह दृढ़ नियम था कि वे भगवान्‌के सामने ही नृत्य-गान करते थे, दूसरे किसी मनुष्यके सामने नहीं। इस व्रतको हृदयमें धारणकर भक्तिके प्रचार एवं सन्तोंके दर्शनके लिये देश-देशान्तरोंमें जहाँ-जहाँ भक्तसमूह होता, वहाँ-वहाँ आप जाते। एक बार विचरते हुए आप हँड़ियासराय गये और वहींपर आपने निवास किया। श्रीठाकुरजीके सामने नित्य ही नृत्य-कीर्तन करते। कुछ समयके बाद आपके नृत्य-कीर्तनकी प्रशंसा सभी लोग करने लगे। उसे सुनकर वहाँके यवनशासक मीरने आपको यह कहकर बुलवाया कि हमारे यहाँ बड़े-बड़े महापुरुष, भगवद्भक्तजन आये हैं, आप भी आइये। गुणी लोगोंसे मिलनेकी मेरे मनमें बड़ी इच्छा रहती है। उनके न मिलनेसे मनमें दुःख होता है। जब यह सन्देश लोगोंके द्वारा आपको मिला तो उसे सुनकर आपको बड़ी कठिनाई हुई। लोगोंने समझाते हुए कहा कि 'जैसी आपकी इच्छा हो, वही कीजिये, परंतु मीर साहब आपके नृत्य-कीर्तनको देखने-सुननेके लिये बड़े व्याकुल हो रहे हैं।'

श्रीनारायणदासजी अपने मनमें विचार करने लगे कि मेरा नियम भगवान्‌के आगे नृत्य करनेका है, बिना भगवान्‌को पधराये नृत्य कैसे करूँगा? यवनोंके सामने अपने पूज्य श्रीअर्चा-विग्रहकी सेवाका विस्तार कैसे करूँगा? इस प्रकार सोचते-विचारते आपने एक मार्ग निकाल लिया और मीर साहबके दरबारमें गये।

वहाँ एक ऊँचे सिंहासनपर आपने एक श्रीतुलसीजीकी मालाको विराजमान कर दिया। श्रीतुलसीजी भगवान्‌का अभिन्न रूप है, ऐसा मानकर आपने उन्हींके सामने बड़ा उत्तम नृत्य किया। एक ओर मीर साहब बैठे थे, उनकी ओर आपने एक दृष्टिसे भी नहीं देखा। सिंहासनपर विराजमान तुलसी-श्यामकी ओर ही देखते हुए उनकी किशोररूप-माधुरीमें मग्न हो गये। अपने शरीरकी सुधि-बुधि खो बैठे। आपने रीझकर विचार किया कि कुछ न्यौछावर करूँ। कोई वस्तु नहीं दिखायी पड़ी, अचानक अपने प्राण ही हाथ पड़े। आपने उन्हें ही न्यौछावर कर दिया। आदरपूर्वक भगवान्‌ने इस भेंटको स्वीकार किया।

श्रीप्रियादासजी श्रीनारायणदासजीकी इस नियम-निष्ठाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

हरि ही कें आगे नृत्य करै, हिये धरै यही, ढरै देश देसनि मैं जहाँ भक्त भीर है।
'हँड़िया सराय' मध्य जाइकै निवास लियौ, लियौ सुनि नाम सो मलेछ ज्ञाति मीर है॥
बोलिकै पठाये, महाजन हरिजन सबै आयौ है सदन गुनी ल्यावौ चाह पीर है।
आनिकै सुनाई, भई बड़ी कठिनाई, अब कीजै जोई भाई वह निपट अधीर है॥ ५६१॥
बिना प्रभु आगें नृत्य करियै न नेम यहै, सेवा वाके आगें कहौ कैसे बिसतारियै।
कियो यों बिचार ऊँचे सिंहासन माला धारि तुलसी निहारि हरिगान कर्‌यौ भारियै॥
एक ओर बैठ्यौ मीर, निरखैं न कोर दृग, मगन किशोर रूप, सुनि लै विसारियै।
चाहै कछु वारौ परे औचक ही प्रान हाथ, रीझि सनमान कीनौ मीच लागी प्यारियै॥ ५६२॥

श्रीभूरिदा भक्तगण

बोहित राम गुपाल कुँवरबर गोबिंद माँडिल।
छीतस्वामि जसवंत गदाधर अनँतानँद भल॥
हरिनाभा मिश्र दीनदास बछपाल कन्हर जस गायन।
गोसू रामदास नारद स्याम पुनि हरिनारायन॥
कृष्नजिवन भगवान जन स्यामदास बिहारी अमृतदा।
गुन गन बिसद गुपाल के एते जन भए भूरिदा॥ १४६॥

अपने उपदेशोंके द्वारा भगवान्‌के विशद गुणगणोंका महान् दान देनेवाले ये भक्त हुए। श्रीबोहितजी, रामगोपालजी, कुँवरवरजी, गोविन्दजी, माँडिलजी, छीतस्वामीजी, यशवन्तजी, गदाधरजी, अनन्तानन्दजी, हरिनाभमिश्रजी, दीनदासजी, बच्छपालजी, कन्हरजी, गोसूजी, रामदासजी, नारदजी, श्यामजी, हरिनारायणजी, कृष्णजीवनजी, जन भगवानजी, श्यामदासजी और बिहारीदासजी। ये भगवत्-सुयशके गायक परम मधुर प्रेमरूपी अमृतके दाता हुए॥ १४६॥

भगवत्-यशका गान करनेवाले इन भक्तोंमेंसे कुछका परिचय इस प्रकार है—

श्रीबोहितजी

श्रीबोहितजी सांसारिक प्राणियोंको भगवद्भक्तिका दान देनेवाले थे। आप अपने आश्रममें निवास करते हुए सदा भगवान्‌के गुणोंका गान किया करते थे। प्रेमीभक्त सुनकर कृतार्थ होते। इस प्रकार ये भवसागरसे पार करनेवाले बोहित—जहाज ही थे। आश्रमके निकट एक भूतका निवास था। वह भी दूरसे कथा-श्रवण करता। एक बार चाँदनी रातमें आश्रमके समीप बहुतसे ग्रामीण बालक खेल रहे थे। भूत भी आकर उनके

साथ खेलने लगा। आपने सभी बालकोंको आज्ञा दी कि अब खेल बन्द करके यहाँ मेरे पास आकर नाम-संकीर्तन करो। आज्ञा पाकर सभी बालक आपके समीप आ गये। परंतु एक दूर ही खड़ा रहा। श्रीबोहितजीके बुलानेपर भी नहीं आया। तब आपने बालकोंको आज्ञा दी कि इसे पकड़कर लाओ। बालक पकड़ने गये, पर वह पकड़में आता ही नहीं। कई बालकोंके मिलकर पकड़नेपर भी वह छूट जाता। अलग खड़ा दिखायी पड़ता। अन्तमें आपने आज्ञा दी कि इसकी चोटी पकड़ लो, फिर नहीं छूट सकेगा—ऐसा ही हुआ। समीप आनेपर आपने उससे पूछा कि बता, तू कौन है? उसने कहा—मैं पूर्वजन्ममें राजपूत था, कुसंगके कारण मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, अतः जुआ, चोरी आदि कुकर्मोंकी मुझे आदत पड़ गयी। मैंने अपनी निरपराधिनी, सुशीला पत्नीका वध कर डाला था, उसी पापके फलस्वरूप मुझे प्रेतयोनि मिली। किंचित् अनिच्छासे कथा-श्रवणका यह उत्तम फल मुझे मिला कि आपके आश्रमके निकट रह रहा हूँ और आपके द्वारा कही गयी कथाको सुन रहा हूँ। अब आप कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये। मैं कभी किसीको सताता नहीं हूँ, आपकी शरण हूँ। उसकी दीनताभरी वाणी सुनकर आपने उसके कानमें भगवन्नाम सुनाया और चरणामृत दिया। वह मुक्त हो गया, आकाशमें उज्ज्वल प्रकाश छा गया, सभीको श्रीबोहितजीकी दानशीलता एवं शक्तिका परिचय मिल गया। आपका प्रधान स्थान मकरापुरा, करनाल (पंजाब)-में है। वहीं परमधामवास हुआ। वहाँपर आपकी समाधि बनी है।

श्रीहरिनाभ मिश्र

ये परम सुशील, सदाचारी, साधुसेवी एवं सच्चे उपदेशक थे। जिस समय आप भगवान्‌की कथा कहते, उस समय श्रोताओंको देह-गेहका स्मरण नहीं रहता। आपके उपदेशामृतसे अनन्त जीवोंका कल्याण होता। एक ब्राह्मण आपका शिष्य था। उसने आकर प्रार्थना की—भगवन्! मेरा एक पुत्र कुसंगमें पड़ गया है, इसलिये वह कुकर्मी हो गया है। सभी कर्म-धर्म एवं देवोंकी निन्दा करता है, इनमें उसकी थोड़ी भी श्रद्धा नहीं है। मेरे समझानेसे भी नहीं मानता है। आप कृपा करके कोई उपाय बताइये, जिससे उसका उद्धार हो। श्रीमिश्रजीने कहा—उसे मेरे पास भेजा करो, यहाँ आयगा तो उसे सत्संग मिलेगा। मैं समझा-बुझाकर उसे ठीक कर दूँगा। ब्राह्मणने आकर पुत्रसे कहा—तू गुरुजीके पास नित्य जाया कर, उससे तेरी बुद्धि शुद्ध हो जायगी। उसने पिताकी बात न मानकर उनका तिरस्कार किया। उसे सत्संगमें जानेमें चिढ़ थी। ब्राह्मणने आकर सब समाचार गुरुजीको सुनाया। तब इन्होंने कहा—तुम चिन्ता मत करो, अब मैं ही कोई-न-कोई उपाय करूँगा।

संयोगवश एक दिन जब उस ब्राह्मणका पुत्र इनके आश्रमके समीप होकर निकला तो इन्होंने थोड़ा-सा जल उसके ऊपर डाल दिया। कृपापूर्ण जलका स्पर्श पाते ही उसके पाप नष्ट हो गये, उसके विचार बदल गये, बुद्धि निर्मल हो गयी, अतः नित्य सत्संगमें आने लगा। धीरे-धीरे श्रीमिश्रजीकी रसमयी कथाको सुननेकी आदत पड़ गयी। अब तो वह कुसंग और दुराचारसे बहुत दूर रहने लगा। अब कथा-सत्संगके बिना उससे रहा नहीं जाता। वह विष्णुभगवान्‌का अनन्य उपासक बन गया।

श्रीबच्छपालजी

आप परम भगवद् भक्त थे। आपने अपने भजनके प्रतापसे असंख्य जीवोंका कल्याण किया। आपकी माताजीको कालज्वर आया। यमके दूत उसे डराने और ले जानेकी तैयारी करने लगे। माताको बड़े कष्टका अनुभव हो रहा था। उनको शरीरकी सुध नहीं रही, कण्ठ अवरुद्ध हो गया। श्रीबच्छपालजी घरपर नहीं थे। शहरसे आकर उन्होंने माताका कष्ट देखा तो वहीं भगवान्‌की कथा और नामोंका गायन आरम्भ कर

दिया। उसे सुनते ही यमदूत भाग गये और विष्णु पार्षदोंने आकर दर्शन दिया। तदनन्तर कुछ चेत होनेपर माताजीने यमदूतोंके द्वारा प्राप्त कष्टका वर्णन करते हुए कहा कि तुम्हारे कीर्तनसे मुझे बड़ा सुख मिला, मेरा सारा कष्ट दूर हो गया। तू धन्य है, तूने नरकसे मेरा उद्धार कर दिया। यमदूत मुझे मार रहे थे। अब ये विष्णुदूत विमानपर बैठाकर मुझे ले जा रहे हैं।

श्रीछीतस्वामीजी

श्रीगोपाललालके विशद गुणगणोंके उदार गाता अष्टछापके कवि श्रीछीतस्वामीका जन्म लगभग सं० १५७२ वि० में हुआ। आप श्रीमथुराके चतुर्वेदी ब्राह्मण और सुबल सखाके अवतार थे। वीर प्रकृतिके कारण ये किसीसे दबते न थे। इनके चार साथी और थे। ये पाँचों नामी-गरामी प्रसिद्ध थे, उनमें छीतू चौबे सरदार थे। आये-गये तीर्थयात्रियोंसे और मथुरावासियोंसे भी ये अपनी भेंट-पूजा राजी-राजी और कभी-कभी गैर-राजी भी ले लिया करते थे। इससे प्रायः लोग इनसे भयभीत रहते। जिस समय इनकी अवस्था लगभग बीस वर्षकी थी, उस समय श्रीविट्ठलनाथजीकी दिव्य भक्ति-निष्ठाकी चर्चा चारों ओर तेजीसे फैल रही थी। एक दिन छीतू चौबेकी मित्र-मण्डलीमें श्रीविट्ठलनाथजीकी चर्चा चारों ओर छिड़ गयी। ये लोग कहने लगे कि गोकुलके गोसाईंजी जादू-टोना बहुत अच्छा जानते हैं। जो भी कोई उनके पास पहुँच जाता है, उसके ऊपर जादू चलाकर उसे मोहित कर लेते हैं, फिर तो वह अपने तन-मन-धनको समर्पणकर उनका चेला बन जाता है। दूसरेने कहा—अजी! उनके यहाँ ठाकुरके भोगमें बढ़िया-से-बढ़िया चक्कमाल मिलते हैं। इसीसे लोग उनके गुन गाते हैं और चेला बन जाते हैं। अन्तमें इन पाँचोंने निश्चय किया कि गोकुल चलकर गोसाईंजीकी परीक्षा ली जाय और देखा जाय कि हम ब्राह्मणलोगोंपर कैसे अपनी मोहिनी विद्या चलाते हैं। हम लोग तो काली कामर हैं, हमारे ऊपर किसीका रंग चढ़नेसे रहा। भेंटके लिये एक सूखा-थोथा नारियल और एक खोटा रुपया लेकर इन लोगोंने नावमें बैठकर गोकुलकी यात्रा की।

वहाँ पहुँचकर छीतू चौबेने कहा—तुम लोग बाहर द्वारपर खड़े रहो। मैं जाकर वहाँका रंग-ढंग देखता हूँ, पीछेसे तुम लोग भी भीतर आ जाना। उस समय श्रीगोसाईंजी विश्राम करके उठे थे और अपनी गद्दीपर बैठकर स्वाध्याय कर रहे थे, उनके हाथमें पुस्तक थी। उनके पुत्र श्रीगिरिधरजी भी समीपमें ही विराजमान थे। छीतू चौबेने उनके समीप जाकर जब उनका दर्शन किया तो मनमें पश्चात्ताप हुआ कि मैं दिव्य देवस्वरूप, शान्त महापुरुषकी मसखरी और परीक्षा लेने आया, मुझे धिक्कार है। इन्होंने नारियल और रुपयेको छिपा लिया और श्रीगोसाईंजीको दण्डवत् की। तब वे मुसकराकर बोले—'आओ, छीतस्वामी! कहो, अच्छी तरहसे हो न? तुम बहुत दिनोंमें दिखायी पड़े।' इन्होंने पुनः साष्टांग दण्डवत् की और हाथ-जोड़कर प्रार्थना की—'महाराज! मैं आपकी शरणमें हूँ, आप मुझे अपनाइये।' गोसाईंजीने कहा—'तुम तो मथुराके चतुर्वेदी हो, मेरे भी पूज्य हो, सिद्ध पुरुष हो, मुझे दण्डवत् प्रणाम क्यों करते हो?' छीतस्वामीने पुनः कहा—प्रभो! अब आप मुझपर कृपा करो, मैं स्वामित्वको छोड़कर आपका दास बनना चाहता हूँ। मेरे मनमें तो बहुत कुटिलता थी, परंतु आपके दर्शनोंसे वह दूर हो गयी। मैं तो अब आपके हाथ बिक गया। आप जो चाहें सो करें। परमदयालु श्रीगोसाईंजीने छीतस्वामीके शुद्ध भावको जाना और इन्हें नाम देकर इनको अपना बना लिया। उसी समय इनकी कवित्व शक्ति जग गयी, इन्होंने बड़ी उमंगके साथ गाया—

भई अब गिरिधर सों पहचान।
कपट रूप धरि छलिबे आयौ पुरुषोत्तम नहिं जान॥

छोटो बड़ो कछू नहिं जान्यौ छाय रह्यौ अज्ञान।
छीत स्वामि देखत अपनायौ श्रीविट्ठल कृपा निधान॥

इनके चारों साथी जो बाहर बैठे ताक-झाँककर देख रहे थे। उन्होंने कहा—छीतूको तो टोना लग गया, हम लोग यदि यहाँ रुकेंगे तो हमारे ऊपर भी टोना चल जायगा, इसलिये यहाँसे जल्दी भाग चलो। चारों मथुराको वापस आ गये। श्रीगोसाईंजीने छीतस्वामीसे कहा—'हमारी भेंट लाये हो, उसे लाओ।' ये मनमें विचार करने लगे कि नारियल और रुपया तो भेंटके योग्य हैं नहीं, ये सर्वज्ञ हैं, इनसे कुछ छिपा नहीं है। जैसे इन्होंने मुझ थोथे-खोटेको अपनाया है, उसी तरहसे मेरी भेंट भी स्वीकार करेंगे। ऐसा विचारकर डरते-डरते इन्होंने भेंट रखा। श्रीगोसाईंजीने नारियलको फोड़वाकर श्रीनवनीत-प्रियको भोग धरवाया और रुपयेके पैसे मँगवाये। नारियलमेंसे अति उत्तम गिरी निकली, सबको प्रसाद मिला, रुपया भी चल गया। इससे और अधिक श्रद्धा हुई। इन्होंने सोचा—वस्तुतः कोई भी वस्तु या जीव गुरु-गोविन्दके योग्य नहीं है, सब कुछ खोटा ही है, भगवदर्पित होकर ही वस्तु खरी होती है और जीव विशुद्ध होता है। मैं भवसागरके प्रवाहमें बह रहा था। इन्होंने कृपा करके मेरा उद्धार किया। श्रीगुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम करके भावमें भरकर दूसरा पद गाया—

हौं चरणातपत्र को छहियां।
कृपासिन्धु श्रीबल्लभनन्दन, बह्यौ जात राख्यौ गहि बहियां॥
नव नखचन्द्र सरद राका ससि, त्रिविधि ताप मेटत छिन महियां।
छीतस्वामि गिरिधरन श्रीविट्ठल, सुजस बखान सकति श्रुति नहियां॥

इस पदको सुनकर श्रीगोसाईंजी बहुत प्रसन्न हुए। छीतस्वामीने कहा—'महाराज! वेद भी आपकी महिमाका पार नहीं पाते हैं तो उसे तुच्छ कवि क्या गायेगा।' सन्ध्या-आरतीका समय हो गया था, इसलिये श्रीगोसाईंजीने आज्ञा दी कि 'मन्दिरमें जाकर श्रीनवनीतप्रियके दर्शन करो।' आपने आकर दर्शन किया तो श्रीठाकुरजीके निकट ही श्रीगुरुदेवके दर्शन हुए। मनमें आया कि भीतरसे मन्दिरमें आनेका रास्ता होगा। उसीसे आ गये। पुनः इधर आकर देखा तो गद्दीपर विराजमान हैं। अब छीतस्वामीने श्रीगोसाईंजीके वास्तविक रूपको समझा और साष्टांग दण्डवत्प्रणाम किया। कुछ देर बाद शयन आरती हुई और गोसाईंजीने भगवान्का प्रसाद छीतस्वामीको पवाया और आज्ञा दी कि प्रातःकाल ही श्रीगोवर्धन चले जाना और श्रीश्रीनाथजीके दर्शन करके आना। आज्ञानुसार गोकुलमें मंगला आरतीके दर्शन करके छीतस्वामी श्रीगोवर्धन आये और राजभोगके समय श्रीनाथजीके दर्शन किये। यहाँ भी मन्दिरमें गुरुदेवके दर्शन हुए तो आपने लोगोंसे पूछा, तब लोगोंने बताया कि गोसाईंजी तो श्रीगोकुलमें हैं। अब ये समझ गये कि जो गुरु हैं, वही गोविन्द हैं। गोवर्धनसे चलकर छीतस्वामीने पुनः गोकुल आकर श्रीगोसाईंजीको साष्टांग दण्डवत् किया। उन्होंने पूछा—'कहो, श्रीश्रीनाथजीके दर्शन हुए।' इन्होंने कहा—'हाँ महाराज! श्रीश्रीनाथजीके निकट आपके भी दर्शन हुए।' ऐसा कहकर आपने अपने अनुभवका पद गाया—

जे वसुदेव किये पूरन तप, ते फल फलित श्रीबल्लभ देह।
जे गोपाल हते गोकुल में, तेई अब आइ बसे करि गेह॥
जे वे गोप बधू हीं ब्रजमें, तेई अब वेद रिचा भईं एह।
छीतस्वामि गिरिधरन श्रीविट्ठल, एई वेई वेई एई कछु न संदेह॥

तीसरे दिन यमुनामें स्नान कराकर गोसाईंजीने इन्हें ब्रह्म-सम्बन्ध कराया, अपना सीथ-प्रसाद और पान-

बीड़ा देकर इन्हें घरपर रहकर भजन-साधन करते हुए जीवन-यापन करनेकी आज्ञा दी। घर आनेपर पुराने चारों साथी आकर इनसे मिले और बोले—हमने तो उसी समय जान लिया कि इनपर टोना चल गया। इन्होंने कहा—'हाँ, ठीक है, अब हमारा-तुम्हारा साथ छूट गया। अब यदि तुम मेरा साथ चाहो तो गोसाईंजीके शिष्य बनो।' कालान्तरमें इन सबपर भी श्रीगोसाईंजीकी कृपा हुई।

छीतस्वामीकी दिल्लीमें पुरानी यजमानी थी। बीरबल भी इनका यजमान था। ये प्रतिवर्ष वहाँ जाकर अपनी वार्षिक भेंट लाते। उसी नियमसे ये दिल्ली गये और बीरबलके यहाँ ठहरे। प्रात:काल ही आपने अपने नित्य-नियमानुसार पद गाया—

जय श्रीबल्लभ राजकुमार।
पर पाखण्ड कपट खण्डन करि, सकल वेद धुरि धार॥
परम पुनीत तपोनिधि पावन, तन शोभा जित मार।
श्रीमुख वाक्य कथित लीलामृत, सकल जीव निस्तार॥
निज मति सुदृढ़ सुकृत हरि पावन, नवधा भक्ति प्रचार।
दुरितहु दुरत अचेत प्रेतगित, हतित पतित उद्धार॥
नहीं मिति नाथ कहाँ लौं बरनौं, अगनित गुनगन सार।
छीतस्वामि गिरिधरन श्रीविट्ठल, प्रगट कृष्ण अवतार॥

इस पदको बीरबलने सुना तो—***'प्रगट कृष्ण अवतार'*** यह बात उसे नहीं जँची। फिर राजभोग रखकर अपने श्रीठाकुरजीके सामने छीतस्वामीने गाया तो—***'एई वेई वेई एई'*** यह भी उसे अच्छा नहीं लगा, तो उसने इनसे कहा—'इन पदोंमें तुम श्रीगोसाईंजीको साक्षात् श्रीकृष्ण बता रहे हो, बादशाह म्लेच्छ है, अगर कहीं सुन पायेगा और तर्क करके पूछेगा, तो क्या उत्तर दोगे?' श्रीछीतस्वामीने कहा—'जब बादशाह कुछ पूछेगा, तब हम उसे जो समझमें आयगा, सो उत्तर देंगे, परंतु मेरे विचारसे तो तू ही म्लेच्छ है; क्योंकि तुझे अविश्वास है, अत: मैं तेरा परित्याग करता हूँ। तेरा अन्न-जल और भेंट कभी स्वीकार न करूँगा।' बीरबलने समझा-बुझाकर रोकना चाहा, परंतु आप रुके नहीं। मथुरा आ गये, फिर कभी दिल्ली नहीं गये।

अकबर बादशाहको सब समाचार मिला तो उसने बीरबलसे कहा—तुमको भूल गया, एक बार हम और तुम नावमें बैठकर आगरा जा रहे थे। नाव जब गोकुलमें पहुँची तो उस समय श्रीगोसाईंजी ठकुरानी घाटपर बैठे थे! मैंने उन्हें प्रणाम किया और उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया था। उस समय मेरे पास बहुमूल्य एक मणि थी। मैंने श्रीगोसाईंजीको भेंट दी। उन्होंने तीन बार पूछा कि—यह अब मेरी है, मैंने कहा—हाँ, तब उन्होंने मणिको यमुनाजीमें डाल दिया। मुझे दु:ख होता देखकर उन्होंने यमुनासे अंजलि भरकर मणियाँ निकालकर दिखायीं और कहा कि तुम अपनी मणि इनमेंसे छाँटकर ले सकते हो। मैं प्रभाव देखकर चकित हो गया। फिर उन्होंने मणियाँ यमुनामें डाल दीं। यदि उनके शिष्यने उन्हें प्रकट कृष्णका अवतार कहा तो क्या अनुचित किया?

बिना भेंट-विदाई लिये दिल्लीसे रूठकर चले आनेका समाचार सुनकर श्रीविट्ठलनाथजीने दर्शनार्थ आये लाहौरके वैष्णवोंसे कहा—यदि छीतस्वामी लाहौर पहुँचे तो उनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करना। इसके बाद आपने इन्हें बुलाकर कहा कि तुम लाहौर चले जाओ, वहाँ तुम्हारी सेवा हो जायगी। इन्होंने उत्तर दिया कि भीख माँगनेके लिये मैं वैष्णव नहीं बना हूँ, आपकी कृपासे विश्रान्त घाटपर ही बिना माँगे श्रीयमुनामैया देती दिलाती हैं, तो फिर आपके चरणोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं क्यों जाऊँ? लाहौरके भक्त प्रतिवर्ष इनके लिये सौ रुपयेकी

हुण्डी भेजने लगे। उसे आप गुरु-गोविन्दकी सेवामें समर्पित कर देते।

एक बार जन्माष्टमीके सुअवसरपर श्रीगोसाईंजी श्रीठाकुरजीको झूला झुला रहे थे। श्रीछीतस्वामीको उस समय अद्भुत दर्शन हुए। आपने देखा कि कभी श्रीठाकुरजीको श्रीगोसाईंजी झुलाते हैं तो कभी श्रीगोसाईंजीको श्रीठाकुरजी झुलाते हैं, उस समय श्रीछीतस्वामीने यह पद गाया—

प्रिय नवनीत पालने झूलैं, विट्ठलनाथ झुलावैं हो।
कबहुँक आप सङ्ग मिलि झूलैं, कबहुँक उतरि झुलावैं हो॥
कबहुँक सुरँग खिलौना लै लै, नाना भाँति खिलावैं हो।
चकइ फिरकिनी कबहूँ नचावैं, झुन-झुन हाथ बजावैं हो॥
भोजन करत थाल इक झारी, दोउ मिल खांय खवावैं हो।
गुप्त महारस प्रगट जनावैं, प्रीति नई उपजावैं हो॥
धनि धनि भाग दास निज जनके, जिन यह दर्शन पाये हो।
छीतस्वामि गिरिधरन श्रीविट्ठल, निगम एक करि गाये हो॥

इनके सेवा-भाव प्रेम-भाव और कवित्वपर रीझकर श्रीविट्ठलनाथजीने इन्हें अष्टछापमें स्थान दिया और श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा सौंपी। ये गोवर्धन पूंछरीके निकट रहते और श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा करते थे। इनके प्रायः दो सौ पद प्राप्त होते हैं, कुछ अप्रकाशित भी हैं, इनकी भाषा सरल और स्पष्ट है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मेरी अँखियन गिरिधर भावै।
कहा कहौं तोसों सुनि सजनीं, उतही कौं उठि धावैं॥
मोर मुकट कानन कुण्डल लखि, तन गति सब बिसरावैं।
बाजूबन्द कण्ठ मनि भूषन, निरखि निरखि सचु पावै॥
छीतस्वामि कटि क्षुद्र घण्टिका, नूपुर पदहिं सुनावै।
यह छबि सदा श्रीविट्ठल के उर, मो मन मोद बढ़ावै॥

श्रीब्रजभूमिके प्रति इनका बड़ा अनुराग था। यथा—

ए हो विधना तो पै अचरा पसारि मांगौं, जनम जनम दीजौ याही ब्रज बसिबो।
अहीर की जाति समीप नन्द घर, घरी घरी स्याम हेर हेर हँसिबो॥
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिनमें, झकझोरिन अङ्ग अङ्ग को परसिबो।
छीतस्वामि गिरिधरन श्रीविट्ठल, सरद रैन रस रास को विलसिबो॥

गुरुदेव श्रीविट्ठलनाथजीके लीला-प्रवेशके पश्चात् ये उनके वियोगमें व्यथित हो गये। उस समय इन्हें श्रीनाथजीने दर्शन दिया। *'विहरत सातो रूप धरे।'* इस पदको गाते-गाते अपने निवास-स्थान पूछरीपर ही आपने वि० सं० १६४२ में शरीर छोड़ा और नित्य-लीला धाममें प्रवेश किया।

श्रीबिहारीदासजी

भक्त-जगत्में आप श्रीबिहारिनदेव इस नामसे जाने जाते हैं। आपके पिताका नाम मित्रसेन था। वे दिल्ली बादशाहके उच्चपदाधिकारी थे। श्रीमित्रसेनजी सब प्रकारके सुखोंसे सम्पन्न थे, परंतु सन्तानके बिना सभी सुख फीके लगते थे। पण्डित चतुर्भुजजी नामके आपके एक घनिष्ठ मित्र थे। जिन्हें स्वामी श्रीहरिदासजीकी कृपासे पुत्रकी प्राप्ति हुई थी, अतः उन्होंने अपने मित्र मित्रसेनके लिये भी श्रीस्वामीजीसे प्रार्थना की।

तस्वामीको
तो कभी

चतुर्भुजजीके कहनेसे मित्रसेनजी भी श्रीस्वामीजीके दर्शनार्थ श्रीवृन्दावन आये और उन्हें भी श्रीस्वामीजीकी कृपासे श्रावण शुक्ला ३ को एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। उनका नाम बिहारीदास हुआ।

पण्डित चतुर्भुजजीके पुत्र श्रीकृष्णदासजी थे। वे भी श्रीस्वामीजीके कृपापात्र और अनन्य रसिकोंमेंसे एक थे। ये रात-दिन नित्य-विहार उपासनामें इतने लीन रहते थे कि अन्य बातोंकी सुध-बुध ही नहीं रहती थी। इसलिये आपके द्वारा रचित कोई साहित्य या अन्य विवरण नहीं मिलता है।

पिताके देहान्तके बाद श्रीबिहारीदासजी राज-सेवामें नियुक्त हुए। एकबार आसामपर आक्रमण करनेके लिये आपको खानखानाके साथ जाना पड़ा। वहाँ युद्ध एवं उसकी रीति-नीतिसे आपके मनमें दुःख और उसके बाद वैराग्य उत्पन्न हो गया। आपने मनमें दृढ़ निश्चय किया कि अब यवनोंकी नौकरी नहीं करनी है। छुटकारा पानेका कोई रास्ता नहीं दिखायी पड़ा तो आपने अपने ही हाथसे अपना एक हाथ काट डाला। इस महान् प्रायश्चित्तसे प्रारब्ध क्षीण हो गये और यवनराजकी सेवासे सहजमें मुक्ति मिल गयी।

श्रीधाम वृन्दावनमें आकर निधिवनमें श्रीस्वामीजीके श्रीचरणोंका स्पर्श करते ही आपका कटा हुआ हाथ ज्यों-का-त्यों हो गया। श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे श्रीविट्ठलविपुलदेवजीने इन्हें शिक्षा-दीक्षा प्रदान की और निकुंज-महलकी उपासनाका रहस्य बताया। तभीसे 'श्रीबिहारिनदेवजी' इस नामसे आप प्रसिद्ध हुए। आपकी गुरु-गोविन्दमें निष्ठा और कहनी-रहनी ऐसी थी कि आपके समकालीन श्रीहरिरामजी व्यासको कहना पड़ा—

साँची प्रीति बिहारिन दासै।
कै करवा कै कुञ्ज कामरी, कै गुरु स्वामी हरिदासै॥
प्रतिबाधिक सहि सकत न तिनकौ, जानत नहीं कहा कहि त्रासै।
महा माधुरी मत्त मुदित ह्वै, गावत रस जस जगत उदासै॥
छिन ही छिन परतीति बढ़त रस, रीति निरखि बिवि वदन विलासै।
अंग संग नित्य विहार विलोकत, इहै आस निधुवन बसि व्यासै॥

श्रीस्वामी हरिदासजीके निकुंज-प्रवेशके सातवें दिन ही जब स्वामी श्रीविट्ठलविपुलदेवजी भी श्रीस्वामिनी-स्वरूपमें लीन हो गये, तो उनके स्थानपर श्रीबिहारिनदेवजी ही विराजमान हुए। श्रीबिहारीजीकी सेवा आप उसी लाड़-चावसे करते थे, किंतु कभी-कभी नित्य-केलिकी भावनामें ऐसे लीन हो जाते कि देह-कृत्यादिकी सुध-बुध भी भूल बैठते। एक दिन आप स्नान करनेके लिये श्रीयमुनातटपर गये। वहाँ दातुन करते हुए—***'विहरत लाल बिहारिन दोऊ, श्रीयमुनाके तीरे तीरे।'*** इस तुकको गाने लगे। उस समय युगलकी छबि-छटामें आप ऐसे छक गये कि दातुन करते और गाते-गाते सन्ध्या हो गयी। त्रिकाल यमुना-स्नान करनेवाले श्रीमदनमोहनजीके पुजारीने इनकी यह दशा देखी, तो उन्होंने गोस्वामी श्रीसनातनपादजीसे जाकर निवेदन किया—'महाराज! आज श्रीयमुनाजीके किनारे एक बाबाजी सबेरेसे दातुन कर रहे हैं और पद गा रहे हैं। अबतक न तो उनकी दातुन पूरी हुई और न पद ही पूरा हुआ। यह सुनकर गोस्वामीपाद समझ गये कि ऐसे रसोन्मत्त सन्त तो श्रीबिहारिनदेवजी ही हो सकते हैं। उन्होंने पुजारीके हाथों श्रीमदनमोहनजीका प्रसाद भेजवाया। पुजारीके द्वारा कई बार कहनेपर भी आपने ध्यान नहीं दिया। तो पुजारी गोस्वामीके पास लौट आया। गोस्वामीजीने कहा कि—उनसे जाकर यह कहो कि—'श्रीस्वामीजीका प्रसाद लाया हूँ।' पुजारीने जाकर जब इस प्रकार कहा, तो स्वामी श्रीबिहारिनदेवजीने तुरंत उठकर हाथ फैलाकर प्रसाद ग्रहण कर लिया। तब आपको अपनी दशाका भान हुआ। उसी समय स्नान आदि करके आये और श्रीबिहारीजीकी सेवा की। इस घटनाका संकेत आपकी वाणीमें मिलता है—

सरसरूप सुखमें सन्यौ मन अटक्यो गुनगान। बिहारिदास जानैं नहीं कित भोजन असनान॥
उठि बैठ्यो हौं भोर ही एक तान गुणगान। आवत जात अथै गयौ तीन काल असनान॥

मूलचन्द नामक माट गाँवके एक ब्राह्मण आपकी सेवामें सामग्री लाया करते थे। आप कभी यमुनाजीके किनारे बैठे मिलते तो कभी किसी लता-कुंजमें। आपकी इस तन्मयताको देखकर उसने स्वयं श्रीबिहारीजीकी सेवा प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। आपने उसकी भाव-भक्ति देखकर उसे श्रीबिहारीजीकी सेवा सौंप दी। कुछ समय पश्चात् उसका देहान्त हो गया तो उसके भाईने श्रीबिहारीजीकी सेवा की। उसकी भी मृत्यु हो गयी तो कुछ कालतक आपने फिर स्वयं सेवा की। फिर गोस्वामी श्रीजगन्नाथजीपर प्रसन्न होकर आपने उन्हें सेवा सौंपी। तबसे अबतक श्रीबिहारीजीकी सेवा उन्हींके वंशज करते चले आ रहे हैं।

सुहावनी शरद् ऋतुका समय था। निधिवनका सौन्दर्य सीमाको पार कर रहा था। श्रीबिहारिनदेवजी नेत्र मूँदकर प्रिया-प्रियतमकी कुंज-क्रीड़ाके अवलोकनमें निमग्न हो रहे थे। उसी समय त्रिभुवनमोहन श्यामसुन्दर अपने सखाओंके साथ खेलते हुए वहाँ आ पहुँचे। सखा श्रीकृष्णसे पूछ बैठे—'अरे कन्हैया! देख आँखोंको बन्द करके यह कौन बैठा है?' श्यामसुन्दरने कहा—'रहने दो, तुम्हें क्या पड़ी, सन्तको अपना भजन करने दो।' सखाओंने आग्रह किया—नहीं, भैया! सन्तसे कुछ वार्तालाप-सत्संग करना चाहिये। नन्दनन्दनने श्रीबिहारिनदेवके समीप आकर उन्हें पुकारा—बाबा! जरा आँखें तो खोलो। दो-तीन आवाजोंका कुछ प्रभाव नहीं हुआ तो सभीने मिलकर पुकारा, तब आपका ध्यान इधर आया। आँखें बन्द किये हुए ही बोले—'तुम लोग कौन हो, क्या बात है?' श्रीकृष्णने कहा—मैं वही हूँ, तुम जिसका ध्यान कर रहे हो। साथमें मेरे सखा हैं। इन्होंने पूछा—'आपके साथ श्रीस्वामीजी भी हैं क्या?' उत्तर दिया—'वे तो नहीं हैं।' आपने कहा—'तो आपने जिसके चित्तवित्तका अपहरण कर रखा है, उसीके पास जाओ, हम तो श्रीस्वामी हरिदासजीके अंगमें विराजनेवाले युगलकिशोरके अनन्य उपासक हैं। उनके बिना और किसीको नहीं चाहते हैं, यह हमारा हठ है।' यथा—

चित्त हरौ सब वित्त हरौ, नवनीत हरौ ब्रजजानि जहाँ कौ।
हरे हरि ह्वै रहिहौं हो लला हौं, तो हेरि रह्यौ हठ ही हठ झांको॥
श्रीबिहारिनदास अनन्य मिले, रस पाय पिया पिय अंक महां कौ।
हौं तो और सरूप पिछानौ नहीं, हरिदास बिना हरिको है कहां को॥

आपके इस प्रेमपूर्ण हठपर रीझकर श्रीस्वामीजीकी गोदमें विराजकर श्रीयुगलकिशोरने आपको दर्शन देकर कृतार्थ किया। लगभग ९८ वर्षकी आयुमें आपने शरीरको त्यागकर नित्य-निकुंज-लीलामें प्रवेश किया। आप श्रीस्वामीजीके द्वारा प्रवर्तित वृन्दावनकी निकुंजोपासनाके सुदृढ़ स्तम्भ, रससिद्धान्तके महान् तत्त्वज्ञ एवं उसके भाष्यकार थे। आपकी वाणी ओजस्विनी एवं रसीली है। उसमें स्वामीजीके सिद्धान्तोंका विवेचन है। रस और सिद्धान्त दोनों प्रकारकी आपकी रचनाएँ हैं। श्रीव्यासजी, श्रीध्रुवदासजी आदिने आपकी कहनी-रहनी, निर्भयता आदिकी प्रशंसा की है। ब्रजनाथजी कहते हैं—

ऐंड्यौ ऐंड्यौ फिरै विपुलबल रसकौ पीये। बानी जाकी सुनत छुटै सब साधन हीये॥
कुंजबिहारी वरविहारकुंजनि बसि गायौ। इहि बल गरजत रह्यौ लरजि रसिकन सिरनायौ॥
रस भूमि उपासक रहसि को ऐसो को ह्वै है सुभट।
सपूत पूत हरिदासको बिहारीदास अननि मुकुट॥

(भक्तमाल सर्वेश्वरसे)

गायौ नित्य विहार रीति सब जग ते न्यारी। स्यामास्याम उपासि महा बांकी व्रत धारी॥
श्रीयुत बीठल विपुल सुगुरुवर शिष्य उजागर। रचिपद साखी छन्द लड़ावै नागरि नागर॥
एक टेक नित निरबही राउ रंग तजि आस। श्रीहरिदास प्रसाद गुण भयौ बिहारीदास॥

श्रीबिहारिनदेवजीकी वाणी—

दरसैं परसैं अंग अंग लसैं विलसैं सुख सिन्धु न प्रेम अघैहौं।
निरखैं नित नैन सुमाधुरे बैन सु श्रौन सुचैंन सुने गुन गैहौं॥
दम्पत्ति साँच हिये धरि या सुख ते न कहूँ कबहूँ चलि जैहौं।
नित्य विहार आधार हमार श्रीबिहारि बिहारिनि की बलि जैहौं॥
श्रीहरिदासके गर्व भरे अमनैक विहार निहारिन के।
सुमहामधुरे रस पान करै अवसान खता सिलहारिन के॥
दीयौ न लेहिं ते माँगैं कहा बरनै गुन कौन तिहारिन के।
किये रहें ऐंड़ बिहारिहु ते हम वे परवाह बिहारिन के॥

संसारसे निवृत्त भक्त

उधव रामरेनु परस (राम) गँगा धूषेत निवासी।
अच्युतकुल ब्रह्मदास बिश्राम सेषसाइ के बासी॥
किंकर कुंडा कृष्नदास खेम सोठा गोपानँद।
जैदेव राघौ बिदुर दयाल दामोदर मोहन परमानंद॥
उद्धव रघुनाथी चतुरोनगन कुंज ओक जे बसत अब।
निरबर्त्त भए संसार तें ते मेरे जजिमान सब॥ १४७॥

भक्तोंकी भक्तिके भावमें डूबकर श्रीनाभाजी लिखते हैं कि जो भक्त मायिक संसारसे सर्वथा मुक्त हो चुके हैं, वे सभी मेरे यजमान हैं (मैं इनसे पोषित पुरोहित हूँ।) उनके नाम ये हैं—श्रीउद्धवजी, श्रीरामरेणुजी, श्रीपरशुरामजी, ध्रुवक्षेत्रमें निवास करनेवाले श्रीगंगाभक्तजी, शेषशायीके निवासी अच्युतगोत्रीय वैष्णवोंको विश्राम देनेवाले श्रीब्रह्मदासजी, कुण्डाके किंकर (सेवक) श्रीकृष्णदासजी, श्रीखेमजी, श्रीसोठाजी, श्रीगोपानन्दजी, श्रीजयदेवजी, श्रीराघवजी, जयतारन ग्राममें निवास करनेवाले श्रीविदुरजी, श्रीदयालजी, श्रीदामोदरजी, श्रीमोहनजी, श्रीपरमानन्दजी, श्रीउद्धवजी, श्रीरघुनाथजी और श्रीचतुरोनगनजी, जो अब श्रीवृन्दावनके कुंज भवनमें बसते हैं॥ १४७॥

इन भक्तोंमेंसे कुछका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीउद्धवजी

श्रीउद्धवजी भगवान्‌के परम अनुरागी सन्त थे। नित्यप्रति सन्त-भगवन्तकी बड़े सद्भावसे सेवा करते। श्रीठाकुरजीको सेवाके लिये उनके पास एक बड़ी सुन्दर लुटिया थी। उसीसे वे नित्य-प्रति भगवान्‌को जल पिलाते थे। किसी दिन एक आगन्तुक सन्तने उस लुटियाको माँगा। आपने प्रसन्नतासे उसे लुटिया दे दी। उसकी जगहपर दूसरी लुटिया सेवामें लाकर रख दी। इससे रुष्ट होकर श्रीठाकुरजीने उसे फेंक दिया। आपने लाकर फिर रखा, तो फिर फेंककर बोले—तुम्हारा मुझमें स्नेह नहीं है, तभी तो मेरी अच्छी लुटिया दूसरेको

दे दी और यह जो मुझे पसन्द नहीं है, लाकर मेरे पास रख दी। मैं इससे पानी नहीं पीऊँगा। अब तुम मुझे न खिला-पिलाकर उन्हें ही खिलाओ-पिलाओ, जिनसे तुम्हें प्रेम है। यह सुनकर श्रीउद्धवजीने कहा— देखो, महाराज! नाराज होनेकी जरूरत नहीं है, एक सन्तने लुटिया लाकर दी थी, दूसरा सन्त आकर उसे ले गया, तो क्या अनुचित हुआ? वह लुटिया आपकी नहीं थी। अब आपको जैसी चाहिये, वैसी किसी औरसे चाहे मुझसे मँगवा लीजिये। हम तो जैसे भी हो, सन्तोंको प्रसन्न करेंगे। आपकी अप्रसन्नताका मुझे भय नहीं है। यह सुनकर प्रभु बहुत प्रसन्न हुए और उसी क्षण उसी तरहकी लुटिया मँगवा ली।

एक बार श्रीउद्धवजीके आश्रमपर बहुतसे सन्तोंका आगमन हुआ। तब आपको बड़ी प्रसन्नता हुई। अर्घ्य-पाद्य-आचमनके लिये जल और आसन लगानेके लिये थलका प्रबन्ध करके आपने उन्हें पधराया। देखा तो घरमें सीधा-सामान बहुत थोड़ा-सा था। आपने रसोई बनाना प्रारम्भ कर दिया, परंतु मनमें चिन्ता थी कि इतने सामानसे कैसे पूरा पड़ेगा? भक्त-चिन्तासे प्रभावित होकर उसी क्षण श्रीरामजीकी आज्ञासे एक रूपवती माता सामान लेकर आयीं और बोलीं कि सामान कहाँ रखूँ? आपने कहा—'मन्दिरमें।' वह सामान रखकर वहीं लुप्त हो गयीं। आज जगदम्बाने बड़ी कृपा की है, यह विचारकर इनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। आपने उस अक्षय सामानसे कई दिनतक खूब सन्त-सेवा की।

श्रीविदुरजी

झीथड़ा ग्रामके निकट एक जयतारन नामका ग्राम है, उसमें श्रीविदुरजी भगवान्‌के परम भक्त हुए। वे बड़े प्रेमसे साधु-सन्तोंकी सेवा करते थे। एक बार वर्षा नहीं हुई, अतः सब खेती सूख गयी। श्रीविदुरजीके मनमें बड़ी चिन्ता हुई कि अब साधु-सेवा कैसे होगी? अपने भक्तके मनमें चिन्ता देखकर प्रभुने स्वप्नमें आज्ञा दी कि सूखे खेतोंको ही कटवाओ, बैलोंसे दाँय करवाओ और फिर हवामें उड़ाओ। ऐसा करनेसे तुम्हें दो हजार मन अन्नकी प्राप्ति होगी। प्रभुकी आज्ञाके अनुसार आपने खेतोंको कटवाया। दूसरे लोग देखकर इनकी हँसी उड़ा रहे थे, परंतु श्रीविदुरजीको भगवदाज्ञापर दृढ़ विश्वास था, अतः भक्तहितकारी भगवान्‌के नाम-गुण-गानके साथ ये किसानीके काममें लग गये। हवामें उड़ानेसे अन्नका बड़ा भारी ढेर लग गया। सब लोगोंने समझ लिया कि श्रीविदुरजी प्रेमी भक्त हैं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

झीथड़ै ढिग ही मैं जैतारन विदुर भयौ, भयौ हरि भक्त, साधु सेवा मति पागी है।
बरषा न भई सब खेती सूखि गई, चिन्ता नई, प्रभु आज्ञा दई, बड़ौ बड़भागी है॥
'खेत को कटावौ, औ गहावो, लै उड़ावौ, पावौ दो हजार मन अन्न', सुनी प्रीति जागी है।
करी वही रीति, लोग देखैं न प्रतीति होत, गाए हरि मीत राशि लागी अनुरागी है॥ ५६३॥

श्रीचतुरोनगनजी

सदा जुक्त अनुरक्त भक्त मंडल कों पोषत।
पुर मथुरा ब्रज भूमि रमत सबही को तोषत॥
परम धरम दृढ़ करन देव श्री गुरु आराध्यो।
मधुर बैन सुठि ठौर ठौर हरिजन सुख साध्यो॥
संत महंत अनंत जन जस बिस्तारत जासु नित।
श्रीस्वामी चतुरोनगन मगन रैन दिन भजन हित॥ १४८॥

श्रीगोस्वामी चतुरदासजी नागा दिन-रात भजन-भावमें डूबे रहते थे। आप बड़े भारी सिद्ध-योगी थे। ध्यान-समाधि लगाकर श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें अनुराग करते थे। गृहस्थ-विरक्त भक्तसमूहका आप पोषण करते थे। आप श्रीवृन्दावनमें निवास करते थे, पर मथुरापुरी और सम्पूर्ण व्रज-मण्डलमें विचरते थे। वैष्णवधर्मको सुस्थापित करनेके लिये आपने अपने श्रीगुरुदेवकी आराधना की। आपके वचन अत्यन्त मधुर थे। सर्वदा भगवद्गुणोंका गानकर जहाँ-तहाँ सम्पूर्ण व्रज-मण्डलमें भक्तोंको सुख देते थे। असंख्य सन्त-महन्तजन सर्वदा श्रीनागाजीके सुयशका विस्तार करते हैं॥ १४८॥

गोस्वामी श्रीचतुरोनगनजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके महान् सन्त श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी महाराजके प्रशिष्य परमानन्ददेवाचार्यजी एक बार कुरुक्षेत्र, हरियाणा आदि प्रदेशोंका भ्रमण करके ब्रजमण्डल पधारे और श्रीनागाजीकी जन्मभूमि पैगाँवके सन्निकट एक वनमें विराजे। कदमके वृक्षोंकी अधिकताके कारण उसे कदमखण्डी कहते हैं। उनके दर्शनार्थ पैगाँवके सभी स्त्री-पुरुष आते और कथा-कीर्तन-सत्संगका अलभ्य लाभ उठाते। उस समय इनकी किशोरावस्था थी, तथापि भगवद् भागवतोंमें इनका बड़ा अनुराग था। ये श्रीपरमानन्ददेवाचार्यजीकी बड़े प्रेमसे सेवा करते थे। एक दिन चरण-सेवा करते-करते इन्होंने विरक्त दीक्षा लेनेकी अपनी अभिलाषा प्रकट की। किंतु श्रीपरमानन्ददेवाचार्यने यह कहकर टाल दिया कि 'अभी तुम बालक हो, पढ़ो-लिखो, माता-पिताकी सेवा करो और घरमें रहते हुए ही प्रभुका भजन करो।' श्रीनागाजी उस समय तो मौन हो गये, परंतु दूसरे-तीसरे दिन फिर वही प्रार्थना की। इनकी जन्मकुण्डलीमें अल्पायु योग था, जिससे इनके माता-पिता चिन्तित रहा करते थे और नागाजीको भी यह ज्ञात हो गया था।

एक बार स्वप्नमें इन्हें प्रभुसे ऐसी प्रेरणा मिली कि—'मेरी भक्ति और मेरे भक्त असम्भवको भी सम्भव कर देते हैं। संसारमें फँसे रहना ही मृत्यु है और इस दुःख-पंकसे निकल जाना ही मुक्ति और अमरत्व है। तुम सांसारिक मोह छोड़कर गुरुकी शरण लो, सन्तोंके समागमका सौभाग्य बड़े भाग्यसे मिलता है।' यह स्वप्नका आदेश इनके चित्तमें जम गया, अतः प्रातः इन्होंने यह समस्त वृत्तान्त अपने माता-पिताको भी सुना दिया। माता-पिता भी सहमत हो गये। सभीके मिलकर अनुरोध करनेपर श्रीपरमानन्ददेवाचार्यजीने चतुरोनगनजीको विरक्त-दीक्षा प्रदान की। तबसे नागाजी उन्हींकी सेवामें रहने लगे।

कुछ दिनोंके बाद गुरुदेवके साथ श्रीनागाजी हरियाणाको गये। वहाँ अपने गुरु-स्थान ओलीमें पहुँचकर वहीं भक्त-भगवन्त एवं गुरुदेवकी आराधना करते रहे। वहाँ बहुत-सी गायें थीं, आप उनके लिये घास लाते, उन्हें चराते। निरन्तर भगवच्चिन्तनमें इस प्रकार निमग्न रहते कि इन्हें अपने सिरपर रखे घासके भारका ध्यान ही नहीं रहता। एक दिनकी बात कि आप भगवन्नाम-जप और ध्यान करते हुए चले आ रहे थे। मस्तकपर रखा हुआ घासका बोझ अपने-आप ऊपर-ऊपर चल रहा था। देखनेवालोंने विस्मित होकर इसकी चर्चा गुरुदेवके सामने की, तब उन्होंने इनसे कहा—'अब तुम जाओ और निरन्तर ब्रजभूमिमें रहकर वहीं भजन करो।' गुरुदेवकी आज्ञानुसार आप ब्रजमें आ गये और प्रतिदिन परिक्रमा करने लगे। भगवत्साक्षात्कार हुआ, प्रभुने स्वयं दूध पिलाया, इनका अल्पायु योग टल गया। अब आप ब्रजवासियोंके यहाँसे दूध-दही लेकर सन्तोंका पोषण करने लगे।

एक बार इनके गुरुदेव पधारे। आप उनकी स्नेहपूर्वक सेवा करने लगे। आपका सच्चा भाव था। गुरुमें गोविन्दबुद्धि थी, अतः सेवा-भावमें बुद्धि ऐसी तल्लीन हो गयी कि आपने अपनी स्त्रीको गुरु-सेवा सौंपते हुए आदेश दिया कि ये गुरु भगवान् जैसी भोजन-पानकी इच्छा करें, जैसा आदेश-उपदेश दें, उसी प्रकार इनकी

सेवा करना। आपकी आज्ञाके अनुसार उसने सेवा करना आरम्भ कर दिया और अपनी सेवासे उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। जब आपने देखा कि गुरु-गोविन्दकी सेवामें इसकी निष्ठा है। तब आपने प्रसन्न होकर कहा—भगवन्! यह घर, धन और सेवाके लिये इस वधूको लीजिये और कृपा करके यहाँ ही विराजिये। ऐसा कहकर आपने अपने घरमें उन्हें पधराया। जैसे कोई देव-प्रतिमाको सेवा-पूजाके निमित्त पधराये, उसी भावसे उन्हें पधराया। इस सेवाका प्रबन्ध करके आपको बड़ा सुख मिला। आपने गुरु-गोविन्दको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। उनकी आज्ञा और उनका आशीर्वाद पाकर उनके उपदेशानुसार आपने व्रजभूमिकी उपासना हृदयमें धारण की। श्रीबाँके बिहारी आपके हृदयमें बस गये, अत: आपने श्रीवृन्दावनमें निवास किया और निरन्तर वृन्दावन-रसकी उपासना करके उसी रसका आस्वादन किया।

श्रीप्रियादासजीने इस गुरुभक्ति और वृन्दावन-रसकी उपासनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

आयो गुरु गेह यों सनेह सों लै सेवा करैं, धरैं साँचौ भाव हियै अति मति भीजियै।
टहल लगाय दई नई रूपवती तिया, दियौ वासौं कहि 'स्वामी कहैं सोई कीजियै'॥
सेवा कै रिझाये याते प्रेम उर नित नयो दयौ घर धन वधू 'कृपा करि लीजियै'।
धाम पधराय, सुख पायकै, प्रनाम करी, धरी, व्रजभूमि उर बसे, रस पीजियै॥ ५६४॥

नागा श्रीचतुरदासजी प्रात:काल श्रीवृन्दावनधाममें विराजमान श्रीगोविन्ददेवजीकी मंगला-आरतीके दर्शन करते, फिर श्रीमथुराजीमें आकर श्रीकेशवदेवजीकी शृंगार-आरतीमें सम्मिलित होते, उसके बाद वहाँसे चलकर बरसाना—नन्दगाँवमें राजभोगकी आरती करके गोवर्धन—राधाकुण्ड होते हुए (लगभग छत्तीस कोस चलकर) सायंकालको श्रीवृन्दावन लौट आते। ऐसे ही (प्रात: से सायंतक) चार प्रहरमें प्रसन्न मनसे श्रीनागाजी नित्य यात्रा करते। एक बार (नन्दगाँवमें) पावन सरोवरपर आपको बिना खाये-पीये तीन दिन बीत गये। तब परम-प्रवीण भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दूध लेकर आपके पास आये। श्यामसुन्दरके प्रेमरंगमें रँगे हुए श्रीनागाजीने दूध पीकर जल माँगा। व्रजवासी बालकरूपधारी भगवान् जल लेने गये तो फिर लौटकर आये ही नहीं। तब आपको बड़ा कष्ट हुआ। फिर प्रभुने रातको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'मनमें दु:ख मत मानो, मैंने ही आकर तुम्हें दूध पिलाया था।'

भगवान्ने स्वप्नमें पुन: श्रीनागाजीसे कहा—दूध पिलानेके बाद माँगनेपर भी हमने तुमको पानी इसलिये नहीं दिया कि 'तुम्हें अब पानीसे क्या प्रयोजन? तुम व्रजभूमिमें बिराजते हुए घर-घर जाकर दूध ही पिया करो।' श्रीनागाजीने कहा—प्रभो! ये व्रजवासी लोग दूधके बड़े प्रेमी (लोभी) होते हैं, फिर मुझे कैसे देंगे? भगवान्ने कहा—'नहीं, मेरी आज्ञा है, अत: सब लोग तुम्हें दूध अवश्य देंगे।' यह नयी आज्ञा श्रीनागाजीने सुनी और स्वीकार की तथा सभी लोगोंको सुनायी। अब श्रीनागाजी भगवान्की आज्ञाके अनुसार व्रजमें गाँव-गाँव, घर-घर घूमने लगे और लूट-लूटकर तथा माँग-माँगकर दूध पीने लगे। जिस किसीने दूध नहीं दिया, उसे आपने परिचय एवं चमत्कार दिखाये। सब लोगोंको विश्वास हो गया। विनोद करनेके लिये कोई-कोई व्रजगोपियाँ दूधसे भरे पात्रोंको घरमें कहीं छिपा देतीं। तब उसे आप घरमें घुसकर झट ढूँढ़ लाते। इससे व्रजगोपियाँ बहुत प्रसन्न होतीं। इस प्रकार श्रीव्रजधाममें निवास करते हुए आपने मधुर रसमयी लीलाएँ कीं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचतुरोनगनजीकी इस रसमयी लीलाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्री गोविन्द चन्द जू कौ भोर ही दरस करि केसव सिंगार, राजभोग नन्दग्राम में।
गोबर्धन, राधाकुण्ड ह्वैकै, आवै वृन्दावन, मन में हुलास नित करैं चारि जाम में॥

रहे पुनि पावन पै भूखे दिन तीन बीते, आये दूध लै प्रवीन, एऊ रँगे स्याम में।
मांग्यौ नैकु पानी ल्यावौ, फेरि वही प्रानी कहाँ?, दुख मति सानी निसि, कही कियौ काम में॥ ५६५॥
'पानी सौं न काज, व्रज भूमि मैं बिराज दूध, पीवौ घर घर', यह आज्ञा प्रभु दई है।
'एतौ ब्रजवासी सब क्षीर के उपासी, कैसें मोको लेन दैहैं' कही 'दै हैं सुनी नई है॥
डोलै धाम धाम श्याम कह्यौ जोई मानि लियौ, दियौ परचे हूँ, परतीति तब भई है।
जहाँ जा छिपावैं पात्र, बेगि आप ढूँढ़ि ल्यावैं अति सुख पावैं, कीनी लीला रसमई है॥ ५६६॥

अनेकों स्थलोंपर श्रीनागाजीके मठ, मन्दिर, आश्रम और स्मारक बने हैं। आपके सहस्रों शिष्य-प्रशिष्य हुए। जिन्होंने भारतमें भ्रमणकर सर्वत्र धर्मका प्रचार किया। गोवर्धनमें गोविन्दकुण्डपर एक मन्दिर और आपकी समाधि है। वैरागपुरा मथुरा, कामवन, बरसाना, कदमखण्डी, वहींपर नागाजीकी गुफा आदि दर्शनीय हैं। वृन्दावन विहार घाट और भरतपुरके किलेमें आपके मन्दिर हैं। किलेके राज-मन्दिरमें आपकी मूर्ति भी प्रतिष्ठित है। वहींपर आपकी गुदड़ी सुरक्षित है। आपने अपने जिन पदोंकी रचना की, उनमें चतुरसखीकी छाप है।

भक्तसेवी मधुकरिया भक्त

गोमा परमानंद (प्रधान) द्वारिका मथुरा खोरा।
कालुष साँगानेर भलौ भगवान को जोरा॥
बीठल टोड़े खेम पँडा गूनो रै गाजैं।
स्यामसेन के बंस चीधर पीपोर विराजैं॥
जैतारन गोपाल को केवल कूबै मोल लियो।
मधुकरी माँगि सेवैं भगत तिनपर हौं बलिहार कियो॥ १४९॥

गोस्वामी श्रीनाभाजी कहते हैं कि मधुकरी (चुटकी) माँगकर भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेवाले सन्तोंपर मैं अपना तन-मन और धन न्यौछावर करता हूँ। श्रीद्वारकानिवासी गोमानन्दजी, मथुरा एवं खोराके रहनेवाले प्रधान भक्त श्रीपरमानन्दजी कालुख और सांगानेरमें विराजनेवाले दोनों भगवान नामक भक्त, टोंड़ेके श्रीबीठलजी, श्रीखेमजी, गुनौरा ग्रामके पण्डाजी, जयतारनवासी श्रीगोपालजी, पीपोर ग्रामके श्रीचीधरजी, सेनवंशमें उत्पन्न श्रीश्यामजी और श्रीकेवलदासजी, जो कूबा नामसे प्रसिद्ध हैं। इन भक्तोंने हमें खरीद लिया है। हम इनके क्रीतदास हैं॥ १४९॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीगोमानन्दजी

श्रीगोमानन्दजी श्रीभगवद्धाम श्रीद्वारकाजीमें निवास करते थे। ये सन्त-सेवाके निमित्त चुटकी माँगकर लाते थे और बड़े प्रेमसे साधु-सेवा करते थे। इनके प्रेमसे सन्तोंको बड़ा सुख मिलता था। एक बार बीस साधुओंकी जमात आ गयी। आपने अपना बड़ा भाग्य माना, सप्रेम विनती करके सन्तोंको पधराया। श्रीगोमानन्दजीने हाथ जोड़कर कहा—'मेरे यहाँ भिक्षाका आटा है, जिसमें सभी अनाज मिले हुए हैं, आप जो आज्ञा दें, वही रसोई तैयार करूँ?' यह सुनकर एक सन्तने कहा—मेरी तबियत कुछ खराब-सी है, अतः मैं तो गेहूँकी रोटी खाऊँगा। पचकनीका चून हमारे स्वास्थ्यके अनुकूल नहीं है। इतनेमें सभी सन्त बोल उठे—हम लोग भी गेहूँकी ही रोटी खायेंगे। उस समय इनके पास गेहूँका आटा तो मात्र एक सेर ही था। एक सन्तने कहा—'जितना हो, जैसा हो

वही दे दो।' पर यह बात सब सन्तोंने स्वीकार न की। आपका स्वभाव था—सन्तोंको सन्तुष्ट करना, अतः आपने सबको आग्रह करके रोका। वे चले जाना चाहते थे। आपने कहा—रुचि-अनुरूप प्रसाद पवाये बिना मैं जाने न दूँगा। आप लोग विराजें, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें। ऐसा कहकर आप जल्दी-जल्दी बाजार गये और उधार गेहूँका आटा तथा कुछ और भी सामान माँगने लगे। किसीने भी उधार देना स्वीकार नहीं किया, तब आप बड़े सोच-विचारमें पड़ गये, कि 'अब क्या करूँ, कहाँसे सामान लाऊँ। भक्त चिन्तासे चिन्तित होकर श्रीरामजीने गोमानन्दका रूप धारण किया और एक गेहूँकी पोट लेकर इनके घरपर आ गये। इनकी धर्मपत्नीसे बोले कि—'इनको झट साफ करवाकर पिसवा लो और प्रेमसे रोटी बनाकर सन्तोंको प्रसाद पवावो। मैं सन्तोंके पास हूँ।' इनकी पत्नीने शीघ्रतासे आटा तैयार करके रोटियाँ बनाना आरम्भ कर दिया। बाजारमें इधर-उधर टक्कर खाकर निराश श्रीगोमानन्दजी घर आये। रोटियाँ बनती देखकर प्रसन्न हुए और पत्नीसे बोले—'आटा कहाँसे आ गया?' पत्नीने उत्तर दिया—आप ही तो गेहूँ लाकर दे गये थे और पीसकर रोटी बनानेको कह गये थे, इतनी जल्दी कैसे भूल गये? पत्नीकी बात सुनकर आप समझ गये कि आज स्वयं भगवान्ने कृपा की है और मेरी रुचिके अनुसार सन्त-सेवामें सहयोग दिया है। भक्त-दम्पतीका सन्त-सेवामें और अधिक अनुराग बढ़ गया।

श्रीपरमानन्दजी

श्रीपरमानन्दजी महाराज श्रीठाकुरजीके निष्किंचन भक्त थे। आप श्रीभगवद्धाम श्रीमथुराजीमें रहते थे। आप मधुकरी वृत्तिसे अन्न माँगकर लाते और बड़े प्रेमसे सन्त-सेवा करते। सन्तोंमें आपका विलक्षण भाव था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता है। बार-बार आप कथा-कीर्तन आदिसे सम्बन्धित उत्सव करते ही रहते थे। किंतु पर्याप्त धन न रहनेके कारण आपके मनोरथ पूरे नहीं होते। एक बार आप इस अर्थाभावके लिये श्रीठाकुरजीको ही उलाहना देने लगे—भक्तवांछा-कल्पतरु भगवन्! आप अकिंचनोंके स्वामी हैं, अकिंचन ही आपको प्यारे लगते हैं। यथा—***'तेहि ते कहहिं संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥'*** भिखारियोंके पास धन नहीं है तो उनके स्वामीके पास धन कहाँसे आयगा और भिखारियोंके राजाके पास धन नहीं है तो फिर भिखारियोंके पास धन कहाँसे आयगा?

अपने भक्तकी ऐसी बातें सुनकर भगवान् दो सौ सोनेकी मुहरोंको लेकर श्रीपरमानन्दजीके घरपर आये और उन्हें मुहरें देने लगे। तब श्रीपरमानन्दजीने कहा—प्रभो! आप यहाँ इन मुहरोंको क्यों लाये? भगवान्ने कहा—तुम बड़े चतुर मालूम पड़ते हो, जब मैं कुछ नहीं देता हूँ, तो तुम उलाहना देते हो और जब देता हूँ तो लेते नहीं हो। आपने कहा—प्रभो! मैंने जो कुछ कहा, वह विनोदमें कहा। ऐसा कहते-कहते परमानन्दके आँखोंमें आँसू भर आये। वे प्रभु-चरणोंमें लिपट गये। भगवान् भी भक्त-भावमें विभोर हो गये और बोले—तुम्हारे मनमें उत्सव करनेकी तथा सन्त-सेवाकी जैसी अभिलाषा है, उसको इस धनसे पूर्ण कर लो तथा जो चाहो सो और भी माँग लो, परंतु अब उलाहना मत देना। मैं तो तुम्हें धन इसलिये नहीं देता था कि बिना धनके भी तुम अपना सर्वस्व सन्त-सेवामें अर्पण करके मुझे सन्तुष्ट करते हो और स्वयं भी प्रसन्नताका अनुभव करते हो। निष्किंचनकी और धनीमानीकी सेवामें अन्तर है। इसे तुम अच्छी तरहसे जानते हो। भगवान्के साथ हुए इस संवादसे श्रीपरमानन्दजीको जैसा परमानन्द हुआ। उसका वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है। भगवत्कृपासे परिपूर्ण धनको लेकर श्रीपरमानन्दजीने महा-महोत्सव किया। इस प्रकार सन्त-भगवन्तकी सेवा करके आपने सभीको सन्त-सेवा करनेका उपदेश दिया।

श्रीभगवानजी

आपका निवास कालख ग्राममें था। आपको मधुकरी माँगकर सन्त-सेवा करनेका बड़ा भारी अभ्यास

तथा भगवद्भक्तोंमें भी बड़ा-भारी अनुराग था। दिनभर भिक्षाटनसे जो कुछ प्राप्त होता, उस सर्वस्वसे आप अतिथियों और अभ्यागत सन्तोंकी सेवा करते। एक बार ऐसा अकाल पड़ा कि भिक्षा मिलनी बन्द हो गयी और सन्तोंकी भीड़ बढ़ गयी। अब यथोचित स्वागत-सत्कार न कर पानेसे आपका मन खिन्न हो गया। आपने अपने मनमें निश्चय किया कि अब इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र कहीं चला जाऊँगा। उसी दिन आपको आकाशवाणी सुनायी पड़ी कि—तुम इस स्थानको छोड़कर कहीं मत जाओ। मैं तुम्हारे लिये धन देता हूँ, तुम उसके द्वारा सन्त-सेवा करो। आपने कहा—मुझे इस प्रकारके धनसे सन्त-सेवा नहीं करनी है। मैं चाहता हूँ कि लोकमें सभी सुखी-समृद्ध रहें और मधुकरी वृत्तिसे हमारी झोली भरे, उससे मैं अपने इष्ट सन्तोंकी सेवा करूँ। इस भावपर रीझकर भगवान्‌ने कहा—'एवमस्तु' ऐसा ही हो। फिर तो नित्य आप ही झोली भरने लगी और सुकाल हो गया।

श्रीश्यामजी

प्रसिद्ध भक्त सेनके वंशमें श्रीश्यामजी महान् भगवद्भक्त हुए। पहले आप गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन करते हुए भगवद्भजन और सन्त-सेवा करते थे। एक बार आपके यहाँ एक सिद्ध सन्त आ गये। उन्होंने सन्त-सेवाकी महिमा बताकर कहा कि यदि मानव-जीवनको सफल करना हो तो आज ही से सन्त-सेवाका दृढ़ व्रत हृदयमें धारण कर लो। दूसरे साधनोंका भरोसा छोड़कर अनन्य-भावसे सन्त-सेवा किया करो। श्रीश्यामजीने पूछा—भगवन्! सन्त कैसे होते हैं, उनकी क्या पहचान है? उन्होंने कहा—हमारे-जैसी वेश-भूषा (कण्ठी-माला-तिलक) धारण करनेवाले सभी सन्त भगवदाश्रित हैं और सेव्य हैं। यदि इसी शरीरसे भगवदानुभव चाहते हो तो अब समय आ गया है, गृहस्थाश्रमका त्याग कर दो, मधुकरी वृत्तिसे भिक्षा माँगो, आये-गये साधु-सन्तों और अतिथियोंकी सेवा करो। फिर देखो कि तुमपर कितनी जल्दी प्रभु रीझते हैं और तुम सिद्ध होते हो। उस सिद्ध-सन्तके उपदेशका इनपर ऐसा विलक्षण रंग चढ़ा कि इन्होंने घर-बारका मन और तन दोनोंसे सर्वदा त्याग कर दिया। विरक्त हो गये और भिक्षाटन एवं सन्त-सेवा करने लगे।

एक बार भिक्षा माँगते हुए आप एक सद्-गृहस्थके द्वारपर गये, तो वहाँ इन्होंने देखा कि उस घरके मालिकका इकलौता बेटा मर गया है और सभी लोग करुण-क्रन्दन करते हुए विलाप कर रहे हैं। लोगोंका आर्त्तनाद सुनकर आपका हृदय द्रवित हो गया। दयाभावमें भरकर श्रीराम-नामका संकीर्तन करते हुए आपने जाकर बालकके शरीरका स्पर्श किया तो उसी क्षण वह जीवित हो गया। आपने कहा—तुम लोग व्यर्थ रुदन करते हो, नाम-कीर्तन करो, पुत्र जीवित हो गया। श्रीश्यामजीके इस चमत्कारको देखकर सभी लोग उनके श्रीचरणोंमें लिपट गये। तभीसे उनका एवं अन्य सन्तोंका सभी लोग विशेष सम्मान करने लगे एवं भगवद्भक्त हो गये। आपने कहा—इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है। यह तो सन्त-सेवाका प्रभाव है। कोई भी श्रद्धासे सन्त-सेवा करके इस प्रकारकी शक्ति प्राप्त कर सकता है। श्रीश्यामजीके इन उपदेशोंसे बहुतसे लोग सन्त-भगवन्तकी आराधनामें तल्लीन हो गये।

श्रीकूबाजी (केवलदास)

श्रीकूबाजीको संसारमें लोग कुम्हार जातिका कहते हैं, उनका सुन्दर नाम श्रीकेवलराम था। आपने अपनी भक्तिके प्रभावसे अपने कुलका ही नहीं, संसारका उद्धार किया। आप साधुओंकी बड़ी अच्छी सेवा करते थे। एक बार आपके घरमें बहुत-से सन्त पधारे। उनका सप्रेम स्वागत-सत्कार किया। परंतु उस दिन घरमें अन्न-धन कुछ भी न था। बड़ी भारी आवश्यकता थी, अतः आप कर्ज लेनेके लिये चले। परंतु किसी महाजनने कर्ज नहीं दिया। एक महाजनने कहा—'यदि मेरा कुआँ खोदनेका काम कर दो तो मैं तुम्हारे

लिये आवश्यक सीधा-सामान उधार दे सकता हूँ।' इस बातको स्वीकारकर आपने प्रतिज्ञा की और आवश्यक अन्न-धन लाये। एकमात्र श्यामसुन्दर जिन्हें प्रिय हैं, ऐसे सन्तोंको आपने बड़े प्रेमसे भोजन कराया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकूबाजीके सन्तोंके प्रति इस भक्तिभावका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कहत कुम्हार, जग कुल निसतार कियौ, 'केवल' सुनाम साधु सेवा अभिराम है।
आये बहु सन्त, प्रीति करी लै अनन्त, जाकौ अन्त कौन पावै, ऐपै सीधौ नहीं धाम है॥
बड़ी ए गरज, चले करज निकासिबे कों, बनिया न देत 'कुवाँ खोदौ कीजै काम है'।
कही बोल कियौ तोल लियौ नीके रोल करि, हितसों जिमाये जिन्हें प्यारो एक श्याम है॥ ५६७॥

(क) श्रीकूबाजीपर भगवत्कृपा

साधु-सन्तोंकी सेवासे अवकाश पाकर श्रीकेवलरामजी महाजनका कुआँ खोदने लगे। खोदते समय आप तोतेकी तरह भगवान्के नामोंका उच्चारण कर रहे थे। कुआँ खुद गया—यह जानकर महाजनको और कूबाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। खोदते-खोदते रेतीली जमीन आ गयी और चारों ओरसे कई हजार मन मिट्टी खिसककर गिर पड़ी। उसमें श्रीकेवलरामजी दब गये। लोगोंने सोचा कि अब इतनी मिट्टीको कैसे हटाया जाय? केवलरामजी तो मर ही गये होंगे, अब मिट्टीको हटानेसे भी क्या लाभ! इस प्रकार शोक करते हुए लोग अपने-अपने घरोंको चले गये। एक महीनेके बाद उस फूटे कुएँके पाससे आने-जानेवाले लोगोंने श्रीराम-नामकी ध्वनि सुनी तो गाँवमें जाकर यह शुभ प्रिय समाचार सुनाया। सुनते ही बहुत-से लोग वहाँ आये और नाम-संकीर्तनकी मधुर-ध्वनि सुनकर प्रेमके आवेशमें आ गये। लोगोंको अपने शरीरकी सुधि-बुधि नहीं रही।

इकट्ठे होकर लोगोंने श्रीकेवलरामजीके ऊपर पड़ी हुई मिट्टीको निकालकर अलग किया। जब लोग आपके पास पहुँचे तो *'हरे राम, हरे राम'* उच्चारण करते सुना। इनकी वाणी सबको बहुत ही प्रिय लगी। जब आपका दर्शन हुआ तो लोग आपके पैरोंमें लिपट गये। जहाँ आप बैठे थे, वहाँ भगवत्कृपासे एक गोल मिहराब-सी (जगह) बन गयी थी, जिसके कारण आपका शरीर सुरक्षित था। लोगोंने देखा कि अधिक दिनोंतक झुककर बैठे रहनेसे आपकी पीठमें कूबड़ निकल आया है। आपके समीप एक जलसे भरा हुआ स्वर्णपात्र रखा था। उसे देखकर लोगोंने श्रीकेवलरामजीको भगवान्का महान् कृपापात्र समझा। फिर कुएँसे निकालकर लोग इन्हें इनके घरपर ले आये। अब तो आपकी बड़ी भारी पूजा-प्रतिष्ठा होने लगी। आपकी भक्ति और महिमाको जानकर लोगोंने बहुत-सी सम्पत्ति आपको भेंट की तथा दीन-दु:खियोंको बाँटी।

श्रीप्रियादासजीने भगवत्कृपाकी इस अद्भुत घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

गए कुवाँ खोदिबे कों, सुवा ज्यौं उचारै नाम, हुआ काम जान्यौ वानै भयौ सुख भारी है।
आई रेत भूमि, झूमि माटी गिरि दबे वामैं, केतिक हजार मन होत कैसे न्यारी है॥
सोक करि आये धाम, 'राम' नाम धुनि काहूँ कान परी, बीत्यो मास, कही बात प्यारी है।
चले वाही ठौर स्वर सुनि प्रीति भौंर परे, रीति कछु और यह सुधि बुधि टारी है॥ ५६८॥
माटी दूर करी, सब पहुँचे निकट जब, बोलिकै सुनायौ हरे बानी लागी प्यारियै।
दरसन भयौ, जाय पाँय लपटाय गए, रही मिहराबसी ह्वै कूबहू निहारियै॥
धर्‌यौ जलपात्र एक, देखि बड़े पात्र जाने, आने निज गेह पूजा लागी अति भारियै।
भई द्वार भीर, नर उमड़ि अपार आये, महिमा बिचारि बहु सम्पति लै वारियै॥ ५६९॥

(ख) श्रीकूबाजीके घरपर श्रीरामजीका स्वयं प्रतिष्ठित होना

एक बार एक महात्माजी अपने मन्दिरमें पधरानेके लिये जयपुरसे बनवाकर श्यामवर्णका बड़ा ही सुन्दर श्रीरामजीका स्वरूप ले जा रहे थे। मार्गमें विश्राम करनेके लिये श्रीकूबाजीके यहाँ रुके। श्रीरामजीके सुन्दर स्वरूपको देखकर श्रीकूबाजीके मनमें विचार उठा कि 'यदि ये प्रभु हमारे ऊपर कृपा करें और यहीं रहकर मेरी सेवा स्वीकार करें तो बहुत अच्छा हो।' इनकी सन्त-सेवा-निष्ठा एवं प्रार्थना स्वीकार करके अन्तर्यामी भगवान् श्रीराम वहीं अचल होकर विराज गये। दूसरे दिन सन्तजी इन्हें ले जानेके लिये उठाने लगे तो अनेक उपाय करनेपर भी भगवान् वहाँसे नहीं उठे। तब श्रीकूबाजीने हँसकर कहा—'ये मुझ दासपर रीझ गये हैं। अतः यहीं रहेंगे। आपके उठानेसे नहीं उठेंगे।' भगवान्ने इनके मनकी बात जान ली थी। अतः इनकी प्रतिष्ठा करके श्रीकूबाजीने इनका नाम 'जानराय रामचन्द्र' रखा। प्रभुको अपने घरमें विराजमानकर तथा उनकी सेवाका सुख प्राप्तकर श्रीकूबाजी अपने अंगमें फूले नहीं समाते थे। झींथड़ामें जानराय रामचन्द्र अबतक विराजमान हैं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सुन्दर स्वरूप श्याम ल्याये पधरायबे कों, साधु निज धाम आय कूबाजू के बसे हैं।
रूप कों निहारि मन में विचार कियौ आप 'करै कृपा मोकों प्रभु' अचल ह्वै लसे हैं॥
करत उपाय सन्त टरत न नेक किहूँ कही जू अनन्त हरि रीझे स्वामी हँसे हैं।
धर्‍यौ 'जानराय' नाम जानि लई हीकी बात, अङ्ग मैं न मात सदा सेवा सुख रसे हैं॥ ५७०॥

(ग) भगवान्द्वारा सन्तसेवाकी आज्ञा प्राप्त होना

एक बार श्रीकूबाजीके मनमें विचार आया कि 'द्वारकाको जाऊँ और शंख-चक्रकी छाप लेकर आऊँ।' आप घरसे चल दिये, परंतु मार्गमें ही भगवान्ने आज्ञा दी कि 'तुम अपने घरपर रहकर सन्त-सेवा करो, तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण हो जायँगे, अतः अन्यत्र कहीं मत जाओ।' ऐसी प्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीकूबाजी घर लौट आये। कुछ दिन बाद घरमें रहते हुए ही इनके शरीरमें शंख-चक्र आदिकी छाप प्रकट हो गयी। इस प्रकारके नये-नये चमत्कार प्रकट हुए, तब लोग श्रीकूबाजीकी कीर्तिका गान करने लगे। द्वारकामें गोमती और सागरका संगम अब नहीं होता है, पहले होता था। सन्तोंके द्वारा यह सुनकर आपने अपनी माला सुमिरनी सन्तोंके हाथ भेज दी। दोनोंके मध्यमें सुमिरनी रखते ही फिर संगम होने लगा। इस प्रकार आपने गोमती-सागरका संगम कराया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

चले द्वारावति, छाप ल्यावैं 'यह मति भई, आज्ञा प्रभु दई फिरि घरही को आये हैं।
'करौ साधु सेवा धरौ भाव दृढ़ हिये मांझ, टरौ जिनि कहूँ, कीजै जे जे मन भाये हैं'॥
गेह ही में शङ्ख चक्र आदि निज देह भए, नये नये कौतुक प्रगट जग गाये हैं।
गोमती को सागर सों सङ्गम हो रह्यो सुन्यौं, सुमिरनी पठायकैं यों दोऊ लै मिलाये हैं॥ ५७१॥

(घ) सन्तसेवाकी अनोखी रीति

श्रीकूबाजीके बहुत-से शिष्य हुए और उन शिष्य-प्रशिष्योंकी अनेक शाखाएँ बढ़ीं। आपके उपदेशानुसार सभी शिष्य-प्रशिष्योंमें साधु-सेवाकी ही विशेष रुचि रहती थी। सन्त-सेवाकी महिमा अपार है, इस रहस्यको प्रकट करके आपने दिखा दिया। एक दिन आपके यहाँ कई साधु-सन्त पधारे। श्रीकूबाजीने पत्नी पूरीसे कहा—'इनके लिये रसोई बना लो।' उसने कहा—'मेरी तबियत खराब है, मैं रसोई नहीं बनाऊँगी। ये तो रोज ही आते रहते हैं, मैं कहाँतक इन्हें बनाकर खिलाऊँगी?' श्रीकूबाजीने कहा—'मैं चूल्हा चेताये देता हूँ, तू जब रोटी बनाने लगेगी तो सन्त-कृपासे तेरी तबियत बिलकुल ठीक हो जायगी।' इस प्रकार बहुत कहने-सुननेपर बाजरेके टिक्कर (मोटी रोटी) साधुओंके लिये उसने बनाये। इसी बीच उसका भाई आ गया तो बड़े उत्साहसे दूसरेके घरसे दूध ले आयी और उसने अपने भाईके लिये खूब सुन्दर खीर बनायी।

श्रीकूबाजीने देखा तो समझ गये कि इसका स्नेह अपने भाईमें अधिक है। तब आपने एक सुन्दर उपाय सोचा। जल पृथ्वीपर गिराकर स्त्रीसे कहा—'तू जल्दी जल भरकर ले आ।' वह जल भरने चली गयी, परंतु उसे भय था कि कहीं खीर साधुओंको न परोस दें। जबतक वह गहरे कुएँसे जल भरकर आये, तबतक आपने खीर परोसकर साधुओंको खिला दी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भये शिष्य शाखा अभिलाषा साधु सेवा ही की महिमा अगाध, जग प्रगट दिखाई है।
आये घर सन्त, तिया करति रसोई, कोई आयौ वाको भाई, ताकों खीर लै बनाई है॥
कूबाजी निहारि जानी याकौ हित सोदर सों कीजियै विचार एक सुमति उपाई है।
कही 'भरि ल्यावो जल' गई डरि कलपै न लई तसमई सब भक्तनि जिमाई है॥ ५७२॥

(ङ) स्त्रीको सन्तसेवाका उपदेश

श्रीकूबाजीकी स्त्री जल्दीसे जल लेकर आयी और जब उसने साधुओंके आगे खीर देखी तो उसके शरीरमें आग-सी लग गयी। अपने भाईके मुखकी ओर देखने लगी। भाई भी उदास हो गया। अपने भाईका तिरस्कार मानकर दुःखके समुद्रमें डूब गयी। श्रीकूबाजीने अपनी स्त्रीको भक्त और भगवान्‌की सेवासे विमुख जानकर उसे घरसे निकाल दिया। वह अपने भाईके साथ पीहर चली गयी और उसने दूसरा पति कर लिया। दूसरे पतिके यहाँ उसके कई लड़के और लड़कियाँ हुईं। कुछ दिन बाद अकाल पड़ गया। अब वह अपने बेटा-बेटियोंका पालन करनेमें असमर्थ हो गयी। तब किसी दूसरी जगह जानेका विचार करने लगी, जहाँ पेट भर सके। पर ऐसा स्थान नहीं मिला, तब बड़ी व्याकुलता हुई। अन्तमें लाचार होकर भूखसे व्याकुल बालक-बालिकाओं तथा उपपतिके साथमें झींथड़ा आयी और श्रीकूबाजीके द्वारपर पड़ गयी तथा उसने अपना असह्य दुःख रो-रोकर सुनाया।

दुःख और दीनतासे भरे स्त्रीके वचन सुनकर श्रीकूबाजीके मनमें बड़ी दया आयी; क्योंकि ये वैष्णव-धर्मका पालन करनेमें बड़े ही निपुण एवं उदार थे। आपने उससे कहा—तू मेरे पति परमात्माको देख, जो मेरा तथा सभी जीवोंका पालन कर रहा है और अपने पतिको देख, जो अपनी स्त्री और अपने बच्चोंका पेट नहीं भर पा रहा है। महान् संकटमें पड़ गया है। अतः अब तुम सब यहीं बाहर द्वारपर पड़े रहो और द्वारके सामने झाड़ू लगा दिया करो। तुम सबको भगवान्‌का प्रसाद पानेको मिल जाया करेगा। श्रीकूबाजीकी महिमा और दयाको देखकर वह रोने लग गयी।

जब तक अकालका समय रहा, तबतक श्रीकूबाजीने उन सबको भोजन-वस्त्र दिया। जब सुकाल आ गया, तब आपने उसे विदा कर दिया। वह भी अपने पति और बालकोंको साथ लेकर चली गयी। वह अपने मनमें बहुत पश्चात्ताप कर रही थी, परंतु वह स्थान और वह सुख उसे कैसे मिल सकता था, जहाँ नित्य सन्तोंकी सभा और सत्संग है, जहाँ रसमयी प्रेमा-भक्तिका रंग छाया रहता है। श्रीकूबाजी महाराज जिस किसीको शिष्य बनाते, उसे साधु-सन्तों तथा दीनोंकी सेवाका ही आदेश-उपदेश देते हुए यही कहते कि 'जिनके रूप और गुण अनन्त हैं, ऐसे प्रभुको प्राप्त करनेकी इच्छा यदि तुम्हारे मनमें है तो कपटको त्यागकर प्रेमसे सन्त-सेवा करो।'

श्रीप्रियादासजीने श्रीकूबाजीकी इस दयालुता और वैष्णवताका इस प्रकार वर्णन किया है—

बेगि जल ल्याई, देखि आगि सी बराई हिये, झाँकैं मुँह भाई, दुख सागर बुड़ाई है।
बिमुख बिचारि, तिया कूबाजू निकारि दई, गई पति कियो और, ऐसी मन आई है॥
पर्‌यौई अकाल बेटा बेटी सो न पालि सकैं, तकै कोऊ ठौर मति अति अकुलाई है।
लिये सङ्ग कर्‌यौ, जोई पुत्र सुता भूख भोई, आय परी झींथड़ा में स्वामी को सुनाई है॥ ५७३॥

नाना बिधि पाक होत, सन्त आवैं जैसे सोत, सुख अधिकाई, रीति कैसे जात गाई है।
सुनत बचन वाके दीन दुख लीन महा, निपट प्रवीन मन माँझ दया आई है॥
देखि पति मेरौ और तेरौ पति देखि याहि कैसे कै निबाहि सकैं परी कठिनाई है।
रहौ द्वार झार्‌यौ करौ पहुँचै अहार तुम्हैं महिमा निहारि दृग धार लै बहाई है॥ ५७४॥
कियौ प्रतिपाल तिया पूरी कौ अकाल मास भयौ जब समै बिदा कीनी उठ गई है।
अति पछितात वह बात अब पावैं कहाँ? जहाँ साधु सङ्ग रंग सभा रसमई है॥
करैं जाकों शिष्य, सन्त सेवा ही बतावैं, 'करौ जो अनन्त रूप गुन चाह मन भई है।
नाभाजू बखान कियौ, मोकों इन मोल लियौ, दियौ दरसाय सब लीला नित नई है॥ ५७५॥

श्रीकूबाजीके यहाँ स्त्रीके चले जानेपर सन्तोंके आवागमन और उनकी सेवामें वृद्धि हो गयी, पर सन्तोंकी सेवाके लिये सेवकोंकी कमी थी, अतः कूबाजीको अथक श्रम करना पड़ता था। तब अपने भक्तोंकी सेवा करनेके लिये त्रिभुवनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजीके सहित वैरागीका वेष बनाकर आये और श्रीकूबाजीसे बोले—***'समै दुकाल अबार गुसाईं। दिन बस रहिहउँ तुम्हरी छाईं॥ देव सेव हम करैं तुम्हारी। करि भोजन टारहिं यहु बारी॥'*** यह सुनकर श्रीकूबाजीने कहा—***'अहो भाग बड़ मम गृह रहिये।' तब सो रमा राम गृह रहिया। निज भक्तन की टहल निबहिया॥*** दम्पती श्रीरमारामजी वैरागी वेशभूषा धारण किये, सेवा करने लगे। सेवाका विस्तार, सन्तोंकी प्रसन्नता और श्रीकूबाजीकी कीर्तिको बढ़ाते हुए इन्हें एक वर्ष हो गया। एक दिन तीस सन्तोंकी जमात आयी। कूबाजीने श्रीजीसे पूछा कि आज सन्तोंके लिये क्या बनाया है? इन्होंने कहा—खिचड़ी। यह सुनकर आपने कहा कि हम तो आज सन्तोंको भात और हलुवा आदि उत्तम पदार्थ पवाना चाहते थे। श्रीजीने कहा—ठीक है, पंगतकी सीताराम बोल दो। सन्त बैठ गये, रसोईघरमें भात-हलुआ आदि पदार्थोंको देखकर आश्चर्यचकित श्रीकूबाजीने कहा—माताजी! यह क्या? खिचड़ीके स्थानपर हलुआ-भात आदि कैसे हो गया! श्रीजीने कहा—यह सब जानराय रामचन्द्रकी लीला समझो। मिट्टीके सकोरे बीस ही थे, सन्त तीस थे। कूबाजीने कहा—अब क्या करूँ? श्रीजीने सोनेके सराव लाकर दे दिये। यह देखकर श्रीकूबाजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। जब सन्त प्रसाद पाकर चले गये, तब इन्होंने श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की और कहा—कृपाकर अपना परिचय दें। तब श्रीसीतारामने प्रकट होकर निज रूपसे दर्शन दिया और कहा कि तुम मेरे प्यारे भक्तोंकी प्रेमसे सेवा करते हो, भक्तोंसे विमुख स्त्रीका तुमने परित्याग किया। इसपर रीझकर हम एक वर्षतक यहाँ रहे और हमने स्वयं सन्त-सेवा की; क्योंकि हमें सन्त-सेवा प्रिय है। ऐसा कहकर प्रभु श्रीरामजी श्रीसीताजीसहित अन्तर्धान हो गये। इससे सन्त-सेवामें इनकी निष्ठा और अधिक बलवती हो गयी। ऐसे सन्त-भक्त थे श्रीकूबाजी।

पण्डा श्रीदेवादासजी

पण्डा श्रीदेवादासजी गूनौर या गौनेर गाँवके निवासी थे। ये श्रीकील्हदेवजीके शिष्य हैं, श्रीदेवादासजीका जन्म तत्कालीन जयपुर राज्यके सींवाड़ ग्राममें हुआ था। इनकी माताका नाम पालीबाई था। ये चार भाई थे और जातिसे बाँगड़ ब्राह्मण थे, किसानी-खेती करते थे। देवादासजीकी पत्नीका नाम रूपादेवी था। इनके नारायणदास, गोपीनाथ, कन्हैयादास और कल्याणदास नामक चार पुत्र थे। घरमें वैष्णवता थी, भक्त और भगवान्‌की सर्वदा सेवा होती थी। सभी भजनोन्मुख थे। एक बार श्रीदेवादासजी खेतपर हल चला रहे थे। मध्याह्नमें इनकी माता छाछ लेकर खेतपर जा रही थीं। दयालु प्रभु श्रीराम एक सन्तका रूप धारणकर माताजीको रास्तेमें मिले। सन्तसेवी स्वभाव था, अतः माताने प्रणाम करके कहा—बाबा! भोजन कर लो। भगवान्‌ने कहा—यह दूसरेके लिये ले जा रही हो, मैं नहीं खाऊँगा। माताने कहा—सब कुछ पहले आप सन्तोंके लिये है, उसके बाद दूसरेके लिये है। मैं खेतपर फिर छाछ पहुँचा दूँगी, आप कृपा करके भोजन

कर लीजिये। सप्रेम आग्रहको प्रभु टाल न सके। उन्होंने बाजरेकी रोटी और राबड़ी (महेरी) खायी। सन्तुष्ट होकर उन्होंने कहा—माताजी! इस गाँवका अनिष्ट होनेवाला है, अतः आप देवादाससे कह दें और शीघ्र इस गाँवको छोड़ दें। बैलगाड़ी-छकड़ोंमें अपना सामान लादकर इस गाँवसे प्रस्थान कर दें और जहाँ गाड़ीका जुवाँ टूट जाय वहीं निवास करें। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

माताने खेत पर आकर विलम्बका कारण और सन्त-प्रभुका आदेश देवादासको सुनाया। देवादासजी हल छोड़कर सन्त-दर्शनके लिये व्याकुल होकर दौड़े। भोजन-स्थलपर भोजन-चिह्न मिले, सन्तको न पाकर रोने लगे। इन्हें अति अधीर देखकर भगवान् वहीं प्रकट हो गये। देवादासजीने चरणोंमें लिपटकर विनती की। भक्त भगवान्‌की शरण छोड़ना नहीं चाहता था, तब भगवान्‌ने कहा—तुम सपरिवार इस गाँवसे प्रस्थान करो, जहाँ जुवाँ टूटेगा, वहीं मेरी एक श्रीमूर्ति तुमको मिलेगी। उसीकी तुम सर्वदा पूजा करना, मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। ये गाँव छोड़कर सपरिवार जाने लगे तो लोगोंने बहुत मना किया, पर आप नहीं माने चले गये। उसी रातको डाकुओंने आकर गाँवको घेरकर लूटा, घरोंको जलाया और लोगोंको मारा। गौनेर आते-आते जुवाँ टूट गया। सभीने उस स्थानपर श्रद्धासहित दण्डवत् प्रणाम किया और भूमिको खोदा तो श्रीजगदीशरूप श्रीप्रभुका विग्रह मिला। बड़ी प्रसन्नतासे अभिषेक और पूजन हुआ। जमींदार ठाकुरोंने श्रीमूर्तिको अपनी भूमिमें मिलनेके कारण अपनी कहा और छीन ले गये। रातको स्वप्नमें भगवान्‌ने आदेश दिया कि मुझे मेरे भक्तके पास पहुँचाओ और उनकी तुम लोग सेवा करो, वे मेरी सेवा करेंगे। ऐसा न करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। प्रातःकाल होते ही ठाकुरोंने मूर्ति दे दी। एक चबूतरेपर पधराकर देवादासजी सेवा करने लगे। तभीसे पण्डा यह उनके नामका विशेषण बन गया।

भगवान्‌ने बाजरेकी रोटी खायी थी, उसे स्मरणकर एक दिन उन्होंने श्रीदेवादासजीको एक मुठ्ठी बाजरा दिया और कहा कि इसे खेतमें बो दो। इन्होंने उसे बोया तो बारह मन बाजरा हुआ। भगवान्‌ने कहा—इसे कोठीमें डाल दो और नीचेके छेदसे निकालकर खर्च करो। यह अक्षय होगा, इसीसे मेरी सेवा और मन्दिरका निर्माण करो। मन्दिर बनने लगा, मजदूर काम करते, सायंकालको मजदूरीमें बाजरा दिया जाता। परंतु नित्य एक मजदूर मजदूरी लेते समय कम हो जाता। अन्तमें श्रीपण्डाजीको अनुभव हुआ कि स्वयं भगवान् भी मजदूर बनकर काम करते हैं। विशाल मन्दिर बन गया, प्रभुकी स्थापना हो गयी।

एक बार दिल्लीका बादशाह ख्वाजा पीरका दर्शन करने अजमेर जा रहा था। गौनेर होकर उसकी सवारी निकली। बादशाहने मन्दिरकी प्रशंसा सुनी तो पण्डाजीसे बोला कि कुछ करामात दिखाओ। आपने साफ इनकार किया और कहा—सेवाको छोड़कर और कुछ करामात मुझमें नहीं है। बादशाहने मन्दिरकी बुर्जको तोड़नेका आदेश दे दिया। तोड़नेवालोंसे सामर्‍याके ठाकुरोंने और इनके पुत्र कल्याणदासने युद्ध किया। मन्दिर नहीं तोड़ने दिया। इस युद्धमें कल्याणदास वीरगतिको प्राप्त हुए। बादशाह स्वयं मन्दिरमें आया तो उसको वहीं ख्वाजापीर और मक्का-मदीना के दर्शन हुए। बड़ी देरतक बादशाह बेसुध रहा, अन्तमें सावधान होकर उसने क्षमा-प्रार्थना की और ८७० बीघा जमीनका पट्टा श्रीठाकुरजीको दिया।

कहींका एक राजा मनमें यह संकल्प करके दर्शन करने चला कि यदि मन्दिरमें पहुँचनेपर घेवरका भोग लगा मिलेगा तो मैं देवादासजी पण्डाको सिद्ध सन्त मानूँगा। इधर ठाकुरजीने कहा—घेवर बनवाकर भोग लगाओ। पण्डाजीने कहा—यहाँ किसीको बनाना नहीं आता है और आज घेवरके भोगका कोई पर्व भी तो नहीं है। तब प्रभुने स्वयं घेवर बनाया, घेवर भोग लगे, उस राजाने दर्शनकर प्रसाद पाया तो उसे बड़ी श्रद्धा-भक्ति हुई। वह सदाके लिये सेवक बन गया।

देवादासजीकी माताका भगवान्‌में बड़ा-भारी अनुराग था। एक दिन उसने प्रभुसे कहा—भगवन्! मेरे एक बेटेके कोई संतान नहीं है। आप कृपा करें। भगवान्‌ने कहा—उसके पेटपर तुलसी-चन्दनसे लिख दो

कि—'पुत्र हो।' माताने ऐसा ही किया, उसके भी संतान हो गयी। देवादासजीका एक भानजा था। उसका नाम था गोपाल। उसकी और भगवान् जगदीशकी बड़ी मैत्री थी। एक बार गोपाल भगवान्की रसोईके निमित्त लकड़ी लेने गया और बड़े लक्कड़को उठाने लगा, पर वह उठ नहीं रहा था, तो स्वयं भगवान्ने उठवाया और कन्धा लगाकर मन्दिरतक लकड़ी लाये। बादमें रहस्य खुला तो सभीने श्रीचरणोंमें पुनः मस्तक नवाया। गौनेरमें एक बड़ा-भारी तालाब और मन्दिर है। आज भी वहाँ देवादासजीकी छतरीके दर्शन होते हैं। उसपर सं० १५१५ अंकित है, वे श्रीकील्हदेवजीके शिष्य थे—यह भी लिखा है। देवा पण्डाके वंशज गलता गद्दीको गुरुद्वारा मानते हैं। वहींकी शिष्यता स्वीकार करते हैं। रानीके पुत्र नहीं था, उसने मनौती किया तो उसके पुत्र हुआ। तब जयपुरके राजा पृथ्वीसिंह-प्रतापसिंहजीने एक गाँव भेंटमें दिया। अनेक चमत्कारोंके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। प्रत्येक द्वादशीको मेला लगता है और भादौं सुदी १२ को विशेष बड़ा मेला लगता है। मन्दिरोंमें जो सेवार्थ नियुक्त होता है, वह घरमें न रहकर मन्दिरमें ही निवास एवं ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करता है। श्रीपयहारीजीके शिष्योंमें जो श्रीदेवाजी हैं, वे डीडवाणेके हैं, आज भी वहाँ उनकी गद्दी है। ***'देवाहित सित केश'*** वे दूसरे हैं।

श्रीअग्रदेवजीके शिष्य

जंगी प्रसिध प्रयाग बिनोदि पूरन बनवारी।
नरसिंह मल भगवान दिवाकर दृढ़ ब्रतधारी॥
कोमलहृदय किसोर जगत जगनाथ सलूधौ।
औरौ अनुग उदार खेम खीची धरमधीर लघु ऊधौ॥
त्रिबिध ताप मोचन सबै सौरभ प्रभु जिन सिर भुजा।
(श्री) अग्र अनुग्रह तें भए सिष्य सबै धर्म कि धुजा॥ १५०॥

श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्यजीके अनुग्रहसे ये सब शिष्य परमधर्मकी ध्वजा हुए। उनके नाम हैं—श्रीजंगीजी, प्रसिद्ध सन्त श्रीप्रयागदासजी, श्रीविनोदीजी, श्रीपूरनदासजी, श्रीबनवारीदासजी, श्रीनरसिंहदासजी, भक्तवर श्रीभगवानदासजी, भगवद्भजनके नियमोंका दृढ़तासे पालन करनेवाले श्रीदिवाकरजी, कोमल एवं सरस हृदयवाले श्रीकिशोरदासजी, जगत्में जागनेवाले (विषयोंसे सावधान रहनेवाले) श्रीजगन्नाथजी, श्रीसलूधौजी, दूसरे उदार अनुचर (गुरुके अनुगामी) खीची वंशके खेमजी तथा धर्मका धैर्यपूर्वक पालन करनेवाले लघु उद्धवजी आदि। सौरभ प्रभु श्रीअग्रदेवजीने आशीर्वादात्मक अपना करकमल इनके सिरपर रखा, इससे ये शरणागत जीवोंको दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे मुक्त करनेवाले हुए॥ १५०॥

श्रीअग्रदेवजीके कुछ शिष्योंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीजंगीजी

ये बड़े ही सिद्ध-प्रसिद्ध एवं भजनानन्दी सन्त थे। एक बार तीर्थाटन एवं भक्ति-प्रचारार्थ भ्रमण करते-करते एक विरक्त साधुके स्थानमें जाकर ठहरे। वे स्थानधारी सन्त चिन्तित थे। उसका कारण यह था कि उनका स्थान एक यवनके किलेके पास था। उसके अधिकारी किलेका विस्तार करना चाहते थे, अतः उन्होंने स्थानधारी सन्तसे कहा कि तुम इस स्थानको छोड़ दो, कहीं दूसरी जगह जाकर रहो। सन्त अभी निश्चय नहीं कर पाये थे कि स्थान छोड़कर अन्यत्र कहाँ जायँ? इस अपनी चिन्ताको वे श्रीजंगीजीको सुना ही रहे थे कि इतनेमें ही बहुतसे यवन आ गये और उन्होंने कहा कि तुम फौरन यहाँसे हट जाओ। श्रीजंगीजीने जंग ठान दिया और उनसे कहा—तुम लोग जाकर अपने बादशाहसे कह दो कि वह हम लोगोंके रहने-

योग्य ऐसा ही दूसरा स्थान बनवाकर दे, तब हम इस स्थानको खाली करेंगे, उसके पहले नहीं। मदान्ध यवनोंने श्रीजंगीजीकी बातपर ध्यान नहीं दिया और स्थानको तोड़ने-फोड़ने, गिराने-उजाड़ने लगे। तब श्रीजंगीजी अपना प्रभाव दिखानेको विवश हो गये। आप आसनसे उठे और किलेके पास जाकर आपने उसमें एक ऐसा चरण-प्रहार किया कि वह दीवाल धराशायी हो गयी। यह देखकर उन यवनोंके होश उड़ गये। उन्होंने जाकर बादशाहसे कहा। उसने आकर चरणोंमें गिरकर विनती एवं क्षमा-प्रार्थना की। भेंटमें श्रीजंगीजीको बहुत-सा धन दिया। आपने वह धन सन्त-सेवामें लगा दिया। इस प्रकार आपने स्थान एवं सन्तोंकी रक्षा की।

श्रीविनोदीजी

श्रीविनोदीदासजी महान् भगवद्भक्त थे। एक बार आप मानसी पूजा कर रहे थे। बहुत देरतक नेत्र बन्द किये बैठे रहे। मानसी-अर्चन पूर्ण करके आपने आँखें खोलीं। उस समय वहीं समीप बैठे एक भोले-भाले आपके शिष्यने पूछा—प्रभो! नेत्र बन्द करके इतनी देरतक आप क्या कर रहे थे, उसे बताइये। तब आपने कहा—मैं नेत्र मूँदकर भगवान् श्रीसीतारामजीकी मानसी-पूजा कर रहा था। यह सुनकर उस शिष्यने पुनः कहा—महाराजजी! पूजनके बाद तो चरणामृत-प्रसाद मिलता है, उसे तो आपने दिया ही नहीं। गुरुदेवने कहा—हाँ, तुमने ठीक कहा, लो, भगवान्का चरणामृत। ऐसा कहकर आपने समीप रखे जलपात्रसे एक चुल्लू जल दे दिया। उसके पीते ही उसके हृदयमें भगवान् श्रीसीतारामजीका दिव्य प्रकाश छा गया। सर्वत्र श्रीसीतारामजीके दर्शन होने लगे। सम्पूर्ण विश्वके वास्तविक रूपका उसे बोध हो गया, वह कृतार्थ हो गया। श्रीविनोदीदासजीका ऐसा प्रभाव था। श्रीबालकरामजी कहते हैं कि—श्रीअग्रदेवाचार्यजीके सभी शिष्य ऐसे ही महान् प्रभाववाले थे। विद्वान् कवि अपनी बुद्धिके अनुसार उनका यशोगान करते हैं।

श्रीटीलाजीका वंश

अंगज परमानंद दास जोगी जग जागै।
खरतर खेम उदार ध्यान (केसो) हरिजन अनुरागै॥
सस्फुट त्योला शब्द लोहकर बंस उजागर।
हरीदास कपि प्रेम सबै नवधा के आगर॥
अच्युत कुल सेवैं सदा दासन तन दसधा अघट।
भरतखंड भूधर सुमेर टीला लाहा (की) पद्धति प्रगट॥ १५१॥

संसारमें भरतखण्डरूपी सुमेरुपर्वतके शिखरके समान श्रीटीलाजी एवं उनके विरक्त शिष्य श्रीलाहाजीकी परम्परा बहुत प्रसिद्ध हुई। श्रीटीलाके पुत्र शिष्य श्रीपरमानन्ददासजी हुए; ये जगत्में जागते (सावधान रहते) हुए भजनपरायण रहे। श्रीजोगीदासजी, अति तीव्र वैराग्य और विवेकवाले श्रीखेमजी, उदार मनवाले श्रीध्यानदासजी, श्रीकेशवदासजी—सभी हरिभक्तोंके अनुरागी थे। स्पष्ट वाणीवाले श्रीत्यौलाजी लोहार वंशमें परम प्रसिद्ध थे। श्रीहरिदासजीका श्रीहनुमान्जीमें परम प्रेम था। श्रीटीलाजीकी परम्पराके सभी गृहस्थ-विरक्त सन्त नवधा-भक्तिकी उपासनामें प्रवीण, वैष्णवोंकी सेवा और वैष्णवोंमें प्रेमाभक्ति करनेवाले हुए॥ १५१॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीटीलाजी

श्रीटीलाजी महान् गोभक्त थे, एक बार वे गोचारण करते हुए वनमें ही भजन करने लगे। इसी बीच एक महान् सिद्ध-सन्त पधारे और बोले कि 'मुझे दूध पिलाओ।' आपने सन्तको भगवन्तके तुल्य मानकर

योग्य ऐसा ही दूसरा स्थान बनवाकर दे, तब हम इस स्थानको खाली करेंगे, उसके पहले नहीं। मदान्ध यवनोंने श्रीजंगीजीकी बातपर ध्यान नहीं दिया और स्थानको तोड़ने-फोड़ने, गिराने-उजाड़ने लगे। तब श्रीजंगीजी अपना प्रभाव दिखानेको विवश हो गये। आप आसनसे उठे और किलेके पास जाकर आपने उसमें एक ऐसा चरण-प्रहार किया कि वह दीवाल धराशायी हो गयी। यह देखकर उन यवनोंके होश उड़ गये। उन्होंने जाकर बादशाहसे कहा। उसने आकर चरणोंमें गिरकर विनती एवं क्षमा-प्रार्थना की। भेंटमें श्रीजंगीजीको बहुत-सा धन दिया। आपने वह धन सन्त-सेवामें लगा दिया। इस प्रकार आपने स्थान एवं सन्तोंकी रक्षा की।

श्रीविनोदीजी

श्रीविनोदीदासजी महान् भगवद्भक्त थे। एक बार आप मानसी पूजा कर रहे थे। बहुत देरतक नेत्र बन्द किये बैठे रहे। मानसी-अर्चन पूर्ण करके आपने आँखें खोलीं। उस समय वहीं समीप बैठे एक भोले-भाले आपके शिष्यने पूछा—प्रभो! नेत्र बन्द करके इतनी देरतक आप क्या कर रहे थे, उसे बताइये। तब आपने कहा—मैं नेत्र मूँदकर भगवान् श्रीसीतारामजीकी मानसी-पूजा कर रहा था। यह सुनकर उस शिष्यने पुनः कहा—महाराजजी! पूजनके बाद तो चरणामृत-प्रसाद मिलता है, उसे तो आपने दिया ही नहीं। गुरुदेवने कहा—हाँ, तुमने ठीक कहा, लो, भगवान्‌का चरणामृत। ऐसा कहकर आपने समीप रखे जलपात्रसे एक चुल्लू जल दे दिया। उसके पीते ही उसके हृदयमें भगवान् श्रीसीतारामजीका दिव्य प्रकाश छा गया। सर्वत्र श्रीसीतारामजीके दर्शन होने लगे। सम्पूर्ण विश्वके वास्तविक रूपका उसे बोध हो गया, वह कृतार्थ हो गया। श्रीविनोदीदासजीका ऐसा प्रभाव था। श्रीबालकरामजी कहते हैं कि—श्रीअग्रदेवाचार्यजीके सभी शिष्य ऐसे ही महान् प्रभाववाले थे। विद्वान् कवि अपनी बुद्धिके अनुसार उनका यशोगान करते हैं।

श्रीटीलाजीका वंश

अंगज परमानंद दास जोगी जग जागै।
खरतर खेम उदार ध्यान (केसो) हरिजन अनुरागै॥
सस्फुट त्योला शब्द लोहकर बंस उजागर।
हरीदास कपि प्रेम सबै नवधा के आगर॥
अच्युत कुल सेवैं सदा दासन तन दसधा अघट।
भरतखंड भूधर सुमेर टीला लाहा (की) पद्धति प्रगट॥ १५१॥

संसारमें भरतखण्डरूपी सुमेरुपर्वतके शिखरके समान श्रीटीलाजी एवं उनके विरक्त शिष्य श्रीलाहाजीकी परम्परा बहुत प्रसिद्ध हुई। श्रीटीलाके पुत्र शिष्य श्रीपरमानन्ददासजी हुए; ये जगत्‌में जागते (सावधान रहते) हुए भजनपरायण रहे। श्रीजोगीदासजी, अति तीव्र वैराग्य और विवेकवाले श्रीखेमजी, उदार मनवाले श्रीध्यानदासजी, श्रीकेशवदासजी—सभी हरिभक्तोंके अनुरागी थे। स्पष्ट वाणीवाले श्रीत्यौलाजी लोहार वंशमें परम प्रसिद्ध थे। श्रीहरिदासजीका श्रीहनुमान्‌जीमें परम प्रेम था। श्रीटीलाजीकी परम्पराके सभी गृहस्थ-विरक्त सन्त नवधा-भक्तिकी उपासनामें प्रवीण, वैष्णवोंकी सेवा और वैष्णवोंमें प्रेमाभक्ति करनेवाले हुए॥ १५१॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीटीलाजी

श्रीटीलाजी महान् गोभक्त थे, एक बार वे गोचारण करते हुए वनमें ही भजन करने लगे। इसी बीच एक महान् सिद्ध-सन्त पधारे और बोले कि 'मुझे दूध पिलाओ।' आपने सन्तको भगवन्तके तुल्य मानकर

साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और कहा—हे श्रीरामजी महाराज! आप कृपा करके थोड़ी देर इस स्थानपर ही विराजें, मैं अभी दूध लाता हूँ। सन्तने कहा—कहीं लेने मत जाओ, उस गायको दुहकर ले आओ। श्रीटीलाजीने कहा—भगवन्! यह गाय तो बाँझ है। इसके थनोंमें दूध कहाँसे आयेगा? पुनः सन्तने कहा—तुम जाकर देखो तो सही, बिना देखे ही क्यों इनकार करते हो? तब श्रीटीलाजीने जाकर देखा तो उसके स्तन दुग्धयुक्त दिखायी पड़े। हाथ लगाते ही दुग्धधारा प्रवाहित हो चली। आपने आश्चर्यचकित होकर दूध दुहकर सन्तको दिया। सन्तने दुग्धपान किया और शेष थोड़ा-सा प्रसाद टीलाजीको भी उन्होंने दिया। उसे पीते ही टीलाजीको सब सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। हृदयमें भगवत्प्रेम प्रकाशित हो गया। श्रीटीलाजी तो विभोर हो गये और सन्त-भगवान् अन्तर्धान हो गये। वस्तुतः इस रूपसे श्रीपयहारीजीने ही आपपर कृपा की थी। कालान्तरमें पुनः सन्तोंकी प्रेरणासे आकर इन्हें दीक्षा भी दी।

श्रीटीलाजीकी गृहस्थ एवं विरक्त दोनों परम्पराएँ प्राप्त होती हैं, दोनोंमें महान् सिद्ध सन्त हुए हैं। इस छप्पयमें उन्हीं सबका स्मरण किया गया है। श्रीटीलाजीका जन्म खाटू खण्डेलाके पास कालूड़ा गाँवमें हुआ। ये परम प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध जोशी गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पुत्र श्रीपरमानन्ददासजीका जन्म भी वहीं हुआ। उनके एक पुत्री भी थी, जिसका नाम लाड़ाबाई था। उसके पतिदेव श्रीखेमजी भी महान् भक्त थे, इनका नाम भी इस छप्पयमें लिया गया है। दोनों ही सिद्ध भक्त थे, दम्पतीने चक्रतीर्थ गाँवमें रहकर भजन एवं भक्ति-प्रचार किया। श्रीटीलाजीकी भक्तिके अतुल प्रभावसे उनके पुत्र श्रीपरमानन्ददासजी एवं उनके चार पुत्र १. जोगीदास, २. हरिदास, ३. ध्यानदास, ४. केशवदासजी भी बड़े भक्त हुए। ये सब बड़े सन्तसेवी एवं भगवत्प्रेमी हुए। मनोहरपुराके राव लूणकरणजीने श्रीटीलाजीकी भक्ति एवं सन्त-सेवासे प्रभावित होकर वि० सं० १६०२ में इनको ४०० बीघा भूमि भेंट की, जिसके पट्टे एवं सनदें खोरीमें अब भी सुरक्षित हैं। श्रीटीलाजीके पौत्र श्रीकेशवदासजीका जन्म यहीं खोरीमें हुआ था। इनके पिता यहीं आ गये थे। खोरी गाँव जयपुर राज्यमें शाहपुराके पास है। यहींपर श्रीपरमानन्ददासजीकी छतरी है। भावुक भक्त वहाँ पहुँचकर दर्शन-प्रणाम करके अपनेको कृत-कृत्य मानते हैं। श्रीजोगीदासजीने खेलणा ग्राममें अपना एक मन्दिर बनाया। इनके चमत्कारोंसे प्रभावित होकर बादशाहने इन्हें जागीर दी। मन्दिरमें अबतक श्रीजोगीदासजीके वंशज पुजारी हैं।

श्रीलाहाजी

श्रीलाहाजी श्रीटीलाजीके विरक्त शिष्य थे। ये खाती (बढ़ई) जातिको पवित्र करनेके लिये उसमें अवतीर्ण हुए थे। अरणिया ग्राममें स्थित श्रीटीलाजीकी गद्दीपर लाहाजी विराजे और इन्होंने बड़े सद्भावपूर्वक सन्त-सेवा की। इन्हींकी परम्पराके विरक्त सन्त अबतक मन्दिरमें सेवा-पूजा करते हैं। अरणियासे तीन कोस दूर खोरा ग्राममें भी रहकर श्रीलाहाजीने भजन किया था, यहाँ भी इनकी गुफा, भजन-स्थली एवं मन्दिर दर्शनीय हैं। इन्हींकी एक शाखाका मन्दिर रामपुरमें है। श्रीटीलाजी गुरु-आज्ञासे नित्य मानसी-सेवा किया करते थे। आपने लाहाजीको दीक्षा देकर इन्हें भी मानसी-सेवाकी विधि बतायी। गुरु-कृपासे श्रीलाहाजीकी मानसी-सेवा भी सिद्ध हो गयी। एक बार श्रीटीलाजी मन्दिरमें बैठकर मानसी-पूजा कर रहे थे। बाहर बैठे श्रीलाहाजी भी ध्यानमें अपने गुरुदेवकी मानसी-सेवाको देख रहे थे। इसी बीच एक कोई सेवक आया और उसने लाहाजीसे बार-बार पूछा कि बताओ, श्रीगुरुमहाराज कहाँ हैं? लाहाजीने डाँटकर कहा—यहाँ बताऊँ कि वहाँ बताऊँ?।' कुछ देर बाद उसको दूसरे शिष्योंने बताया कि जाकर मन्दिरमें दर्शन करो। तब उसने जाकर मन्दिरमें दर्शन किया और श्रीलाहाजीकी शिकायत की। श्रीटीलाजीने श्रीलाहाजीको बुलवाया और पूछा कि तुमने इनके पूछनेपर ठीक उत्तर न देकर अशिष्ट व्यवहार क्यों किया? श्रीलाहाजीने कहा—आपकी आज्ञा है, अतः बताता हूँ—'आप उस समय शरीरसे तो मन्दिरमें आसनपर विराजमान थे और मनसे गौशालामें थे।' तब मैं आपको

कहाँ बताता? इस रहस्यकी बातको सुनकर श्रीटीलाजी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीलाहाजीको छातीसे लगाकर इन्हें शुभाशीष प्रदान करके कहा कि तुम्हारी बात सत्य है। सेवकने सुना तो उसे भी श्रीलाहाजीमें अपार श्रद्धा हुई।

श्रीपरमानन्ददासजी

श्रीपरमानन्ददासजी श्रीटीलाजी महाराजके पुत्र थे। आपने सन्तोंकी सेवा बहुत अच्छी प्रकारसे की। आप योगकी युक्तियोंसे सम्पन्न थे। सर्वथा चित्तसे श्रीसीतारामजीका चिन्तन करते रहते थे। एक बार अकाल पड़ा, लोग भूखों मरने लगे। विवश होकर गाँव छोड़कर भाग चले। तब आपने सबको रोका और कहा कि आपके गाँवमें ही अनाजका एक बहुत बड़ा भण्डार अमुक स्थानपर है, उसमेंसे निकाल-निकालकर सभी लोग सानन्द खायें। ग्रामवासियोंने कहा—महाराज! हम लोगोंने वहाँ देख लिया। वह भण्डार समाप्त हो गया, अब वहाँ एक दाना भी नहीं है। आपने कहा—तुम लोग बिना देखे पहले ही क्यों मना कर रहे हो, जाकर देखो तो। सभी लोगोंने निर्दिष्ट स्थानपर जाकर भण्डारको खोला, तो उसमें सुन्दर धान भरे हुए थे। आश्चर्यचकित होकर सभीने श्रीपरमानन्दजीके चरणोंमें सप्रेम बारम्बार नमन किया। आपका पवित्र सुयश सर्वत्र व्याप्त हो गया। लोगोंने उसमेंसे धान निकाल-निकालकर खाया। इस प्रकार आपने दया करके सभीके प्राणोंकी रक्षा की। इससे सभीमें भक्ति स्थिर हुई।

श्रीत्यौलाजी

आप लोहार जातिमें उत्पन्न परम श्रीराम-भक्त थे। सन्त-सेवामें लगे ही रहते थे, दिन है या रात इसे नहीं देखते। अपने धन, धाम, तन, मन, स्त्री, पुत्रोंको सेवामें लगाये ही रहते थे। घोड़ोंकी टापोंमें नाल जड़नेमें आप अत्यन्त प्रवीण थे। एक बार उस नगरके मालिक सरदारने आपको नाल जड़नेके लिये बुलाया। आप सन्त-सेवामें दत्तचित्त थे, अतः सरदारके बुलानेपर भी नहीं गये। जब चार बार दूतोंकी बात आपने नहीं सुनी। तब बादशाहसे लोगोंने इनकी शिकायत की। इसपर रुष्ट होकर राजाने आदेश दिया कि 'त्यौलाको पकड़कर लाओ और उसे ऐसी मार लगाओ कि वह हा-हा, खाने लगे।' इसी समय श्रीरघुनाथजीने त्यौलाका रूप धारण किया और बादशाहके पास पहुँचे और बोले कि मैं भक्त-भगवत्सेवामें व्यस्त था। अवकाश न मिलनेके कारण विलम्ब हुआ। ऐसे मधुर शब्दोंसे प्रभुने राजाके रोषको शान्त किया और घोड़ोंके पैरोंमें नालें जड़ीं। पश्चात् अपने श्रीधामको चले गये। श्रीत्यौलाजीको राजाकी आज्ञाका ध्यान आया तो आप राजद्वार पहुँचे। राजाने कहा—अभी-अभी आप नाल जड़कर गये हैं, पुनः कैसे आये? आपने कहा—मैं तो अभी आ ही रहा हूँ। यह सुनकर राजाने समझ लिया कि इनके बदले प्रभुने आकर दर्शन दिया। 'धन्य है श्रीत्यौलाजी आपकी भक्ति'—ऐसा कहकर राजा त्यौलाजीके चरणोंमें गिर पड़ा। दोनों परस्पर एक-दूसरेको धन्यवाद दे रहे थे। अब श्रीत्यौलाजीकी भक्ति प्रकट हो गयी। लोगोंने इनके आदेश, उपदेशोंको सादर सुना और धारण किया तथा सभी भगवद्भक्त होकर सन्त-भगवन्तकी सेवामें तल्लीन हो गये।

श्रीकान्हरजी

चारि बरन आश्रम्म रंक राजा अन पावै।
भक्तनि को बहुमान बिमुख कोऊ नहिं जावै॥
बीरी चंदन बसन कृष्ण कीरत्तन बरषै।
प्रभु के भूषन देय महामन अतिसय हरषै॥
बीठल सुत बिमल्यो फिरै दास चरन रज सिर धरै।
मधुपुरी महोछौ मंगलरूप कान्हर कैसो को करै॥ १५२॥

मथुरापुरीमें जैसा मंगलमय महोत्सव श्रीकान्हरजी करते थे। वैसा महोत्सव उन्हें छोड़कर और कौन कर सकता है अर्थात् कोई नहीं कर सकता। इनके महान् महोत्सवोंमें चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके लोग अन्न-प्रसाद पाते थे। भक्तोंका बहुत अधिक सम्मान होता था। इनके महोत्सवोंमें आकर कोई भी निराश एवं दुखी होकर नहीं लौटता था। अखण्ड नाम-संकीर्तनकी झड़ी लगी रहती थी। उसमें बीरी, चन्दन, वस्त्र और आभूषण आदिकी वर्षा करते थे। परम उदार श्रीकान्हरजी नाम-गुणका कीर्तन करनेवाले समाजियोंको भगवान्‌के आभूषणतक न्यौछावर कर देते थे और देकर बहुत प्रसन्न होते थे। उमंगसे भरकर श्रीविट्ठलजीके सुपुत्र इन उत्सवोंमें इतस्ततः सभी भक्तोंके समीप जा-जाकर उनके श्रीचरणोंकी रजको अपने मस्तकपर धारण करते थे॥ १५२॥

श्रीकान्हरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

कान्हरदास पुष्टिमार्गीय भक्त थे। इनके परिवारके सम्बन्धमें कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी जब द्वारका पधारे थे, उस यात्रामें वे अहमदाबाद भी कुछ दिन ठहरे थे। तब उन्होंने कन्हैयालाल शालको कान्हरदासके साथ ही पुष्टि-मार्गमें दीक्षित किया था। कान्हरदास जातिके क्षत्रिय थे। वे वैष्णवोंका नित्य सत्संग किया करते थे। सत्संगके प्रभावका कान्हरदासने प्रत्यक्ष अनुभव किया था। राजनगरमें इनका निवास-स्थान था। छोटे-से घरमें ही ठाकुरजीकी सेवा-पूजा एवं नित्य-कीर्तनका आयोजन करना कान्हरदासका स्वभाव बन गया था। ये सद्‌गृहस्थ थे और इन्होंने वैष्णवोंका सत्कार करनेमें तन-मन-धन अर्पण कर दिया था। सम्प्रदायमें इनके कई कीर्तन प्रचलित हैं।

गोस्वामी विट्ठलनाथजीसे दीक्षा ग्रहण करनेके बाद उनके सान्निध्यसे इन्हें श्रीकृष्णकी लीलाका साक्षात्कार हुआ था। गोस्वामी गिरधरदासजीके व्यक्तित्वसे भी यह प्रभावित हुए थे। लीला-कीर्तनमें रात-दिन तन्मय रहकर श्रीकृष्णकी यशोगाथाका गान करना इनका परम ध्येय था। अपने समस्त कलि-कल्मष और आधि-व्याधियोंको कीर्तन एवं भजनसे काटते रहना इन्हें सिद्ध था।

श्रीनीवाजी

आवहिं दास अनेक उठि सुआदर करि लीजै।
चरन धोय दंडौत सदन में डेरा दीजै॥
ठौर ठौर हरिकथा हृदय अति हरिजन भावैं।
मधुर बचन मुँह लाय बिबिध भांतिन्ह जु लड़ावैं॥
सावधान सेवा करै निर्दूषन रति चेतसी।
भक्तनि सों कलिजुग भले निबही 'निंबा' खेतसी॥ १५३॥

श्रीनीवाजी और श्रीखेतसी (श्रीखेतसिंह)—इन दोनोंने इस कलियुगमें भी भक्तोंके साथ भली प्रकार वैसा ही प्रेम-परिपूर्ण व्यवहार किया, जैसा कि किसान अपने खेतोंसे करता है। प्रायः नित्य ही इनके घरपर भगवद्भक्त आया ही करते थे। भक्तोंके आते ही उठकर आप उनका स्वागत-सत्कार करते थे। उनके चरणोंको धोकर चरणामृत लेते, साष्टांग दण्डवत्प्रणाम करते, फिर घरके भीतर ले जाकर उनका आसन लगवाते। आप भगवद्भक्तोंको हृदयसे प्यार करते थे और जहाँ-तहाँ कथा-कीर्तनका आयोजन करते थे। मुखसे श्रद्धा-भक्तियुक्त मधुरवचनोंको कहकर अनेक प्रकारसे भक्तोंको लाड़-प्यार करते थे। हृदयमें दोषरहित निष्काम-निष्कपट प्रेम था। अतः सर्वदा सावधान होकर भक्त और भगवन्तकी सेवा करते थे॥ १५३॥

श्रीनीवाजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनीवाजी क्षत्रियकुलोत्पन्न थे, आपके पिताजीका नाम श्रीखेतसिंहजी था। इन्हें सन्त-सेवामें परमानुराग था। एक बार घरके व्यापार-व्यवहारमें इन्हें आर्थिक संकट आ गया। उसका कारण सन्त-सेवामें व्यय तो अधिक होता। खेती आदिसे उतना लाभ नहीं होता, परंतु साधुओंकी सेवा उसी प्रकार चलती रही; अतः एक ब्राह्मणदेवताका बड़ा-भारी कर्जा हो गया। कुछ दिनोंके बाद माँगनेपर भी ये कर्जा अदा नहीं कर सके तब खीझकर महाजन ब्राह्मणदेव इनके द्वारपर धरना देकर बैठ गये। भूखे-प्यासे ब्राह्मणके भयसे घरमें किसीने भी कुछ नहीं खाया-पीया। अन्तमें इन दोनों भक्तोंने निश्चय किया कि 'कल घर-बार बेंचकर इस ब्राह्मणका कर्ज चुका दिया जाय। भक्तकी इस चिन्तासे चिन्तित प्रभु श्रीरामजीने नीवाजीका रूप धारण किया और रातको घरपर आकर ब्राह्मणसे उन्होंने कहा—विप्रदेव! आप यह सोना लीजिये और भोजन कीजिये। सोनेकी तौल और मोल फिर प्रातः बाजारमें हो जायगी। ब्राह्मणने ऐसा ही किया और प्रातः आकर नीवाजीसे कहा—चलिये, सोनेको तोलवाकर बेंच दीजिये। नीवाजीने आश्चर्यचकित होकर कहा—कैसा सोना? ब्राह्मणने कहा—आपने ही तो रातमें दिया था, ऐसा कहकर उस ब्राह्मणने सोना दिखाया। श्रीनीवाजी श्रीराम-कृपाका अनुभव करके बेसुध हो गये। पश्चात् अर्थ-संकट दूर हो गया। इस प्रकार श्रीरामजीने श्रीनीवाजीको सन्त-सेवामें सहयोग दिया।

श्रीतूँवर भगवानजी

यह अचरज भयौ एक खाँड़ घृत मैदा बरषै।
रजत रुक्म की रेल सृष्टि सबही मन हरषै॥
भोजन रास बिलास कृष्न कीरत्तन कीनो।
भक्तनि को बहुमान दान सबही को दीनो॥
कीरति कीनी भीमसुत (सुनि) भूप मनोरथ आन के।
बसन बढ़े कुंतीबधू त्यों तूँबर भगवान के॥ १५४॥

भक्तवर श्रीभगवानदासजी तूँवरके महोत्सवमें सभी वस्तुएँ इस प्रकार बढ़ीं, जैसे दुःशासनके द्वारा खींचे जानेपर श्रीद्रौपदीजीके वस्त्र बढ़े थे। आपके एक महोत्सवमें महान् आश्चर्य यह हुआ कि खाँड़, घृत, मैदा आदिकी खूब वर्षा हुई। सोने और चाँदीके सिक्कोंकी भरमार हो गयी। आशासे अधिक दान-मान प्राप्तकर सृष्टिके सभी प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस उत्सवमें साधु-ब्राह्मण और दीन-गरीबोंको खूब भोजन कराया गया। रासलीलाएँ हुईं और कई दिनतक अखण्ड श्रीहरिनाम-संकीर्तन हुआ। भक्तोंका विशेष सम्मान हुआ और सभी लोगोंको दान-मानसे सन्तुष्ट किया गया। श्रीभीमजीके पुत्र भगवानदासजीने ऐसी कीर्ति की कि उस उत्सवका समाचार सुनकर दूसरे राजा लोग भी इच्छा करने लगे कि हम भी ऐसा उत्सव करें। पर वे मनोरथ करके ही रह गये। तूँवर श्रीभगवानदासजीका-सा महोत्सव कोई कर नहीं सका॥ १५४॥

श्रीतूँवर भगवानजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवानदास तूंवर पाण्डुवंशी क्षत्रिय थे। इनके पिता पाटणसे आकर गाँवड़ीमें बस गये थे। छन्द ९९ में सोम, भीम आदिका जो उल्लेख है, वे सब इसी राजवंशके हैं। यह वंश जयपुर राज्यके उस प्रदेशके गाँवमें फैला हुआ है। गाँवड़ीमें पश्चिमकी ओर तीन कोसकी दूरीपर भूदौली गाँवमें अपने एक कुटुम्बी घरानेमें भीमजीने अपने पुत्र भगवानदासको दत्तकके रूपमें दिया था। कुछ दिनोंके बाद उस घरानेमें एक पुत्रका जन्म होनेपर भगवानदासजीने अपने-आप ही वहाँसे पृथक् होकर भूदौलीसे दस मील दूर दक्षिणमें अपना स्वतन्त्र शासन जमा लिया। उस गाँवको चीपलाटा कहते हैं। आप बड़ी उदार प्रकृतिके थे। जिस घरानेमें आप

दत्तकरूपमें रहे थे, वहाँकी एक राजकुमारी मारवाड़में ब्याही थी। एक बार परिस्थितिवश उसने अपने पीहर भूदौलीवालोंसे सहयोग चाहा। जब वे सहायता न दे सके। तब उसने आकर भगवानदासजीसे कहा। आपने उसे तेरह हजार बीघे भूमि दे दी। कालान्तरमें स्थिति सुधरनेपर उसने उस भूमिको लौटाना चाहा, तब इन्होंने कहा कि मैं दान देकर फिर वापस कैसे लूँ? भूदौलीवालोंने उस जमीनको ले लिया। आप ऐसे दानी थे।

एक बार पिताने विनोदमें ही आपसे कह दिया कि 'तू क्या पाटौदीको जीत सकता है?' आपने उसे सत्य करके दिखा दिया। नारनौलके पास पाटौदीके युद्धमें आपकी विजय हुई। आपकी अन्तिम घटना बड़ी महत्त्वपूर्ण है—एक बार बहनकी सहायताके लिये बनेटी गाँवमें गये हुए थे। वहाँ भयंकर संग्राम हुआ। विपक्षियोंके प्रहारसे आपका सिर कट गया, पर वहाँ गिरा नहीं, वह कोसों दूर चीपलाटामें पहुँच गया और घोड़ेपर स्थित धड़ने युद्ध करके विपक्षियोंको पराजित कर दिया। दर्शक आश्चर्यचकित हो गये। किसी अपवित्र स्त्रीकी छाया पड़नेसे धड़ घोड़ेसे नीचे गिर पड़ा। बनेटीकी संग्राम-भूमिमें आपका स्मारक (जूझार) बना है। चीपलाटामें भी पहाड़ीपर घोड़ेपर सवार आपकी प्रतिमा है, जो उपर्युक्त घटनाको सत्य प्रमाणित कर रही है। उस पहाड़ीपर बने मन्दिरमें आपके चरण-चिह्न हैं, वहाँ जलके दो टाँके भी हैं। गाँवमें एक चबूतरा है, जो भगवानदासकी पर्शके नामसे प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष भाद्र शुक्ल पंचमीको उनकी स्मृतिके रूपमें एक मेला भी लगता है। वैशाख शुक्ल ५ को भी जनता उनकी मनौती मानती है। दोनों उनके जन्म और निधनकी तिथियाँ हैं। यहाँ लोगोंके मनोरथ सिद्ध होते हैं, किसी-किसीको उनके दर्शन भी हो जाते हैं। आस-पासकी जनतामें अपार श्रद्धा है। इनका एक पुत्र सूरदास था, जो बादशाहकी नौकरी करते हुए भी नियमित पूजा-पाठ अवश्य करता था। यह राजवंश श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायका अनुयायी था। नन्दगाँवमें रहनेवाले श्रीनाफादासजीसे यह घराना दीक्षा लेता था।

श्रीभगवानदास तूँवरका यह दृढ़ नियम था कि वर्षके बीतनेपर मथुरापुरी आते थे। वहाँ एक बहुत-बड़ा महोत्सव करते, उसमें बहुत-सा सोना लुटाते थे। इस महोत्सवमें वे पहले साधु-सन्तोंको भोजन कराते, उन्हें वस्त्र पहनाते। उसके पश्चात् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनका भी स्वागत-सत्कार करते। ब्राह्मणोंको यह अच्छा नहीं लगता, वे प्राय: मनमें नाराज रहते। भाग्यवश कोई ऐसा समय आ गया कि श्रीभगवानदासजीकी आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। धनकी कमी आ गयी। ऐसी हालतमें भी आप अपने प्रणको पूरा करना चाहते थे, इसलिये मथुराजी आये। इनके मनमें विचार था कि इस बार छोटा उत्सव कराऊँगा। मथुराके जो (असाधु) ब्राह्मण लोग इनके उत्सवसे दु:खित होकर इनसे द्वेष करते थे, उन्हें सुख हुआ और लोभ बढ़ा। उन लोगोंने निश्चय किया कि अब ऐसा समय है कि हमलोग आपसमें ही सम्पूर्ण धन बाँट लें और भगवानदासकी निन्दा करवा दें।

श्रीभगवानदासजी तूँवरने ब्राह्मणोंको बुलाया और जो कुछ अपने साथ धन लाये थे, उसे बड़े आदर-सम्मानके साथ ब्राह्मणोंको सौंप दिया। उन लोगोंने धनकी गाँठ बाँधकर अपने पास रख लिया। तब श्रीभगवानदासजीने हाथ जोड़कर विनती सुनायी। 'मेरे पास बस इतना ही धन है, इससे आप चाहे साधु-सन्तोंका भण्डारा कर दें, चाहे रासलीला करवा दें और चाहे स्वयं आपलोग भोजन कर लें। जिस प्रकार आपको सुख हो, आपलोग वही काम कीजिये।' ब्राह्मणोंने सीधा-सामान एक कोठेमें रख दिया और जो नगद धन था, उसे थैलियोंमें भर लिया। ब्राह्मणोंको बुलाकर देने लगे। एक-एकको बीस-बीस गुना सामान देने लगे। उनके मनमें था कि किसी प्रकार सीधा-सामान कम पड़ जाय और भगवानदासकी निन्दा हो जाय, परंतु भगवान्‌की कृपासे यह लीला द्रौपदी चीर-हरणकी तरह हो रही थी कि वे जितना देते थे, उससे सौ गुना सीधा-सामान और थैलीमें धन बढ़ता जाता था। देते-देते और लेते-लेते लोग थक गये। भक्त और भगवान्‌की अपार महिमाका सबको प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बीतत बरस मास आवैं 'मधुपुरी', नेम प्रेम सों महोछौ रास हेम ही लुटाइयै।
सन्तनि जिवांय, नाना पट पहिराय, पाछे द्विजन बुलाय, कछु पूजैं, पै न भाइयै॥
आयौ कोऊ काल, धन माल जा बिहाल भए, चाहैं पन पार्‍यौ आए 'अलप कराइयै'।
रहे बिप्र दूषि सुनि भयौ सुख भूख बढ़ी, आयौ यों समाज करौ ख्वारी मन आइयै॥ ५७६॥
अति सनमान कियौ, ल्याए जोई सौंपि दियौ, लियौ गाँठ बाँधि तब बिनती सुनाइयै।
सन्तनि जिंवावो, भावै रास लै करावौ, भावै जेंवौ सुख पावौं, कीजै मन भाइयै॥
सीधौ लाय कोठे धर्‍यो, रोक हो, सो थैली भर्‍यो द्विजन बुलाय देत किहूँ निघटाइयै।
जितनौ निकासैं ताते सौगुनी बढ़त और, एक एक ठौर बीस गुनो दै पठाइयै॥ ५७७॥

श्रीजसवन्तसिंहजी

भक्तनि सों अति भाव निरंतर अंतर नाहीं।
कर जोरे इक पाय मुदित मन आग्या माहीं॥
श्रीबृंदाबन बास कुंज क्रीडा रुचि भावै।
राधाबल्लभ लाल नित्य प्रति ताहि लड़ावै॥
परम धरम नवधा प्रधान सदन साँच निधि प्रेम जड़।
जसवंत भक्ति जैमाल की रूड़ा राखी राठवड़॥ १५५॥

राठौरवंशी श्रीजसवन्तसिंहजीने अपने बड़े भाई श्रीजयमालसिंहजीकी भक्ति करनेकी जो पद्धति थी, उसे यथावत् सुदृढ़ रखा। आपका भगवद्भक्तोंमें निरन्तर निष्कपट परम प्रेम था। भक्तोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिये आप उनके सामने प्रसन्न मनसे हाथ जोड़े एक पैरसे खड़े रहते थे। श्रीधामवृन्दावनविहारिणी-विहारीजीकी निकुंज-लीलामें आपका बड़ा भारी प्रेम था। इष्टदेव श्रीराधावल्लभलालको आप नित्य प्रति सप्रेम सभी सेवाएँ समर्पित करते थे। आप वैष्णवधर्म और नवधा भक्तिके प्रधान सदन थे। परम धर्म और नवधा भक्तिरूपी सच्ची सम्पत्तिका आपने अपने हृदयमें संचय कर रखा था। भगवत्कथा-कीर्तन एवं इष्टका स्मरणकर आप प्रेममें विभोर होकर जड़वत् (अचल) हो जाते थे॥ १५५॥

श्रीजसवन्तसिंहजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीजसवन्तसिंहजी राठौरवंशी क्षत्रिय थे, आप सन्त-भगवन्तके बड़े भक्त थे। आपके लिये भगवद्विग्रह धातु-पाषाणमयी प्रतिमा न होकर साक्षात् प्रभुका स्वरूप ही था। प्रभुको ग्रीष्म-ऋतुमें तापका अनुभव न हो, इसके लिये आप उनके लिये बँगला बनवाते थे। सन्तोंमें भी आपकी भगवान्‌के ही सदृश निष्ठा थी। एक बार एक सन्तका दर्शनकर इन्होंने विनती की और सेवाकी आज्ञा माँगी। सन्तने कहा—'पहले यह बताओ कि तुम्हारी भक्ति सच्ची है अथवा झूठी?' आपने सविनय उत्तर दिया—'प्रभो! मैं आपका सच्चा सेवक हूँ और मेरी भक्ति भी सच्ची है, जो भी आज्ञा होगी, उसका पालन करूँगा।' सन्तने कहा—तो अपने हाथोंके रत्नजटित दोनों कंकण मुझे दे दो, मुझे साधुओंका भण्डारा करना है। सन्तका कहना था कि आपने कंकण उतारकर प्रसन्नतापूर्वक दे दिये और चरण पकड़कर बोले—मेरा सब कुछ तो आपका ही है, फिर मैं देनेवाला कौन? आपने अपनी वस्तु ही ली। सन्तने प्रसन्न होकर इन्हें आशीर्वाद दिया और कंकण बेंचकर भण्डारा किया। उस समय अनन्त सन्त-समूहने जसवन्तसिंहजीकी जय-जयकार की।

श्रीहरिदासजी

अमित महागुन गोप्य सार बित सोई जानै।
देखत को तुलाधार दूर आसै उनमानै॥
देय दमामौ पैज बिदित बृन्दाबन पायो।
राधाबल्लभ भजन प्रगट परताप दिखायो॥
परम धरम साधन सुदृढ़ कलिजुग कामधेनु में गन्यो।
हरिदास भक्तनि हित धनि जननी एकै जन्यो॥ १५६॥

उस माताको धन्यवाद है, जिसने भक्तोंसे प्रेम एवं उनकी सेवा करनेके लिये अतिश्रेष्ठ पुत्र हरिदासजीको जन्म दिया। श्रीहरिदासजीमें परम श्रेष्ठ अनेक ऐसे शुभ गुण थे, जो गोपनीय थे, जिन्हें उन्होंने छिपा रखा था। उनके गुणोंको कोई प्रेमी ही समझ और जान सकता था। कहनेको तो आप वैश्य जातिके थे; परंतु जहाँ सबकी पहुँच नहीं है, ऐसे गूढ़तम रहस्योंका आप अनुमान (साक्षात्कार) कर लेते थे। आपने डंकेकी चोटपर अपसनी यह प्रतिज्ञा घोषित कर दी थी कि मैं यद्यपि शरीरसे काशीमें रह रहा हूँ, परंतु व्रजधाममें शरीर छोड़कर श्रीधामकी रजको (तथा नित्यवृन्दावनधामको) प्राप्त करूँगा। इस अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आपने श्रीवृन्दावन-धामको प्राप्त किया। आपने श्रीराधावल्लभजीके अनन्य भजनके अद्भुत प्रभावको प्रकट करके सबको दिखा दिया। परम वैष्णवधर्मके साधनमें आप सदा सुदृढ़ रहे, उससे कभी विचलित नहीं हुए। इस कराल कलिकालमें मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले कामधेनुके समान जो महान् भक्त हुए, उनमें आपकी गणना हुई॥ १५६॥

श्रीहरिदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

वैश्यकुलमें उत्पन्न श्रीहरिदासजीका निवास-स्थान काशीपुरीके निकट था। इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि मैं व्रज-वृन्दावनमें ही शरीरको छोड़ूँगा। अन्तमें ऐसा हुआ कि इन्हें बड़े वेगसे ज्वर चढ़ आया, नाड़ी छूट गयी। क्रमशः तीन वैद्य आये और सबने यही कहा कि इनकी असाध्य अवस्था है। इनकी अब कोई चिकित्सा नहीं है। इस अवस्थामें भाव-प्रवीण श्रीहरिदासजीने कहा कि 'मेरा मन व्रज-वृन्दावनधामके प्रेमरंगमें मग्न हो रहा है।' इनकी चार पुत्रियाँ थीं, उन्हें चार सन्तोंको देकर बोले कि 'आप इन्हें स्वीकार कीजिये और हमको डोलीमें रखकर श्रीवृन्दावन पहुँचा दीजिये। मेरे नेत्रोंके सामने वहाँका ध्यान बार-बार आ रहा है।' चारों सन्त इन्हें लेकर चले। ये श्रीराधावल्लभजीके नामका संकीर्तन कर रहे थे। गाँवके सभी लोग इन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे और कह रहे थे कि ये किसी भी प्रकारसे वृन्दावनतक नहीं पहुँच सकते हैं।

श्रीवृन्दावनधामके आते-आते मार्गमें ही श्रीहरिदासजीका शरीर छूट गया, परंतु भगवान् श्यामसुन्दरने आपके प्रणको सत्य कर दिया। दिव्य श्रीवृन्दावनधामका प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया और दिव्य शरीर देकर इन्हें श्रीवृन्दावन पहुँचा दिया। श्रीहरिदासजीने श्रीवृन्दावन पहुँचकर अपने इष्टदेव श्रीराधावल्लभलालजीके तथा अपने श्रीगुरुदेव भगवान् श्रीवनचन्दजीके सप्रेम दर्शन किये। चीरघाटपर जाकर श्रीयमुनाजीमें स्नान किया और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। जो लोग इन्हें लेकर आ रहे थे, वे लोग शोक करते हुए, रोते हुए, पीछेसे आये और उन लोगोंने श्रीहरिदासजीके गुरुदेवसे तथा सन्तोंसे कहा कि 'हरिदासजीको हमलोग श्रीवृन्दावनको ला रहे थे, परंतु दुःखकी बात है मार्गमें ही उनका शरीर छूट गया।' श्रीवृन्दावनके सभी सन्तोंने कहा कि 'वे तो उसी दिन यहाँ आ गये थे।' इस भक्त-चरित्रमें भक्तिका प्रभाव प्रत्यक्ष प्रकट है। भगवान्‌की कृपाके बिना इस प्रकार दिव्य-देहकी तथा श्रीवृन्दावनकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

हरिदास बनिक, सो कासी ढिग बास जाकौ, ताकौ यह पन तन त्यागौं ब्रज भूमहीं।
भयौ ज्वर नाड़ी छीन, छोड़ि गए बैद तीन, बोल्यौ यों प्रबीन वृन्दावन रस झूमहीं॥
बेटी चारि सन्तनि कौ दई अङ्गीकार करौ, धरौ डोली मांझ मोको ध्यान दृग घूमहीं।
चले सावधान राधावल्लभ कौं गान करै, करै अचरज लोग परी गाँव धूमहीं॥ ५७८॥
आवत ही मग माँझ छूटि गयौ तन, पन साँचौ कियौ स्याम, वन प्रगट दिखायौ है।
आय दरसन कियौ, इष्ट गुरु प्रेम भरि नेम पर्‍यौ पूरौ, जाय चीरघाट न्हायौ है॥
पाछें आए लोग, सोक करत भरत नैन बैन सब कही, कही 'ताही दिन आयौ है'।
भक्ति कौ प्रभाव यामें भाव और आनौ जिनि, बिन हरिकृपा यह कैसे जात पायौ है॥ ५७९॥

श्रीहरिदासजीके यहाँ सदा सन्त-सेवा होती थी। एकबार एक ब्रजवासी ठग वैष्णव वेश धारणकर आपके यहाँ आया और बहुत दिनतक रहा। एकदिन जब हरिदासजी घरमें नहीं थे, तो उनकी स्त्रीको अकेली देखकर उस ठगने उसे एक खम्भेसे बाँध दिया और मुखमें कपड़ा भर दिया। तत्पश्चात् घरमें ढूँढ़कर सामानकी पोटली बाँधी और स्त्रीके शरीरसे भी आभूषण उतार लिये। इसी समय हरिदासजी आ गये और उस ठगसे बोले—आप क्या कर रहे हैं? कम्पित-लज्जित होकर वह चरणोंमें गिरने और क्षमा माँगने लगा। तब पत्नीके मनसे अश्रद्धा दूर करनेके लिये आपने उससे कहा—भगवन्! मैं समझ गया, आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं। इसीसे आपने यह लीला दिखायी। मेरा सर्वस्व आपका है, आप उसे बिना पूछे ही ले रहे हैं। आपके इस सद्भावका ऐसा अद्भुत प्रभाव हुआ कि उस ठगने सदाके लिये ठगीका परित्याग कर दिया और सच्चा सन्त बन गया।

एक बार श्रीहरिदासने सुना कि वनमें साधुओंकी जमात पड़ी है, शीघ्र ही आप दर्शनार्थ चल दिये। उस समय आपकी आयु ९५ वर्षकी थी। घने जंगलमें उन्होंने देखा कि एक सिंहने गायको पकड़ रखा है और उसे मार डालना चाहता है। दयावश उन्होंने सिंहमें नृसिंहभगवान्‌की भावना की और प्रणाम करके प्रार्थना की—भगवन्! गायको छोड़कर मुझे खा लीजिये। सिंहने गायको नहीं छोड़ा, तब आपने उसके आशयका अनुमान किया कि मुझ वृद्धके शरीरसे इनका पेट नहीं भरेगा। इसीसे गायको नहीं छोड़ रहा है। तब आपने कहा—मैं इस गायके बदले अपने पुत्रको लाकर दे दूँगा। आप गायको छोड़ दीजिये। इस प्रकारकी प्रार्थना सुनकर सिंहने गायको छोड़ दिया। श्रीहरिदासजीने घर आकर सब समाचार पुत्रको सुनाया। तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। इस नाशवान् शरीरका इससे अच्छा सदुपयोग और क्या हो सकता है! पुत्रको लेकर आप वनमें पहुँचे, तो उस समय सिंह सो रहा था। इनके नाम-संकीर्तनको सुनकर वह जागा और उसने भयंकर गर्जन किया, फिर इनकी ओर झपटा, पर ये दोनों भयभीत न होकर सहर्ष अपना शरीर समर्पणके लिये तैयार थे। जो सर्वत्र अपने प्रभुको देखता है, उसे किसीसे भय नहीं रहता है। इनकी ऐसी निष्ठा देखकर नृसिंहभगवान् प्रकट हो गये। आपने नमस्कार तो किया, पर सन्तुष्ट नहीं हुए; क्योंकि इनके मन और नेत्रोंमें तो श्रीराधाबल्लभलालजीकी शोभा बसी थी। तब भक्तवांछा-कल्पतरु श्रीराधाबल्लभने प्रकट होकर दर्शन दिया। दोनों भक्त कृतार्थ हो गये।

एक बार श्रीहरिदासजी दर्शनार्थ जगन्नाथपुरीको गये। साथमें अपने अर्चा-विग्रह राधाबल्लभलालको भी ले गये। नित्य-नियमसे अपने श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजा करते और रसोई बनाकर भोग लगाते, फिर प्रसाद पाते। अन्यत्रका प्रसाद नहीं लेते, मन्दिरके पुजारी जगदीशका प्रसाद लाते तो उसे सिरसे लगाकर स्वीकार कर लेते, पाते नहीं। प्रसादके अपमानको समझकर पण्डा-पुजारी बिगड़ गये, पर आप कुछ नहीं बोले। रातको स्वप्नमें श्रीजगन्नाथजीने पण्डोंसे कहा—'हरिदासजीने प्रसादका अपमान नहीं किया है, यह उनकी अनन्य निष्ठा है।' प्रात:काल पण्डोंने श्रीहरिदासजीके समीप आकर क्षमा-प्रार्थना की। इनकी प्रसादमें ऐसी अनन्य निष्ठा थी।

श्रीगोपालजी तथा श्रीविष्णुदासजी

बाँबोली गोपाल गुननि गंभीर गुना रट।
दच्छिन दिसि बिष्णुदास गाँव कासीर भजन भट॥
भक्तनि सों यह भाय भजैं गुरु गोबिंद जैसे।
तिलक दाम आधीन सुबर संतनि प्रति तैसे॥
अच्युत कुल पन एकरस निबह्यो ज्यौं श्रीमुख गदित।
भक्ति भार जूड़ैं जुगल धर्म धुरंधर जग बिदित॥ १५७॥

अनन्त सद्गुणोंसे युक्त, स्वभावसे परम गम्भीर और हरिगुणगायक भक्तवर श्रीगोपालजी 'बाँबोली' ग्रामके निवासी थे। भजन-भावमें शूरवीर श्रीविष्णुदासजी दक्षिण दिशामें 'काशीर' गाँवके रहनेवाले थे। ये दोनों सन्तों-भक्तोंको गुरु-गोविन्दके समान मानकर उनकी सेवा करते थे। तिलक-कण्ठीधारीमात्रकी आधीनता और सेवा श्रेष्ठ सन्तोंके समान करते थे। भगवान्ने अपने श्रीमुखसे अपनेसे भी अधिक अपने भक्तोंको जैसे पूज्य कहा है, उसीके अनुसार इन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक सर्वदा अच्युतगोत्रीय सन्तोंकी सेवा की। इस प्रकार ये दोनों सन्त भक्तिभावके भारको वहन करनेमें श्रेष्ठ, वैष्णव-धर्मधुरन्धर सकल संसारमें प्रसिद्ध हुए॥ १५७॥

श्रीगोपालजी और श्रीविष्णुदासजीके सम्बन्धमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगोपालदासजी और श्रीविष्णुदासजी दोनों गुरुभाई थे। साधु-सेवामें दोनों गुरुभाइयोंका हार्दिक परम अनुराग था। ये दोनों साधु-सन्तोंको ऐसे सुख देनेवाले थे कि इन्होंने एक नयी रीति चलायी। निमन्त्रण पाकर जिस किसी महोत्सवमें आप जाते, वहाँ बड़े उल्लासके साथ गाड़ीमें भरकर घी, चीनी और आटा आदि सामान ले जाते तथा कोठारीसे मिलकर गुप-चुप सामानमें अपना सामान मिलवा देते। किसीको इसका पता न चलता। ऐसा करनेमें आपका तात्पर्य यह होता था कि महोत्सवमें किसी प्रकारकी कमी न पड़े और सन्तकी निन्दा न हो। इस भेदको कोई भी जान नहीं पाता था। महोत्सवके बाद सभीको बड़ा सुख होता था कि कोठार-भण्डारमें किसी वस्तुकी कोई कमी नहीं हुई। इन दोनों भक्तोंके गुरुदेव बड़े सिद्ध तथा प्रसिद्ध महात्मा थे। एक दिन इन दोनोंने हाथ जोड़कर विनती करते हुए अपने गुरुदेवसे कहा—भगवन्! बहुत दिनोंसे हमारे मनमें ऐसी उमंग उठ रही है कि (सिद्धसन्तोंके दर्शनार्थ) एक महा-महोत्सव हो। उसमें आपकी कृपा और आज्ञाकी आवश्यकता है। श्रीगुरुजी बोले—'यदि ऐसा विचार है तो शीघ्रातिशीघ्र तैयारी करो।' वे ऐसे सिद्ध थे कि उन्होंने वहींसे बैठे-बैठे चारों ओर जल फेंका और सभी साधु-सन्तोंको न्यौता दे दिया। फिर उन्होंने दोनों शिष्योंसे कहा कि इस उत्सवमें महात्माओंकी भारी भीड़ इकट्ठी होगी, अतः उनके ठहरनेके लिये कुटियाँ (सुन्दर निवास-स्थान) बनवाओ। उत्सव प्रारम्भ होते ही चारों ओरसे सन्तजन पधारे। दोनों गुरु-भाइयोंने उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम और विनती की, फिर उन्हें आदरपूर्वक भोजन-प्रसाद पवाया और वस्त्र भेंटकर सब प्रकारसे प्रसन्न किया। इस प्रकार पाँच दिनोंतक सन्त-समूहके द्वारा अखण्ड कथा-कीर्तन होता रहा।

उत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रीगुरुदेवने दोनों शिष्योंको आज्ञा दी कि 'कल प्रातःकाल सम्पूर्ण सन्त-मण्डलीकी परिक्रमा करने जाना। वहाँ परमानन्दस्वरूप श्रीनामदेवजीके दर्शन होंगे। वे उज्ज्वल वस्त्र धारण किये हुए प्रसन्न मनसे अकेले ही जा रहे होंगे। उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करना। वे तुम्हें परम सिद्ध सन्त श्रीकबीरजीका दर्शन करा देंगे।' श्रीगुरुदेवकी आज्ञा पाकर प्रातःकाल होते ही दोनों गुरुभाई सन्तशालाकी प्रदक्षिणा करने चले। पहले दिव्य शरीरधारी श्रीनामदेवजीके दर्शन हुए। उमंगके साथ दोनों उनके श्रीचरणोंमें लिपट गये। छुड़ानेसे भी चरणोंको नहीं छोड़ रहे थे, तब श्रीनामदेवजीने उन दोनोंसे कहा—जहाँ साधु-

सन्तोंका अपमान होता है, वहाँ हमलोग कभी नहीं आते-जाते हैं और जहाँ उनका सम्मान होता है, वहाँ हमलोग आते-जाते हैं। हमने तुम्हारी सन्तोंमें प्रीति और सेवा करनेकी रीति देखी है, उससे हम बहुत प्रसन्न हुए। ऐसा कहकर श्रीनामदेवजीने दोनों भक्तोंको गलेसे लगा लिया। फिर कहा—'जाओ, आगे चलनेपर तुम्हें श्रीकबीरजी मिलेंगे।' जैसे ही ये दोनों आगे चले, तैसे ही इन्हें भक्तराज श्रीकबीरजीके दर्शन मिले। दोनोंने चरणोंमें पड़कर प्रणाम किया। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। हँसकर श्रीकबीरजी बोले—'कहो, अभी पीछे किसी सुखदायी सन्तके तुम्हें दर्शन हुए?' इन्होंने उत्तर दिया—'हाँ, महाराज! दर्शन हुए।' इसके पश्चात् श्रीकबीरजीने दोनोंका सम्मान किया। इस प्रकार इन दोनों गुरु-भाइयोंपर सन्तोंकी और गुरुदेवकी पूर्ण कृपा हुई।

श्रीप्रियादासजीने सन्त-सेवाकी इस महिमाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

रहैं गुरु भाई दोऊ, भाई साधु सेवा हिये, ऐसे सुखदाई, नई रीति लै चलाइयै।
जायँ जा महोछौ में बुलाए हुलसाए अंग संग गाड़ी सामा सो भण्डारी दे मिलाइयै॥
याकौ तातपर्य सन्त घटती न सही जात, बात वे न जाने, सुख मानै मन भाइयै।
बड़े गुरु सिद्ध जग महिमा प्रसिद्ध, बोले बिनै कर जोरि सोई कहिकै सुनाइयै॥ ५८०॥
चाहत महोछौ कियौ हुलसत हियौ नित, लियौ सुनि बोले करौ बेगि दै तयारिये।
चहुँदिशि डार्‌यौ नीर, कर्‌यौ न्यौतो ऐसे धीर, आवै बहु भीर सन्त, ठौरनि सँवारिये॥
आए हरि प्यारे, चारो खूँट तें निहारे नैन, जाय पगु धारे सीस बिनै लै उचारिये।
भोजन कराय दिन पाँच लगि छाय रहे पट पहिराय सुख दियो अति भारिये॥ ५८१॥
आज्ञा गुरु दई 'भोर आवौ फिरि आस पास, महा सुख रासि नामदेवजू निहारियै।
उज्ज्वल बसन तन एकले प्रसन्न मन, चले जाति बेगि सीस पाँयनि पै धारियै॥
बेई दें बताय 'श्रीकबीर' अति धीर साधु, चले दोऊ भाई परदक्षिना विचारियै।
प्रथम निरखि नाम हरखि लपटि पग लगि रहे छोड़त न बोले सुनौ धारियै॥ ५८२॥
साधु अपराध जहाँ होत तहाँ आवत न, होय सनमान सब सन्त तहीं आइयै।
देखि प्रीति रीति हम निपट प्रसन्न भए, लये उर लाय जावौ श्रीकबीर पाइयै॥
आगें जो निहारें भक्तराज दृग धारैं, चलीं बोले हँसि आप कोऊ मिल्यौ सुखदाइयै।
कह्यौ 'हाँ जू' मान दई भई कृपा पूरन यों, सेवा कौ प्रताप कहौ कहाँ लगि गाइयै॥ ५८३॥

श्रीकील्हदेवजीके शिष्यगण

आसकरन रिषिराज रूप भगवान भक्त गुर।
चतुरदास जग अभै छाप छीतर जु चतुर बर॥
लाखै अद्भुत रायमल्ल खेम मनसा क्रम बाचा।
रसिक रायमल गोंदु देवा दामोदर हरि रँग राचा॥
सबै सुमंगल दास दृढ़ धर्म धुरंधर भजन भट।
कील्ह कृपा कीरति बिसद परम पारषद सिष प्रगट॥ १५८॥

श्रीकील्हदेवाचार्यजीकी कृपासे निर्मल कीर्तिवाले इनके सभी शिष्य भगवत्पार्षदोंके समान थे। राजर्षि श्रीआशकरणजी, श्रीरूपदासजी, गुरुभक्त श्रीभगवानदासजी, निर्भयकी छापवाले श्रीचतुरदासजी, चतुरशिरोमणि श्रीछीतरजी, अद्भुत प्रभाववाले श्रीलाखैजी, मन-वाणी और कर्मसे परोपकारी श्रीरायमलजी, श्रीखेमदासजी, रसिक श्रीरायमलजी, श्रीगोंदुदासजी, श्रीदेवादासजी और हरिरंगमें रँगे श्रीदामोदरजी—ये सभी मंगलमय भगवान् श्रीरामके सच्चे सेवक, धर्मधुरन्धर और भजनमें वीर हुए॥ १५८॥

श्रीकील्हदेवजीके इन शिष्योंमेंसे कुछका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीचतुरदासजी

श्रीचतुरदासजी सन्त एवं तीर्थदर्शनार्थ भ्रमण करते रहते थे। एक बार आप एक गाँवके समीप एक वृक्षके नीचे जाकर ठहरे। ग्रामवासियोंने आकर आपसे कहा—महाराज! यहाँ न ठहरकर आप किसी दूसरे स्थानपर ठहरें। यहाँ एक अत्यन्त प्रबल प्रेतका निवास है। आपने पूछा कि वह क्या करता है, तो लोगोंने बताया कि यहाँ रहनेवालेको बड़ा कष्ट देता है। भैंसा, सिंह, हाथी आदि रूपोंको धारणकर डराता है और ऊपर ले जाकर फिर पटक देता है। इस तरह वह किसीको जिन्दा नहीं छोड़ता है, मार ही डालता है। श्रीचतुरदासजी श्रीरामजीके अनन्य भक्त थे, सर्वत्र सबमें अपने प्रभुको ही देखते थे, अतः निडर थे। इन्होंने वहीं आसन लगाया और अपना नियम करके शयन किया। रातमें प्रेतने इन्हें देखा तो इनके तेजसे भयभीत होकर इनसे दूर ही रहा। गाँवके चारों ओर चक्कर काटता और चिल्लाता रहा कि यह जगह तो हमारी है, साधुबाबाने अपना आसन लगा लिया, अब हम कहाँ जायँ? लोगोंने उसका प्रलाप सुना। प्रातः आकर देखा तो श्रीचतुरदासजी अपने भजन-पूजनमें व्यस्त हैं। सभीने इन्हें सिद्ध सन्त मानकर इनका स्वागत-सत्कार किया और इनके उपदेश सुने। आपने कह दिया कि अब यहाँ कभी किसीको प्रेत-बाधा न होगी। कुछ दिन बाद एक दूसरे सन्त आये। उनसे लोगोंने इस प्रसंगको कहा, तो वे समझ गये और बोले कि श्रीकील्हजीके सभी शिष्य ऐसे ही महाप्रतापी हैं। श्रीचतुरदासजी एक बार अग्निमें पड़कर भी नहीं जले। वे सबसे निर्भय हैं, इस चर्चाको सुनकर प्रेत श्रीचतुरदासजीकी शरणमें गया और उनसे भगवन्नामको सुनकर प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया।

श्रीरायमलजी

श्रीरायमलजीका तेज-प्रताप, करनी-करतूति सब कुछ अद्भुत था, अतः इनकी 'अद्भुत' छाप थी। इनके द्वारा अनेक चमत्कार हुए, जिनका साधुजन वर्णन करते हैं। सन्तोंकी सेवा आप बड़े सम्मानके साथ करते थे। एक बार आप ध्यान लगाकर श्रीसीतारामजीकी मानसी-सेवा कर रहे थे। होलीके दिन थे, उद्दण्ड प्रकृतिके कुछ लोग आकर इनपर भी धूल डालने लगे। कुछ देरतक तो आपने मौन रहकर सहन किया। पश्चात् इन्होंने मना किया कि बस, अब हो गया, मेरे भजनमें विघ्न न करो। इतनेपर भी जब लोगोंने नहीं माना, तब आपने उन्हें शिक्षा देनेके लिये किंचित् क्रोध किया और कहा कि किसी सन्तपर फूल बरसाओगे तो तुम्हारे ऊपर भी फूल बरसेंगे और यदि धूल बरसाओगे तो धूल बरसेगी। इतना कहते ही उन लोगोंपर आकाशसे कंकड़ और धूल बरसने लगी। जहाँ गये वहाँ भी बरसती रही, तब वयोवृद्ध ग्रामवासियोंने सबको साथ ले जाकर श्रीरायमलजीसे क्षमा-याचना की, तब धूल बरसनी बन्द हुई। इस प्रकार आपने लोगोंको प्रभावितकर सबको भक्ति-पथका पथिक बनाया।

श्रीखेमदासजी

आप अपने गुरुदेव श्रीकील्हजीकी सेवा बड़ी निष्ठा और श्रद्धाके साथ करते थे। आपमें आलस्य और प्रमादका लेश न था। सर्वदा गुरु-सेवामें रुचि रखते, उसीमें सन्तुष्ट रहते और नित्य सीथ-प्रसाद लेते थे। जब श्रीकील्हदेवजीने स्वेच्छासे शरीरको त्यागकर साकेत-गमन किया। तब आपने उनका सीथ-प्रसाद रख लिया और नित्य उसका सेवन करते रहे। किसी समय वह गुम हो गया तो आपके मनमें बड़ा ही दुःख हुआ। आपने भोजन-पान बन्द कर दिया और अधीर होकर रोते-कलपते रहे। आपके सच्चे प्रेमको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीकील्हदेवका शरीर धारण करके आये। दर्शन, प्रबोध और सीथ-प्रसाद देकर श्रीरामजीने इनके दुःखको दूर किया। इस प्रकार सच्ची गुरु-भक्तिसे आपको भगवान्के दर्शन मिले।

श्रीरूपजी

ये आमेरनरेश श्रीपृथ्वीराजजीके सुपुत्र थे। इनके विवेक और वैराग्यसे प्रभावित होकर लोग इन्हें

'वैरागीजी' कहने लगे। 'रूप वैरागी' इस नामसे आप प्रसिद्ध हुए। इन्होंने किशनगढ़के उत्तरमें अपने नामपर एक नगर बसाया, जिसका नाम रूपनगर है। आप दौसाके जागीरदार थे। वि० सं० १६१९ में दौसामें आकर अकबर बादशाहने इनसे मुलाकात की। इनके पुत्र जगमलजी हुए, वे बादशाहके मनसबदार थे। श्रीभगवानदासजी (छ० १८८) और आशकरणजी आपके भतीजे थे।

श्रीनाथभट्टजी

आगम निगम पुरान सार सास्त्रनि जु बिचार्‌यो।
ज्यों पारो दै पुटहि सबनि को सार उधार्‌यो॥
श्री रूप सनातन जीव भट्ट नारायन भाष्यो।
सो सर्बसु उर साँच जतन करि नीकें राख्यौ॥
फनी बंस गोपाल सुव रागा अनुगा को अयन।
रस रास उपासक भक्तराज नाथ भट्ट निर्मल बयन॥ १५९॥

फणीवंशमें श्रीगोपालदासजीके सुपुत्र श्रीनारायणभट्टजीके शिष्य श्रीश्रीनाथभट्टजी रागानुगा भक्तिके भवन, शृंगाररसके उपासक थे, आपकी वाणी अत्यन्त निर्मल थी और आप भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। आपने सभी वेद, पुराण, शास्त्रोंका गम्भीर अध्ययन-मनन करके उसका सार-तत्त्व उसी प्रकार निकाल लिया था, जैसे जड़ी एवं पारेका पुट देकर रसायनी ताँबेसे रसायन—सोना बना लेता है। गोस्वामी श्रीरूपजी, श्रीसनातनजी, श्रीजीवजी और श्रीनारायणभट्टजीने भक्तिके सिद्धान्तका जिस प्रकार निरूपण किया है, उस सम्पूर्ण रहस्यको शुद्ध और सत्य मानकर उसे यत्नपूर्वक आपने अपने हृदयमें धारण किया। पुनः योग्य पात्रोंमें उसे वितरित किया॥ १५९॥

श्रीश्रीनाथजी भट्टके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनाथभट्टजी बरसाना ऊँचेगाँवके निवासी थे। आपकी वाणी प्रेमकी खानि थी, आप बहुत बड़े विद्वान् थे। एक बार इनके पास एक विवादी कुतर्की व्यक्ति आया। वह बहुतोंको परास्त कर चुका था अतः उसे बड़ा-भारी अहंकार था। उसने इनसे अनेक प्रश्न किये, कई प्रश्नोंके आपने उत्तर दिये, कई प्रश्नोंको ही असिद्ध कर दिया। आप केवल विद्वान् ही नहीं महान् भगवद् भक्त थे, अतः बड़े-बड़े विद्वान् भी भक्तिकी शक्तिको देखकर आपके सामने नत-मस्तक हो जाते थे। आपके सप्रमाण अकाट्य उत्तरोंसे उसकी बोलती बन्द हो गयी। उसे तामसी भैरवकी सिद्धि थी। पराजित और लज्जित होकर उसने भैरवजीका ध्यान किया। झट उसे भैरवका आवेश हो गया। अब वह पुनः तर्क-वितर्क करने लगा। आपने पुनः उसे हरा दिया। हारकर भी हार न माननेपर आपने झट उसकी चोटी पकड़ ली। अब तो वह विवश हो गया और क्षमा-याचना करते हुए कहने लगा कि अब हमें छोड़ दीजिये, अब मैं कभी हरिभक्तोंसे विवाद नहीं करूँगा। ऐसा कहकर भैरवजी और उस व्यक्तिने आपके श्रीचरणोंकी शरण ली। वैष्णवी शिक्षा-दीक्षा लेकर कृतार्थ हुआ। सद्भावनासे सभी सन्तोंकी सेवा करने लगा। आप बरसाना ऊँचेगाँवमें रहकर भगवद्भजन किया करते थे।

श्रीकरमैतीजी

नस्वर पति रति त्यागि कृष्न पद सों रति जोरी।
सबै जगत की फाँसि तरकि तिनुका ज्यों तोरी॥
निरमल कुल काँथड़्या धन्य परसा जिहिं जाई।
बिदित बृंदाबन बास संत मुख करत बड़ाई॥

संसार स्वाद सुख बांत करि फेर नहीं तिन तन चही।
कठिन काल कलिजुग्ग में करमैती निकलँक रही॥ १६०॥

श्रीकरमैतीजी इस घोर कलिकालमें उत्पन्न होकर भी सर्वथा निष्कलंक रही। इन्होंने अपने शरीरके पतिके प्रति नश्वर प्रेमको छोड़कर आत्माके पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीचरणोंमें सच्चा प्रेम किया। अपने तर्कोंके द्वारा सोच-विचारकर संसारके सभी बन्धनोंको तोड़ डाला। निर्मल कुल काँथड़्या और उनके पिता श्रीपरशुरामजी धन्य हैं, जिन्होंने श्रीकरमैती-सरीखी भक्ता पुत्रीको जन्म दिया। सर्वविदित है कि श्रीकरमैतीजीने घरको छोड़कर श्रीवृन्दावनधाममें निवास किया। सन्तजन इनके त्याग, वैराग्य और भक्तिकी बड़ाई करते थे। इन्होंने सांसारिक विषयोंके भोगोंसे प्राप्त होनेवाले सभी सुखोंको वमनकी तरह त्याग दिया॥ १६०॥

श्रीकरमैतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकरमैतीबाई शेखावत राजाके पुरोहित श्रीपरशुरामजीकी पुत्री थीं। इनका निवास-स्थान खँड़ेला (सीकर—राजस्थान) था। करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक मनोहर श्रीश्यामसुन्दर श्रीकरमैतीबाईके हृदयमें बस गये थे। इसलिये इन्हें घर और घरके काम-काज सब भूल गये थे। नित्य भगवान्‌की मानसी-सेवा करती थीं। जब ये ध्यान लगाकर बैठ जातीं तो कई प्रहर बैठे बीत जाते। इनके मन और बुद्धिकी वृत्ति सर्वदा श्रीकृष्णकी शोभामें पगी रहती थी। विवाह हो चुका था। उसके कुछ दिन बाद आपके पतिदेव गौना करानेके लिये आये। इससे इनके पिता-माताके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बड़े चावके साथ वस्त्र और आभूषणोंका संग्रह करने लगे, परंतु गौनेकी चर्चा सुनकर श्रीकरमैतीजी बड़े सोच-विचारमें पड़ गयीं कि अब हमको क्या करना चाहिये? हड्डी और चमड़ेसे बना यह मानव-शरीर प्रेम करनेके योग्य नहीं है, अतः इसको त्याग देना चाहिये। पुनः श्रीकरमैतीजी अपने मनको समझाती हुई कहने लगीं—'अरे मन! अब तू मत सो, जाग जा। जागनेसे ही तेरे भीतरके मैल धुलेंगे। श्रीश्यामसुन्दरकी प्रीति ही सच्ची और सुख देनेवाली है। संसारमें प्रीति मिथ्या और दुःख देनेवाली है। यदि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी चाह है तो लोक-लज्जाकी क्या आवश्यकता?' इस प्रकार श्रीकरमैतीजीने मनसे पतिदेवके साथ न जानेका निश्चय किया, क्योंकि ये पूर्णरूपसे कृष्णानुरागके रंगमें रँगी हुई थीं। इनके साथ वही एक श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही थे और कोई न था। श्रीकरमैतीजीकी बुद्धि भक्तिरससे सरस हो गयी थी, अतः वे सबके सो जानेपर आधी-रातको घरसे निकलीं। सबेरा होते ही गाँव-घरमें सर्वत्र शोर मच गया कि 'करमैतीका पता नहीं है।' पिता-माताको बड़ा भारी दुःख हुआ, उन्होंने जहाँ-तहाँ ढूँढ़ा तथा पता लगानेके अनेक उपाय किये। बहुत-से लोग चारों ओर दौड़े। जब श्रीकरमैतीजीने देखा कि मुझे ढूँढ़नेवाले घुड़सवारलोग अब बिलकुल समीप आ गये हैं, तब उन्होंने वहींपर मरे पड़े हुए एक ऊँटके कंकालमें अपने शरीरको छिपा दिया। भगवान्‌में मन लगा हुआ था, अतः उन्हें विषयी संसारकी दुर्गन्ध ऐसी खराब लगी कि उसकी तुलनामें ऊँटके कंकालकी वह सड़ी दुर्गन्ध सुगन्धके समान अच्छी लगी।

श्रीकरमैतीजीको ऊँटके कंकालमें ही रहते हुए तीन दिन व्यतीत हो गये। तीन दिनके बाद चौथे दिन ऊँटके कंकालसे निकलकर चलीं तो आपको तीर्थयात्रियोंका साथ मिल गया। उनके साथ आप श्रीगंगाजीके किनारे आयीं। वहाँ स्नानकर आपने अपने सब आभूषण ब्राह्मणोंको दान कर दिये। उसके पश्चात् आप श्रीधाम वृन्दावन आ गयीं। आपके पिता श्रीपरशुरामजी आपको ढूँढ़ते हुए मथुरा आये। वहाँ लोगोंने श्रीकरमैतीजीका पता बताया। तदनुसार मथुराके पण्डोंके साथ आप श्रीवृन्दावन गये। उन दिनों ब्रह्मकुण्डपर अत्यन्त घना जंगल था। वहाँ एक वटवृक्षके ऊपर चढ़कर देखनेसे श्रीकरमैतीजी दिखलायी पड़ीं। वे प्रिय-विरहमें बैठी रुदन कर रही थीं। उनके आँसुओंसे वहाँकी पृथ्वी भीग गयी थी।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकरमैतीजीके इस श्रीकृष्ण-प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—